सेनानी
(काव्य)

युवकों के आदर्श देव-सेनानी कुमार कार्त्तिकेय का
ओजस्वी एवं राष्ट्रनिर्माणकारी चरित

लेखक—
डा० रामानन्द तिवारी "भारतीनन्दन"
एम० ए०; डी० फिल्०; पी-एच० डी०; दर्शन-शास्त्री

प्रकाशिका—
श्रीमती शकुन्तला रानी एम० ए०
सचालिका "भारती मन्दिर"
गोविन्द भवन, चौबुर्जा
भरतपुर (राजस्थान)

स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर
१५ अगस्त १९६३ को प्रकाशित

मूल्य—पाच रुपया

मुद्रक—
ग प्रेस, भरतपुर।
(पृष्ठ ६ से ५८ तक)

मुद्रक—
नेशनल प्रेस, भरतपुर।
(पृष्ठ १ से ८ तथा ५६ से ३१६ त

प्रकाशकीय निवेदन

'सेनानी काव्य' डा० रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन द्वारा रचित 'पार्वती' महाकाव्य का एक अंश है। 'पार्वती महाकाव्य की रचना आज से दश वर्ष पूर्व हुई थी और उसक प्रकाशन आज से आठ वर्ष पूर्व स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर हुआ था। कालिदास के 'कुमार सम्भव' के बाद दो हजार वर्ष के अन्तराल मे शिव-कथा पर आश्रित इस प्रथम उल्लेखनीय महाकाव्य को हिन्दी के आचार्यों और आलोचकों ने कोई महत्व नहीं दिया प्रकाशन के इन वर्षों में वह कई पुरस्कारों से अवश्य सम्मानित हो चुका है, जिनमे केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय का पुरस्कार तथ डालमिया पुरस्कार मुख्य हैं। 'पार्वती' के आरम्भिक सर्गों में 'कुमार सम्भव' के कुछ छन्दों की छाया है, जिसको लेकर कुछ आलोचकों ने 'पार्वती' महाकाव्य की मौलिकता पर सदेह करने की कृपा अवश्य की थी। किन्तु 'पार्वती' महाकाव्य के पहले दो और अन्तिम १६ सर्गों की मौलिकता और महिमा को ध्यान देने की कृपा कोई आलोचक नही कर सके।

'पार्वती' महाकाव्य के उक्त मौलिक भाग का ही एक अंश 'सेनानी काव्य' के रूप में प्रस्तुत है। इसमें देव-सेनानी कुमार कार्तिकेय के ओजस्वी चरित का वर्णन है। इस निमित्त से शा

और शक्ति के समन्वय का एक ओजस्वी आदर्श युवकों के सम्मुख उपस्थित किया गया है। चीनी आक्रमण से उत्पन्न संकट की स्थिति में इस आदर्श का विशेष महत्व है। इसी आदर्श का अनुशीलन करके भारतीय युवक देश की रक्षा और उसके उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। 'सेनानी काव्य' के ओजस्वी कथानक और उसकी ओजपूर्ण शैली से इस दिशा में युवकों को यथेष्ट प्रेरणा मिल सकती है। 'सेनानी काव्य' भारत के वर्तमान संकटकाल की नवीन गीता है। इसका ओजस्वी स्वर भारत के नवीन जागरण का शंखनाद बन सकता है।

इसी उद्देश्य से 'पार्वती' महाकाव्य के इस अंश का 'सेनानी काव्य' के रूप में पृथक प्रकाशन किया गया है। नवयुवकों और साधारण पाठकों को इसके समझने के लिये किसी की सहायता का याचक न बनना पड़े इसलिये छन्दों का अर्थ साथ-साथ दे दिया गया है। इससे उनको अर्थ के समझने में सुलभ सहायता मिल सकेगी।

विनीता—

शकुन्तला रानी एम० ए०
संचालिका 'भारती-मन्दिर'
गोविन्द भवन, चौबुर्जा,
भरतपुर (राजस्थान)

अनुक्रम

पृष्ठ

विवरण

पृष्ठ

पृष्ठ

भूमिका

१—सेनानी काव्य—"सेनानी काव्य" युवकों के आदर्श देव सेनानी कुमार कार्तिकेय के ओजस्वी चरित्त का काव्य है शिव-कथा की भूमिका में कुमार कार्त्तिकेय के निमित्त युवकों का ओजस्वी आदर्श इस काव्य में प्रस्तुत किया गय है। इस दृष्टि से 'सेनानी' यौवन का काव्य है। इस काव के भावों तथा इसकी भाषा और शैली में यौवन के अनुरू ओज और उत्साह भी पाठकों को मिलेगा। स्वस्थ यौवन काव्य की दृष्टि से भक्ति, शृंगार, रीति आदि के काव्य तथा अधिकांश गीतकाव्य की मधुरता और रमणीयता से इसकी ओजस्विता विवेचनीय है। 'सेनानी काव्य' में यौवनके अधिकार और कर्तव्य की महिमा एक गरिमामय और सन्तुलित रूप में प्रस्तुत की गई है। परशुराम के आश्रम में शक्ति-साधना की शिक्षा प्राप्त करके कुमार कार्त्तिकेय देवताओं के सेनापति बने। स्वर्ग में जाकर उन्होंने विलास में लीन रहने वाले तथा बार-बार असुरों से पराजित होने वाले देवताओं को शक्ति-साधना का संदेश दिया। उनके नेतृत्व में शक्ति-साधना करके देवताओं ने तारक नामक राक्षस की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। देवताओं

की असुरों के विरुद्ध यह पहली विजय थी। इस विजय का श्रेय परशुराम के शक्ति-सदेश और कुमार कार्तिकेय के तरुण एव ओजस्वी नेतृत्व को है। परशुराम का यह शक्ति-सदेश और समाज में युवकों का ओजस्वी नेतृत्व—ये दो सेनानी काव्य के मुख्य मन्तव्य है।

सेनानी के कवि के मन में मानव-समाज की अनीति के निवारण और मानवीय जीवन की स्वस्थ सफलता का यही मार्ग है। तारकासुर इस अनीति का एक प्रतीक मात्र है। उसकी राजधानी शोणितपुर का नाम इस अनीति के द्वारा होने वाली हिंसा का संकेत करता है। देवता विलास में लीन सज्जनों के प्रतीक है, उनकी पराजय विलास और दुर्बलता की पराजय है। स्वर्गाधिपति इन्द्र का इन्द्र-पद के प्रति मोह विलास के अतिरिक्त अधिकार के मोह को भी सूचित करता है। वृद्धो का यही अधिकार-मोह समर्थ युवकों को अधिकार से वचित करके उन्हे भ्रष्ट बनाता है। इन्द्र का पुत्र जयन्त ऐसे भ्रष्ट युवको का प्रतिनिधि है। रामकथा मे सीता के पति जयन्त का व्यवहार उसके इस भ्रष्ट व्यवहार का उदाहरण है। वृद्धों के अधिकार-मोह के कारण अधिकार से वचित और लक्ष्यहीन एव भ्रष्ट जयन्तो की सख्या हमारे समाज में बढ़ रही है। युवको के भ्रष्ट होने पर समाज नष्ट हो जाता है और मानवीय जीवन की विभूतियाँ विपन्न हो जाती है। कदाचित् वृद्धों का अधिकार-मोह ही युद्धो की अनन्त परम्परा के मार्ग से आज के विश्व विनाशक अन्तर्राष्ट्रीय सकट की

ओर मानव-समाज को खोचता लाया है। परशुराम के सदे
के अनुरूप योग और शक्ति की समन्वित साधना से सम्पं
युवकों का उत्तरदायित्व- पूर्ण नेतृत्व ही समाज को अनी
और विनाश से बचा सकता है। युवकों के इस गौरव अ
सत्कार में ही मानवीय जीवन की विभूतियाँ सफल हो सक
हैं। मानवीय जीवन की यही आतंक-रहित सफलता 'सेनान
काव्य का अभीष्ट सामाजिक आदर्श है।

इस आदर्श को चित्रित करने के लिए 'सेनानी' व
कवि ने कवि-सुलभ कल्पना के अधिकार का उपयोग किय
है। इस अधिकार का उपयोग कर के ही उसने पहले सर्ग ग
परशुराम के आश्रम में कुमार कार्त्तिकेय की शस्त्र शिक्षा क
वर्णन किया है, जिसका कार्त्तिकेय की पौराणिक कथा मे को
आधार नहीं मिलता। कवि कल्पना का इससे भी अधि
क्रान्तिकारी रूप तीसरे सर्ग मे चित्रित स्वर्ग के कल्पान्तर
मिलता है। शक्ति-साधना के द्वारा स्वर्ग के तेजस्वी कल्पान्तर
की कल्पना कदाचित् किसी कव्य में नही की गई है। चतुर्थ
सर्ग में लक्षितइन्द्र और इन्द्राणी का वानप्रस्थ-ग्रहण तथ
जयन्त का इन्द्र पद पर अभिषिक्त होना एक क्रान्तिकारी
कल्पना ही नही वरन् उस समस्त पौराणिक परम्परा के
विपरीत है, जिसमें सभी प्रकार के छल-बल से इन्द्र का पद
सुरक्षित रहा है। वृद्धों के अधिकार-त्याग और वानप्रस्थ
ग्रहण के द्वारा ही युवकों के अधिकार और नेतृत्व का मार्ग
प्रशस्त हो सकता है। भारतीय धर्म- शास्त्र की यही मर्यादा

है। रघुवंश के समान युवराजों के अभिषेक में इस मर्यादा के व्यवहार का उदाहरण मिलता है। इन्द्र के वानप्रस्थ के द्वारा 'सेनानी काव्य' मे इस मर्यादा की की प्रतिष्ठा सर्वोच्च शिखर पर की गई हैं। स्वर्ग मनुष्य का आदर्श है और इन्द्र का वैभव- पूर्ण पद मनुष्य का अभीष्ट है। इसे प्राप्त करने के लिये लोग तपस्या करते थे और इसे सुरक्षित रखने के लिए इन्द्र ने तपस्वियो के प्रति सभी प्रकार के छल-बल का प्रयोग किया। परशुराम की शक्ति-साधना के सन्देश के द्वारा विलास और वैभव के आदर्श-रूप स्वर्ग का कल्पान्तर तथा देव-सेनानी कुमार कार्त्तिकेय के सेनापतित्व मे असुरो का उन्मूलन एव जयन्त के अभिषेक में यौवन की महिमा की प्रतिष्ठा 'सेनानी' काव्य की सामाजिक आकाक्षायें हैं। सिकन्दर के समय से दो हजार वर्ष तक अनेक बार होने वाले विदेशी आक्रमणों की भूमिका मे तथा चीनी आक्रमण के वर्तमान प्रसग मे दस वर्ष पूर्व रचित 'सेनानी' काव्य देश के सक्रिय जागरण और उसकी सुदृढ़ सुरक्षा का सन्देश-वाहक भी है।

—पौराणिक कथा—देव-सेनानी कुमार कार्तिकेय की कथा शिव-चरित के प्रसग मे पुराणो मे मिलती है। स्कन्द पुराण का तो नामकरण ही कुमार कार्त्तिकेय के नाम पर ही हुआ है। कुमार कार्त्तिकेय का नाम स्कन्द भी है। स्कन्द पुराण अठारह पुराणो मे अत्यन्त महत्व- पूर्ण और आकार मे सबसे अधिक विशाल है। उसकी श्लोक संख्या ७५ हजार है। महा-भारत मे सवा लाख श्लोक हैं। महाभारत के बाद स्कन्द

पुराण ही सबसे अधिक विपुल आकार का ग्रंथ है। पुराणों
देव सेनानी कुमार कार्त्तिकेय की कथा इस प्रकार है
देवासुर संग्राम में देवता निरन्तर हारते रहे। अनेक असुरों
उन्हे अनेक बार हराया। एक बार तारक नामक राक्षस
अपनी प्रबल शक्ति से देवताओं को पराजित कर इन्द्रलोक
अपना अधिपत्य कर लिया और देवताओं को अपना दास ब
लिया। अपनी पराजय से दुःखी होकर तथा अपने उद्धार
कोई मार्ग न देख कर देवता ब्रह्मा जी के पास गये और उन
समक्ष विनयपूर्वक अपनी व्यथा का निवेदन किया। ब्रह्मा ज
सृष्टि के देवता हैं, वे सृष्टि के नैसर्गिक क्रम मे हस्तक्षेप नहं
कर सकते, असुरों का उदय और देवताओं की पराजय भी सृि
के नैसर्गिक क्रम हैं। ब्रह्मा जी ने देवताओं को उद्धार क
एक मार्ग बताया, उन्होंने बताया कि यदि शिव का पुत्र देव
ताओं का सेनापति बन सके तो देवता तारकासुर को पराजि
कर सकते हैं।

ब्रह्मा का यह सन्देश देवताओं के लिए विजय का एक
महान् आश्वासन था, किन्तु इसमें एक व्यावहारिक कठिनाई
शिव की तपस्या थी। शिव सदा योग और समाधि में लीन
रहते थे, उनके पुत्र की कल्पना करना बहुत कठिन था। इस
कठिनाई में देवताओं को गंधर्वों से एक आशा का सन्देश
मिला। इस संदेश के द्वारा उन्हें विदित हुआ कि हिमाचल
राज की कन्या पार्वती शिव की प्राप्ति के लिए कैलाश पर्वत
पर उनकी निष्ठा पूर्वक सेवा कर रही हैं। शिव घोर समाधि

मे लीन हैं, ऐसे अवसर पर यदि कोई उपाय हो सके तो शिव की समाधि को भंग करके उन्हे पार्वती के प्रति आकर्षित किया जा सकता है और देव सेनानी की प्राप्ति का स्वप्न सफल बनाया जा सकता है। किन्तु शिव की समाधि को भग करने का कार्य अत्यन्त दुष्कर और संकटपूर्ण था। इस सकट में कामदेव ने इन्द्र को अपनी सेवायें अर्पित की। कामदेव ने शिव की तपस्या भग करने का भार अपने ऊपर लिया। अपनी सहचरी रति और सहयोगिनी अप्सराओं तथा अपने बन्धु वसन्त को लेकर कामदेव ने कैलाश पर्वत पर अभियान किया। वसन्त का उन्मादक वातावरण कैलाश की योग-भूमि को भोग के योग्य बनाने लगा। अप्सराओं के नृत्य और सगीत से कैलाश का निर्जन प्रदेश मुखरित हो उठा। इसी अवसर पर एक वृक्ष कुञ्ज मे छिप कर कामदेव ने शिव की ओर लक्ष्य करके अपने पुष्पधनु का संधान किया और एक पुष्पवाण उन पर छोड़ा। शिव की तपस्या भग हो गई और उनके नेत्र खुल गये। पार्वती के चन्द्रमुख को देखकर शिव के समुद्रोपम गम्भीर हृदय में किंचित आन्दोलन हुआ। किन्तु शिव ने शीघ्र ही संभल कर अपने तृतीय नेत्र की अग्निशिखा से कामदेव के शरीर को भस्म कर दिया। देवता और पार्वती दोनो निराश होकर अपने घर चले गये।

पार्वती ने अपने तिरस्कार को अपने रूप की निष्फलता माना और शिव को प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या का निश्चय किया। हिमालय के जिस शिखर पर पार्वती ने कठोर

तपस्या की थी, वह गौरी-शिखर के नाम से प्रसिद्ध है। पार्वती का यह तपोमय आदर्श भारतीय कन्याओं को चिरन्तन काल से प्रेरित करता आया है। पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने उनका वरण किया। पौराणिक कथा के अनु-सार एक अलौकिक रूप से कुमार कार्त्तिकेय का जन्म हुआ। शर (सरपत) के वीरुध में जन्म होने के कारण वे शरजन्मा कहलाये। छः कृत्यकाओं के द्वारा पोषित होने के कारण उन्हें कार्त्तिकेय और षडानन के अभिधान मिले। कथा इस प्रकार है कि शैशव मे ही कुमार कार्त्तिकेय देवताओ के सेनापति बने। छः दिन की अल्पवय में ही देव-सेनानी का पद ग्रहण कर उन्होंने एक अलौकिक चमत्कार के साथ तारकासुर का संहार किया। कालिदास के "कुमारसम्भव" महाकाव्य में इसी अलौकिक पौराणिक वृत्त के आधार पर कुमार कार्त्ति-केय के जन्म और तारकासुर के वधका वर्णन किया गया है।

सेनानी के पर्यायवाची नाम—देव सेनानी कुमार कार्त्तिकेय शिव के पुत्र थे। उनका एक नाम स्कन्द भी था। गीता में भगवान ने उनको सेनापतियों में सर्वश्रेष्ठ बताया है (सेनानी-नामहस्कन्दः—अध्याय १०)। विभूति योग नामक दसवें अध्याय में भगवान ने संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं को अपनी विभूति से युक्त और अपने तेज का एक अंश बताया है सर्वाधिक विभूति से युक्त होने के कारण पर्वतों में हिमालय को, नदियों में गंगा को, नक्षत्रों में चन्द्रमा को और इसी प्रकार अन्य सर्वश्रेष्ठ वस्तुओं को अपना स्वरूप बताया है। इसमें

प्रसंग में भगवान ने कहा है कि मैं सेनापतियों में स्कन्द कुमार हूँ अर्थात् सेनापतियों में स्कन्द कुमार सर्वश्रेष्ठ है और वह विभूति के अतिशय से युक्त होने के कारण मेरा ही स्वरूप है।

स्कन्द के अतिरिक्त देवसेनानी कुमार कार्त्तिकेय के अन्य अनेक नाम हैं। अमरकोष में उनके अठारह नाम बताये गये हैं, जो इस प्रकार है—

कार्त्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः।
पार्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः॥
बाहुलेयस्तारकजिद्विशाखः शिखिवाहनः।
षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारणः॥
(प्रथमकाण्ड स्वर्गवर्ग श्लोक ४१-४२-४३)

अर्थात् कुमार कार्त्तिकेय के अठारह नाम हैं—कार्त्तिकेय, महासेन, शरजन्मा, षडानन, पार्वतीनन्दन, स्कन्द, सेनानी, अग्निभू, गुह, बाहुलेय, तारकजित, विशाख, शिखिवाहन, षाण्मातुर, शक्तिधर, कुमार, क्रौञ्चदारण। इनमें कार्त्तिकेय, षडानन, पार्वतीनन्दन, स्कन्द, सेनानी, तारकजित, शिखिवाहन, षाण्मातुर, शक्तिधर और कुमार ये दस नाम अधिक प्रसिद्ध एवं अर्थवान हैं। उनका मूल नाम स्कन्द है। गीता मे उनके स्कन्द नाम को ही मान्यता दी गई है (सेनानीनमहं स्कन्दः)। उनका मूल नाम स्कन्द ही था। जिस पुराण में उनके चरित का विस्तृत वर्णन है उसका नाम भी स्कन्द है। कुमारवय में ही उन्होंने ताकर वध आदि अनेक पराक्रम किये थे। अतः वे कुमारों के आदर्श बने और कुमार उनके नाम का पर्याय बन गया। अपने पराक्रम के कारण स्कन्दकुमार कुमारों के आदर्श

के रूप में इतने प्रतिष्ठित हुए कि अधिकांश भारतीय पुरुषों के नाम मे उत्तरार्द्ध के रूप में 'कुमार' पद मिलता है। राजवंशो एव उच्चकुलों में नाम के पूर्व 'कुमार' शब्द का प्रयोग एक गौरवमय पद के रूप में होता है। बगाल और बिहार के राजवशो में राज-कुमारों के लिए 'कुमार' के पूर्वपद का प्रयोग होता रहा है। अन्य भागो में प्रयुक्त 'कुँवर' शब्द 'कुमार' का ही रूपान्तर है।

स्कन्द कुमार पार्वती के पुत्र थे, इसलिए वे पार्वतीनन्दन कहलाये। पौराणिक वृत्त के अनुसार कृत्तिकाओं ने उनका पालन किया था, इसलिए वे कार्तिकेय कहलाये। कृत्तिकाओं की सख्या छः है, अत छ माताएँ होने के कारण वे षाण्मातुर कहलाते हैं। स्कन्द कुमार के पौराणिक रूप में छ. मुख माने जाते हैं, जिस प्रकार ब्रह्मा जी के चार मुख हैं। अत. वे षडानन कहलाते हैं। जिस प्रकार शिव का वाहन वृषभ है और सरस्वती का वाहन हस है, उसी प्रकार स्कन्दकुमार का वाहन शिखि अर्थात् मयूर है। अत वे शिखिवाहन कहलाते हैं। परम शक्तिशाली होने के कारण वे शक्तिधर हैं। सेनानी का अर्थ सेनापति है। देवताओं के सेनापति होने के कारण वे सेनानी कहलाये। उनका सेनापतित्व इतना असाधारण, अद्भुत, महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध रहा कि सेनानी का विशेषण उनके नाम की बोधक सज्ञा बन गया। तारकासुर को पराजित करने के कारण उनका नाम तारकजित है।

देवताओं की विशाल सेना के नायक होने के कारण वे 'महासेन' कहलाते हैं। अग्नि से उत्पन्न होने के कारण 'अग्निभू' और शर (सरपत), के बीच में जन्म लेने के कारण 'शरजन्मा'

ी संज्ञायें भी उन्हें मिली। कालिदास ने एक प्रसग में उनके लिए गुह' नाम का प्रयोग भी किया है—

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।
गुहोऽपि येषा प्रथमाप्तजन्मना न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥
॥ कुमारसम्भव ५–१४ ॥

४—सेनानी काव्य का कथानक—पौराणिक शिव-चरित की भूमिका मे रचित होते हुए भी 'सेनानी' काव्य का कथानक पूर्णत. काल्पनिक होने के कारण पूर्णत. मौलिक है। परशुराम, स्कन्द, जयन्त, इन्द्र, तारक, शोणितपुर आदि के कुछ पौराणिक नामो के अतिरिक्त 'सेनानी' काव्य के कथानक में तनिक भी प्राचीन आधार नही है। इन नामों के सूत्रों पर काव्य का सम्पूर्ण कथानक कल्पना द्वारा रचित है। इसके कथानक के किसी वृत्त का संकेत मात्र भी पुराणो अथवा प्राचीन काव्यों में नही मिलता।

'सेनानी' काव्य का मौलिक कथानक इस प्रकार है। पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने उनका वरण किया। विवाह के बाद पार्वती के गर्भ से स्कन्द का जन्म हुआ। स्कन्द का यह औरस जन्म कवि की कल्पना है। पुराणो और प्राचीन काव्यों में उनका जन्म अलौकिक रूप से माना गया है। अलौकिकता आधुनिक युग के विश्वास के अनुरूप नही है। अत कवि ने स्कन्द के 'औरस जन्म की सर्जना' की स्वतन्त्रता का उपयोग किया है। समाज और संस्कृति की सृजनात्मक परम्परा का जो प्रतिपादन कवि का

अभीष्ट है, वह भी अलौकिकता के आधार पर सम्भव नहीं है, कुमार जन्म का औरस सम्बन्ध ही इस परम्परा की प्रेरणा बन सकता है।

स्वच्छन्द रूप से एक पर्वतीय सिंह कुमार की भाँति स्कन्द का ओजस्वी पालन हुआ। अपने सहज पराक्रम और साहस से वह अपने पर्वतीय सखाओं का नायक बन गया। कैलाश के निकट ही स्थित एक पाठशाला में उनकी आरम्भिक शिक्षा हुई। खेल-कूद, साहस, उत्पात, आरम्भिक शिक्षा आदि में उनके तेजस्वी व्यक्तित्व का विकास होने लगा। किन्तु उनके माता-पिता को उनकी भावी शिक्षा की चिन्ता हुई। देवताओं ने एक सेनापति प्रदान करने के लिए शिव से प्रार्थना की थी। स्कन्द के जन्म से उनकी आशा पूरी हुई। किन्तु देवसेनानी पद के योग्य शिक्षा-दीक्षा कुमार के लिए अपेक्षित थी। यह एक योग्य गुरु के निकट तथा उनके अनुग्रह से ही सम्भव हो सकता था। स्कन्द की शिक्षा के इन्हीं प्रश्नों को लेकर पार्वती और शिव चिन्तित थे।

उनकी इस चिन्ता में आशा की ज्योति के समान एक बार परशुराम जी कैलाश पर पधारे। वे शिव के बड़े भक्त थे। अतः शिव के दर्शन के लिए उनका आगमन हुआ था। तेजस्वी स्कन्द कुमार को देखकर परशुराम ने शिव से कहा कि "आज मेरी विद्या को एक योग्य और उत्तम शिष्य मिल गया।" परशुराम की याचना को अयाचित वरदान मानकर शिव-पार्वती ने परशुराम के निकट स्कन्द कुमार की

शिक्षा-दीक्षा का प्रस्ताव स्वीकृत किया । परशुराम वेदपाठी ब्राह्मण होने के अतिरिक्त एक अद्भुत धनुर्धारी और धनुर्विद्या के प्रसिद्ध आचार्य थे । उन्होंने सहस्रबाहुआदि अनेक दुष्ट राजाओं को पराजित किया था । कौरव-पाण्डवों के धनुर्विद्या के गुरु द्रोणाचार्य भी परशुराम के शिष्य थे । महारथी कर्ण को भी उन्होंने धनुर्विद्या सिखाई थी । परम प्रतापी और धनुर्विद्या के अद्भुत आचार्य होने के साथ-साथ परशुराम एक अवतारी ब्राह्मण थे । ज्ञान और शक्ति का समन्वय उनका *जीवन-दर्शन था । इस समन्वय के आधार पर अनीति का* निवारण और एक आनन्दमयी एवं अभयपूर्ण संस्कृति का स्थापन उनके जीवन के लक्ष्य थे । ऐसे अवतारी आचार्य के निकट शिक्षा ग्रहण करके ही स्कन्द कुमार विजयी देवसेनानी बन सकते थे । अतः पौराणिक आधार न होते हुए भी परशुराम के निकट स्कन्द कुमार की शिक्षा की कल्पना मौलिक होने के साथ-साथ उचित एवं महत्वपूर्ण ही है ।

हिमालय पर्वत के एक अत्यन्त सघन और निर्जन वन में परशुराम का आश्रम बना हुआ था । परशुराम के भय के कारण उस आश्रम के निकट न कोई जनवास था और न वहाँ असुरों के उत्पात तथा न गन्धर्वों और अप्सराओं के लीला-विलास दिखाई देते थे । उस एकान्त आश्रम में परशुराम युवक ब्रह्मचारियों को शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा देते थे । किन्तु अभी तक उनको कोई ऐसा 'योग्य' शिष्य नहीं मिला था, जिसे वे अपनी विद्या का उत्तराधिकारी मानकर

कृतार्थ हो जाते। स्कन्द कुमार को पाकर परशुराम मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि दीक्षा ग्रहण कर स्कन्द कुमार उनकी विद्या का योग्य उत्तराधिकारी बनेगा, देवसेनानी बनकर अपने साथी वटुकों के सहयोग से तारकासुर को पराजित कर स्वर्ग का उद्धार करेगा तथा अनीति के उच्छेदन की एक सुदृढ़ परम्परा समाज में स्थापित करेगा।

परशुराम के आश्रम में शस्त्र और शास्त्र की समुचित शिक्षा प्राप्त करके स्कन्द कुमार तथा उनके साथी वटुक अपने-अपने घरों को गये। शिव के कैलाश व कुटीर में कुमार के समावर्त्तन का समारोह मनाया गया। स्कन्द के जन्म और उनकी दीक्षा से प्रसन्न सभी देवता इस समारोह में भाग लेने आये। तेजस्वी शिव-कुमार को देखकर देवताओं को विदित हुआ कि जय का सेनानी कैसा होना चाहिए। समावर्तन का समारोह पूर्ण होने के बाद देवताओं ने स्कन्द कुमार के देवसेनानी बनकर स्वर्ग को चलने की कामना की। माता-पिता से आज्ञा लेकर इन्द्र के साथ ऐरावत पर बैठकर अपने साथी वटुकों के सहित स्कन्द कुमार स्वर्ग में आये। स्वर्ग में आकर उन्होंने असुरों के द्वारा किये गये ध्वंस और उनके उत्पातों के परिणामों को देखा। असुरों के उत्पात और देवों के संताप की कल्पना करके कुमार के हृदय में बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। इन्द्र के साथ स्वर्ग की दशा का निरीक्षण करके स्कन्द कुमार देव-सभा में आये। अप्सराओं ने उनका अभिनन्दन किया और देवगुरु बृहस्पति ने उनका अभिनन्दन

किया । देवगुरु के अभिनन्दन के बाद स्कन्द कुमार ने अपने गुरु परशुराम का सदेश देवताओं को सुनाया । उन्होंने बताया कि "एकांगी अध्यात्म और योग देवताओं और सज्जनों की दुर्बलता बन जाते हैं । देवताओं को उनका विलास और भी दुर्बल बना देता है । इसी दुर्बलता के कारण देवता और सज्जन उत्पाती असुरों से सदा हारते रहे । यदि विलास को छोडकर देवता शक्ति की साधना करें, तो वे विजयी हो सकते हैं । यदि तुमने मुझे अपना सेनानी चुना है, तो शक्ति योग के मार्ग को अपनाओ । शक्ति योग के मार्ग से ही तुम्हें विजय प्राप्त होगी ।" स्कन्द कुमार का सन्देश सुनकर देवता मानो सपने से जागे । वे सब एक साथ प्लुत स्वर में बोलउठे–

धन्य हुए हम आज प्राप्त कर निज सेनानी,
जीवन-जय की आज सरणि हमने पहचानी;
हम जागृत हैं आज शक्ति साधन करने को,
हम उद्यत हैं आज अमर हो भी मरने को ।

सेनानी के सन्देश से जाग्रत होकर देवताओं ने शक्ति-साधना का आरम्भ किया । स्वर्ग में एक कल्पान्तर-सा हो गया । जहां किन्नरियों का मधुर गान गूँजता था, वहां कठिन कृपाण बज रहे थे । जहाँ प्रेम का अभिसार होता था, वहाँ वीरों का दर्पित पदचार पृथ्वी को कम्पित करता था । नन्दनवन में एक नई क्रान्ति का इतिहास बन रहा था । स्वर्ग के इस कल्पान्तर को देखकर अप्सरायें गर्व और हर्ष का अनुभव करती थी । अनन्त विलास की अमरावती एक

स्वप्न के समान भूल गई। शस्त्र और योग की साधना देवताओं का धर्म बन गई। इस साधना से दीप्त होकर पराजित देवताओं के प्राण युद्ध और विजय के लिए उत्कंठित होने लगे। देवताओं की उत्कंठा देखकर देव सेनानी स्कन्द कुमार ने प्रयाण का तूर्य बजाया और तारकासुर की राजधानी शोणितपुर पर अभियान किया।

देव-सेना का कोलाहल सुनकर तारकासुर भी युद्ध के लिए उद्यत हो गया। अपने सेनापति और पुत्रों को साथ लेकर विशाल सेना सहित तारकासुर ने देवसेना के मार्ग का प्रतिरोध किया। घनघोर युद्ध आरम्भ हो गया। देवताओं के अद्‌भुत पराक्रम और कौशल से तारकासुर के सैनिक कट कर गिरने लगे। युद्ध की इस अपूर्व गति को देखकर तारकासुर बहुत क्षुब्ध और क्रोधित हुआ। देवताओं और सेनानी स्कन्द पर उसने तीक्ष्ण व्यंग्य किये तथा अपने पुत्रों और सेनापतियों को उत्तेजित किया। तारकासुर तथा उसके पुत्र और सेनापति भयंकर युद्ध करने लगे। अन्त में सेनानी के पराक्रम और कौशल से तथा उनके साथी वटुकों एवं देवताओं के सहयोग से तारकासुर युद्ध में मारा गया।

तारकासुर का वध होने के बाद उसकी राजधानी शोणितपुर में शोक छा गया। तरुण वीरों की युवती विधवायें, उनकी वृद्धा मातायें और उनके किशोर बालक चीत्कार एवं विलाप कर रहे थे। देवताओं की सेना ने जयजयकार करते हुए नगर के मार्गों में अभियान करके

राजप्रासाद की ओर प्रयाण किया। ग्रास्तिन अन्तःपुर को दूत के द्वारा शान्ति का सन्देश भेजकर सेनानी ने प्रमदाओं को अभयदान के द्वारा आश्वासित किया। शोणितपुर के वृद्धजनो को प्रासाद के प्रागण मे आमन्त्रित करके सेनानी ने शान्ति-सभा का आयोजन किया। इस सभा मे सेनानी ने शोणितपुर के शेष निवासियो को शान्ति और अभय का ओजस्वी सन्देश दिया। इस सन्देश मे उन्होंने तारकासुर के क्रूर पराक्रमो का सम्मान और व्यग्य से पूर्ण निदर्शन किया। उन्होंने बताया कि "तारकासुर ने अपने पराक्रम से कितने सज्जनो और कितनी सतियो के प्राण और लाज का हरण करके अपनी अद्भुत कीर्ति को त्रिभुवन मे फैलाया। किन्तु तारक के यह अत्याचार देवताओ और सज्जनो के प्रमाद और दुर्बलता पर ही पलते रहे थे। आज अन्त मे परशुराम के शक्ति योग से जाग्रत होकर देवता विजयी हुए।

अपना ओज और करुणापूर्ण सन्देश देकर सेनानी ने अपने वज्र करों से जयन्त को राजमुकुट पहनाया और उन्हे शोणितपुर का सम्राट बनाया। जयन्त का यह अभिषेक उनके इन्द्रासन प्राप्त करने की भूमिका है। सेनानी का अभय और आश्वासन पाकर अन्तःपुर के लोगो ने तारकासुर की कुमारी कन्या को जयन्त की वधू और शोणितपुर की सम्राज्ञी बनाने का निश्चय किया। सेनानी ने जब जयन्त को राजमुकुट पहनाया, उसी समय तारककुमारी जयमाला लेकर सभा में उपस्थित हुई और उसने जयन्त के गले मे जयमाला पहनाई।

राजप्रासाद के जनों और शोणितपुर की जनता ने अपने नये सम्राट और नयी सम्राज्ञी का हर्ष पूर्वक अभिनन्दन किया। देवताओं की विजय का समाचार पाकर स्वर्ग में उत्साह और स्वागत की तैयारियाँ होने लगी। विजय-वधू को साथ लेकर सेनानी और जयन्त के सहित इन्द्र स्वर्ग को लौटे। इन्द्राणी ने सबसे पहले सेनानी के माथे पर विजय-तिलक अंकित किया। जयन्त ने वधू सहित माँ का वन्दन किया, दोनों का तिलक करके हर्षित इन्द्राणी बोली—

मेरे जयन्त की जय-लक्ष्मी यह आई,
इस वैजयन्त ने आज स्वामिनी पाई,
सौभाग्यवती है अमरावती हमारी,
है सफल स्वर्ग की आज भूतियाँ सारी।"

पुत्र और पुत्रवधू के स्वागत में इन्द्राणी ने अपने वानप्रस्थ का संकेत किया। स्वर्गलोक में सेनानी का जय-जयकार गूँजने लगा। इन्द्र और इन्द्राणी ने प्रेम और आदर-पूर्वक उनको विदा की। आशीर्वाद सहित अभिनन्दन करके इन्द्राणी ने प्रेम-भरी वाणी में सेनानी से कहा—

"कहके गिरिजा से प्रणतिनिवेदित मेरी,
कहना युग युग तक वाणी तुम्हारी चेरी
प्रति युगवती त्रिभुवन की पावन नारी,
है आज उमा से गौरव की अधिकारी।"

विदा के समय इन्द्र ने सेनानी से कहा—

हे वीर तुम्हारी जय हो !
तुम नव सम्कृति के उज्ज्वल सूर्योदय हो;
आलोक विश्व का विक्रम बनें तुम्हारे
सेनानी हो कुमार त्रिभुवन के सारे।

तारक के वध और देवाताओ की विजय से त्रिभुवन मे अभय और आनन्द छा गया। ऋषि-मुनि शान्तिपूर्वक यज्ञ करने लगे। मुनि कन्यायें वन मे निर्भय विचरण करने लगीं। वालक-वालिकायें, जो असुरों की आशका से वाहर नही निकल सकती थी, निर्भय और स्वच्छन्द विहार करने लगे। स्वर्ग और पृथ्वी पर अभय और आनन्द से पूर्ण एक नई सस्कृति का विकास होने लगा। परशुराम की शक्ति-साधना समाज की परम्परा वन गई। ज्ञान और शक्ति के समन्वय के द्वारा एक शान्ति, अभय और आनन्द से पूर्ण सस्कृति की स्थापना का उनका चिरन्तन स्वप्न पूरा हुआ।

५—**परशुराम का संदेश**— सेनानी काव्य का दार्शनिक आधार परशुराम का सदेश है, जो उनके अवतार में साकार हुआ तथा सेनानी काव्य की कल्पना में परशुराम के आश्रम मे प्रशिक्षित कुमार कार्तिकेय तथा अन्य वटुकों की शिक्षा-दीक्षा एव उनके पराक्रम मे चरितार्थ हुआ है। परशुराम का यह सन्देश सामान्य रूप से उनके अवतार की धारणा के अनुसार ज्ञान और शक्ति अथवा साधना और शौर्य के समन्वय का सदेश है। राम के उदात्त और कृष्ण के मधुर चरित्र से मुग्ध भारतीय-समाज और साहित्य जिस प्रकार शिव के तपोमय

चरित्र की उपेक्षा करते रहे, उसी प्रकार वे एकांगी अध्यात्म और अहिंसा से प्रभावित होने के कारण परशुराम के सन्देश के प्रति भी उदासीन रहे। परशुराम भगवान के दस अवतारों में सातवें अवतार थे। वस्तुत उनका भी नाम राम था। परशुधारी होने के कारण तथा अयोध्यापति राम से भेद करने के लिए उनका "परशुराम" नाम ही प्रसिद्ध हो गया। परशु उनका विशेष शस्त्र था, जिस प्रकार धनुष राम का था और चक्र श्रीकृष्ण का था। परशुराम का यह परशु शक्ति और शौर्य का प्रतीक है। जाति और जन्म से परशुराम ब्राह्मण थे। अतः वे वेद के ज्ञाता तथा अध्यात्म के आराधक थे। ज्ञान और शक्ति अथवा ज्ञान और शौर्य का समन्वय ही उनका सन्देश था। एकांगी अध्यात्म और अहिंसा की मरीचिका मे युगों से भटकते हुए भारत के लिए परशुराम का यह सन्देश ही आज के संकट-काल मे रक्षा का एकमात्र मार्ग है। परशु-राम का यह सन्देश उन्हीं के शब्दों में सुनने योग्य है—

हृदय मे वेद, कर में परशु भीषण धर रहा हूँ,
युगो से विश्व मे यह घोषणा मैं कर रहा हूँ,
अरे! ओ! ज्ञान के साधक दलित विप्रो! अभागो!
अरे! तुम शक्ति की भी साधना के अर्थ जागो।
न होगा विश्व का उद्धार केवल ज्ञान-नय से,
प्रतिष्ठित धर्म होगा भूमि पर केवल अभय से,
अकेला बल यदपि बनता अनर्गल दर्प खल का
अकेला ज्ञान बनता दास दुर्बल दृप्त बल का।

दया पर दानवों की धर्म कब तक जी सकेगा ?
रुधिर से दुर्बलों के धर्म-तरु कब तक फलेगा?
न जब तक शक्ति का समवाय होगा ज्ञान-नय से,
प्रतिष्ठित धर्म तब तक हो न पायेगा अभय में।

परशुराम का यह सन्देश एकांगी अहिंसा के विपरीत है। परशुराम के मत में अहिंसा का प्रभाव सज्जनों और दुर्बलों पर अधिक होता है। अहिंसा का दर्शन उन्हें और दुर्बल बना देता है। उन्हीं की श्रद्धा के आधार पर सन्त और महात्मा अहिंसा के नेता बन जाते हैं। दुष्टों पर अहिंसा का कोई प्रभाव नहीं होता। दुष्टों के संगठन अहिंसा की दुर्बलता से व्यवस्थित लाभ उठाते हैं। हृदय-परिवर्तन के उदाहरण एक दो अपवाद के रूप में ही मिलते हैं। ये अपवाद अहिंसा के प्रभाव को नहीं, वरन् अहिंसा की निष्फलता को प्रमाणित करते हैं। इन अपवादों के आधार पर अहिंसा का प्रचार प्रवंचना है। अहिंसा का नेतृत्व दुष्टों के हृदय-परिवर्तन के आधार पर नहीं, वरन् सज्जनों और दुर्बलों की श्रद्धा एवं भीरुता के आधार पर पलता है—

विनय से चाहते हैं जो असुर को सुर बनाना,
कुसुम से चाहते वे पर्वतों में पुर बनाना,
चढ़ा बलि धर्मगीतों की सदा ये धर्मधारी,
बने रहते अहिंसा शान्ति के पूजित पुजारी,
कभी जाकर न असुरों के सुरक्षित रुधिर पुर में,
जगाया धर्म का आलोक उनके अन्ध उर में,

रहे बस निर्बलों को ही सदा दुर्बल बनाते,
उन्हीं की भक्ति में यज्ञ-पर्व वस अपना मनाते।

अहिंसा के समान ही धर्म और भक्ति में भी दुर्बलता, और भीरुता एवं निष्कर्मता का भ्रम रहता है। अपनी रक्षा के लिए भगवान का अवलम्ब भ्रम है। भगवान ने सृष्टि की रचना करके बुद्धि और विभूतियाँ मनुष्य को प्रदान की हैं। अपने हित की रक्षा समर्थ मानव का कर्तव्य है। सजग और सक्रिय शक्ति-साधना से ही सज्जनों के कल्याण की सुरक्षा हो सकती है। किसी भी नेता ने शक्ति का यह संदेश देकर भारतीय जनता को जागरित नहीं किया—

रहे रतिनास से सुर स्वयं को निर्बल बनाते,
रहे नर दीन दुर्बल धर्म के बस गीत गाते,
किसी ने भी उठाकर सिंह शावक-सी न छाती,
सुनाई जागरण की शक्ति के गर्जित प्रभाती।
रहे जो नाम से भगवान के जग को भुलाते,
वही यदि धर्म में शिवशक्ति की निष्ठा जगाते,
नहीं इतिहास में इतने पतन के पर्व होते,
नहीं सुर-नर पतित किन्नर तथा गन्धर्व होते।

परशुराम ने अपने इस शक्ति योग को पृथ्वी पर सफल बनाने के लिए हिमालय पर एक आश्रम बनाया था, जहाँ वे ब्रह्मचारियों को ज्ञान और शक्ति की समन्वित शिक्षा देते थे। इसी आश्रम में कार्तिकेय की शिक्षा हुई थी। शिक्षा की परम्परा से ही शक्ति की साधना और कल्याण की सुरक्षा स्थायी बन सकती है।

परशुराम की यह शक्ति-साधना दुष्टों के बल दर्प की भाँति दूसरों के दलन अथवा शासन के लिए नहीं है। शिष्यों को उनका यह आदेश है कि—

सदा उपयोग होगा ज्ञान में बल का हमारे,
रहेंगे शक्तिधारा के सदा श्री-शिव किनारे,
हमारा ध्येय बस आतंक का उच्छेद होगा,
बढ़ेगा धर्म क्या, जब तक न वह निरशंक होगा।

दीक्षान्त के समय परशुराम ने अपने शिष्यों को यह आशीर्वाद दिया था—

सदा बन शक्ति के सैनिक, दलन कर दानवों का,
मिटाना भेद औ भय तुम सुरों औ मानवों का,
यही आशीष अन्तिम आज तुमको वत्स ! मेरा,
मिटाना ज्ञान-बल से विश्व का दुर्नय अँधेरा।
रहे शिव-ज्ञान की निष्ठा तुम्हारे दृढ़ हृदय में,
प्रतिष्ठित शक्ति-बल तुमको करे शाश्वत अभय में।
तुम्हारे शौर्य से यह धर्म की धरणी अभय हो,
सदा ही धर्म के रण में तुम्हारी पूर्ण जय हो।

परशुराम का यह सन्देश ही आज के संकटकाल में भारत के नवयुवकों को देश की रक्षा और उन्नति के लिए प्रेरित कर सकता है।

६—युवकों के आदर्श सेनानी—

सेनानी काव्य में देव-सेनानी कुमार कार्त्तिकेय का चरित्र नवयुवकों के एक उज्ज्वल आदर्श के रूप में अंकित किया गया है।

'सेनानी' के कवि का विश्वास है कि सेनानी के समान तपोनिष्ठ और वीर युवक ही अनीतियों से समाज की और आक्रमण से देश की रक्षा कर सकते हैं। ऐसे तपस्वी और महाबली युवक शिव-पार्वती के समान दम्पति की तप-साधना तथा परशुराम के समान आदर्श गुरू के निकट प्राप्य शिक्षा के द्वारा ही बन सकते हैं। परशुराम एक ओर वेद के ज्ञाता थे तथा दूसरी ओर परशुधारी, महाबली योद्धा थे। उन्होंने युवावय मे अकेले ही अनेक अत्याचारी राक्षसों का संहार किया था और समाज के सम्मुख ज्ञान एवं शक्ति का समन्वित आदर्श प्रस्तुत किया था। सेनानी-काव्य में पहले सर्ग में यह चित्रित किया गया है कि परशुराम अपने हिमालय स्थित आश्रम में किशोर वटुकों को शस्त्र और शास्त्र की समन्वित शिक्षा देकर समाज के पालक आदर्श युवकों की एक दृढ़ परम्परा का निर्माण कर रहे थे। यही परम्परा दुष्टों की अनीति और अत्याचार का स्थायी उपचार बन सकती है। परशुराम के आश्रम में समुचित शिक्षा प्राप्त करके तथा शक्ति-सन्देश के द्वारा स्वर्ग का कल्पान्तर करके देव-सेनानी कुमार कार्त्तिकेय ने इसी परम्परा को प्रतिष्ठित किया था। तारक के वध तथा देवताओं की विजय में इसी परम्परा का फल साकार हुआ है। यह फल शक्ति-साधना और युवकों के नेतृत्व के द्वारा सम्भव समाज की मांगलिक सम्भावनाओं का एक प्रतीकात्मक संकेत है।

बाल्यकाल में ही स्कन्दकुमार के व्यक्तित्व और जीवन मे ओज और शौर्य का विपुल आभास मिलता था।

अमल पर्वत सरित-सा था क्षिप्र जीवन-वेग,
पर्व था प्रति कार्य औ साफल्य केवल नेग;
उछलता था हरिण-सा उन्मुक्त प्राण प्रवाह,
उमडता उद्रेक-सा था हृदय का उत्साह।
बढ रहा कान्तार मे पर्वत सरित-सा ज्ञान,
शास्त्र विद्या मे, गगन मे गूँजता था गान,
शस्त्र-कौशल की सरित भी गिरि-शिलायें फोड,
कर रही थी शास्त्र-सरि से वेग-बल मे होड।
दीप्त होता था दृगों मे स्निग्ध ज्ञान प्रदीप,
भाल पर मुक्ता लुटाती शास्त्र की शुचि सीप,
उमडता था बाहुओ मे वीर्य बल का सार,
वक्ष से ही विदित होता वीर सिंह कुमार।
सिंह शावक-सा शिखर पर गमन करता वीर,
खेल मे कर सिंह-रव देता गगन को चीर;
दरी-मुख से कीर्ति होती प्रतिध्वनित अवदात
पुत्र से दूने हुए पूजित पिता औ मात।

परशुराम के साथ जब स्कन्द कुमार शिक्षा के लिए जा रहे थे, तब वे तेज के कारण ऐसे प्रतीत होते थे जैसे सूर्य के साथ मगल जा रहा होगा—

जा रहा भृगुराज के सग तेज से द्युतिमान,
भानु के सँग ज्योति-दीपित भव्य भौम समान,
अग्नि के संग जा रहा हो ज्यो समुज्ज्वल तेज,
उषा ने भेजा अरुण को प्रात-सग सहेज।

परशुराम के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करके जब कुमार-कार्त्तिकेय लौटकर आये तब सब देवता उनके दर्शन के लिए आये। उनके तेजस्वी रूप को देखकर देवताओं को विदित हुआ कि आदर्श युवक और विजय का सेनानी कैसा होना है—

सबने किया प्रणाम स्कन्द को लख कर आते,
सिंह वक्ष से, औ गति से गजराज लजाते,
वृषभ-स्कन्ध की गति-विधि से गर्वित अभिमानी,
हुए देवता हृष्ट देख अपना सेनानी।
फूट रहा था तेज दृगों से औ आनन से,
बाल सूर्य हो रहा विलज्जित रक्त वदन से,
भुज दण्डों में उमड रही थी बल की धारा,
मिला विश्व के अखिल ओज को विग्रह न्यारा।
सबको किया प्रणाम स्कन्द ने सिर नत करके,
सबने आशीर्वाद दिया सिर पर कर धरके,
सबने मानो मूर्त्त मनोरथ अपने पाये,
होकर मानो सत्य सभी के सपने आये।
देवों को अब विदित हुआ, रण का सेनानी,
होता कैसा शूरवीर, निर्भय औ ज्ञानी।

देवताओं का सेनापति बनकर जब स्कन्द कुमार ने इन्द्र के साथ स्वर्ग की ओर प्रयाण किया, तो उनका तेजस्वी रूप अवलोकनीय था—

बांधे सिर पर मुकुट देह पर कवच चढाये,
अंग अंग में अस्त्र शस्त्र द्युतिवन्त सजाये,

प्रलय काल के सूर्य तुल्य था दीपित होता,
था किरणों-सा तेज प्रसार असीमित होता;

तारक के साथ युद्ध के प्रसग में सेनानी स्कन्द ने स्वयं तारक के सामने दुष्टों के अत्याचार के विरुद्ध शिक्षित युवकों की सामर्थ्य का सकेत किया है–

होता है कैशोर शक्ति औ चेतनता से पूर्ण प्रबुद्ध,
शक्ति-सिद्ध योगी-कुमार ही कर सकते असुरों से युद्ध,

देवताओं की विजय के बाद जब इन्द्र ने स्कन्द कुमार को अभिनन्दन पूर्वक विदा किया, तो उन्होंने युवकों के आदर्श और नवीन सस्कृति के निर्माता के रूप में उन्हे आशीर्वाद दिया था–

बोले सुरेन्द्र "हे वीर ! तुम्हारी जय हो!
तुम नव सस्कृति के उज्ज्वल सूर्योदय हो,
आलोक विश्व का विक्रम बने तुम्हारे,
सेनानी हो कुमार त्रिभुवन के सारे ।

७—सेनानी काव्य की मौलिकता—

'सेनानी काव्य' कवि के *'पार्वती महाकाव्य'* का एक अश है । 'सेनानी काव्य' में पार्वती के परिणय के बाद कुमार दीक्षा से लेकर तारक-वध तक की कथा वर्णित है । सर्ग व्यवस्था में इस में पार्वती महाकाव्य के २७ सर्गों में से १५ से लेकर १६ तक के ५ सर्ग सम्मिलित हैं । शिव-पार्वती की कथा पर आश्रित हिन्दी में कोई उल्लेखनीय काव्य नहीं है । सस्कृत-साहित्य में भी केवल कालिदास का 'कुमार सम्भव' ही शिव-कथा पर आश्रित एक मात्र प्रसिद्ध और उल्लेखनीय काव्य है। 'कुमारसम्भव' के अतिरिक्त

शिव पुराण में शिव की कथा और स्कन्दपुराण में कुमार कार्त्तिकेय की कथा मिलती है। इस प्रकार काव्य के क्षेत्र में 'पार्वती महाकाव्य' कालिदास के 'कुमारसम्भव' के बाद संस्कृत और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में शिव-कथा पर आश्रित दूसरा तथा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पहला उल्लेखनीय काव्य है। 'पार्वती महाकाव्य' के इस मौलिक ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करने की उदारता भी हिन्दी के आचार्य और आलोचक नहीं दिखा सके। इसके विपरीत आठ वर्ष पूर्व 'पार्वती महाकाव्य' के प्रकाशन के आरम्भिक वर्षों में जब यह महाकाव्य कई साहित्यिक-पुरस्कारों से सम्मानित हुआ, तब हिन्दी के कुछ कृपालु आलोचकों ने 'पार्वती महाकाव्य' की अन्य सभी विशेषताओं की उपेक्षा करके उस पर मौलिकता के अभाव का दोषारोपण किया और इस प्रकार उसे पूर्णत: महत्वहीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया। रामचरितमानस, साकेत और कामायनी की अहर्निश मीमांसा करने वाले हिन्दी के आचार्य और आलोचक 'पार्वती महाकाव्य' के सम्बन्ध में पूर्णत: मौन रहे हैं। अतः नवम्बर १९५८ की सरस्वती में स्वयं कवि को 'पार्वती महाकाव्य' की मौलिकता सम्बन्धी स्थिति को स्पष्ट करना पड़ा। 'पार्वती महाकाव्य' के आरम्भिक सर्गों के कुछ प्रसंगों में कालिदास के 'कुमारसम्भव' की छाया अवश्य है, किन्तु इस अल्प छाया के अतिरिक्त इन सर्गों में भी शृंगार, साधना आदि के वर्णन एवं दृष्टिकोण में बहुत कुछ मौलिकता है। आरम्भिक सर्गों में 'अर्चना' और 'हिमालय वर्णन' अत्यन्त महत्वपूर्ण और मौलिक हैं। इन दो सर्गों के अतिरिक्त 'पार्वती महाकाव्य' के सर्ग १२ से लेकर सर्ग २७ तक

१६ सर्गों की कथा और उनका विषय पूर्णत. कवि-कल्पना से प्रसूत होने के कारण अत्यन्त मौलिक है। आरम्भिक सर्गों में 'कुमार-सम्भव' के कुछ छन्दो की छाया को 'पार्वती महाकाव्य' के महत्व और उसकी मौलिकता के खण्डन के लिए पर्याप्त समझने वाले अधीर आलोचक इन १८ सर्गों की महनीय मौलिकता को ध्यान न न दे सके।

अस्तु 'सेनानी काव्य' का जो अश 'पार्वती महाकाव्य' से लिया गया है, वह 'पार्वती महाकाव्य' के उक्त मौलिक भाग के अन्तर्गत है। 'पार्वती महाकाव्य' की मौलिकता सबसे अधिक प्रखर और पूर्णरूप मे 'सेनानी काव्य' मे ही प्रकट हुई है। पार्वती महा-काव्य' का सबसे अधिक मौलिक अश होने के साथ-साथ 'सेनानी काव्य' अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। प्रबन्ध की दृष्टि से 'सेनानी काव्य' का कथानक तारक-वध की घटना मात्र के अतिरिक्त पूर्णतः काल्पनिक, अतएव मौलिक है। परशुराम शिव के भक्त थे, इस कारण परशुराम के निकट कुमार कार्त्तिकेय की दीक्षा की कल्पना अधिक सगत बन गई है। किन्तु इस कल्पना का कोई पौराणिक ऐतिहासिक अथवा साहित्यिक आधार नही है। परशुराम के आश्रम में कुमार कार्त्तिकेय तथा अन्य कुमारों की दीक्षा से भी अधिक मौलिक 'स्वर्ग का रूपान्तर' है। अनन्त यौवन और अनन्त विलास के रूप में स्वर्ग का अप्सरालोक पृथ्वी का आदर्श और लोक का अभीप्सित रहा है। कवि की धारणा है कि विलासजन्य दुर्बलता के कारण ही देवता बार-बार असुरो से हारते रहे। पृथ्वी के देशो के सम्बन्ध में तो यह अभिमत सत्य ही है। परशुराम के आश्रम

में दीक्षा ग्रहण करके जब कुमार कार्त्तिकेय देवताओं के सेनापति बने, तब उन्होंने स्वर्ग में जाकर देवताओं को शक्ति और योग की समन्वित साधना का सदेश दिया। इसी सन्देश की शिक्षा उन्होने परशुराम के आश्रम में स्वयं पाई थी। सेनानी के इस सन्देश से स्वर्ग मे एक क्रान्तिकारी जागरण हुआ। कला और विलास का केन्द्र अब शक्ति और योग की साधना का पीठ बन गया। इसी साधना से सम्पन्न होकर देवताओं ने कुमार कार्तिकेय के सेनापतित्व में तारकासुर की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण किया और गौरवमयी विजय प्राप्त की।

देवताओं की यह विजय शक्ति-साधना के द्वारा सम्भव होने वाली सज्जनों की विजय का प्रतीक है। शक्ति और योग की समन्वित साधना का सन्देश स्वर्ग और पृथ्वी दोनों के लिए विजय का मौलिक मन्त्र है। इसी मन्त्र के द्वारा समाज से अनीति का उन्मूलन और समाज में शान्ति का स्थापन हो सकता है। एकांगी अध्यात्म और अहिंसा के अपूर्ण पालन के भ्रम में युग-युग से मोहित रहने वाले तथा इस मोह के कारण बार-बार पराजित होने वाले भारतवर्ष के लिए स्वर्ग के कल्पान्तर का यह सन्देश एक नवीन जागरण का मन्त्र है। स्वर्ग के कल्पान्तर के समान ही यह कल्पान्तर भारतवर्ष में भी अपेक्षित है। यही कल्पान्तर भारतवर्ष के लिए भी विजय का मार्ग बनेगा। शक्ति-साधना और विजय के अतिरिक्त स्वर्ग के इस कल्पान्तर में अन्य कई मौलिक और क्रांतिकारी तत्त्व हैं, जिनमें सबसे अधिक मौलिक और क्रान्तिकारी तत्व जयन्त का अभिषेक तथा इन्द्र और इन्द्राणी का वानप्रस्थ है। यह मौलिक

और शान्तिकारी होने के साथ-साथ समस्त पौराणिक परम्परा के विपरीत है। इन्द्र के सम्बन्ध में यही विदित है कि वे सभी उपायो से अपने इन्द्रासन पर आरूढ रहना चाहते थे। इन्द्रपद के अभिलाषियों की साधना को उन्होने अप्सरायें भेज कर भंग किया और इस प्रकार छल-बल से अपने इन्द्रपद पर बने रहे। पृथ्वी लोक के राजपदें और अधिकारो में भी राजाओं तथा अन्य अधिकारियो का प्राय. ऐसा ही मोह रहा है। वृद्धो के इस मोह से समाज मे अनेक विषमतायें उत्पन्न होती हैं। अधिकार और उत्तरदायित्व न मिलने से युवको का समर्थ जीवन निष्फल और पथ-भ्रष्ट होता है। इससे समाज के विकास और निर्माण के क्षेत्र मे भी हानि होती है, क्योकि इसी दिशा में यौवन की शक्ति का उपयोग होता है। इन्द्र का पुत्र जयन्त अधिकार से वंचित और पथ-भ्रष्ट युवक का ही उदाहरण है। रामकथा मे उसने सीता के साथ दुर्व्यवहार किया था। 'सेनानी काव्य' में इन्द्र के वानप्रस्थ और जयन्त के अभिषेक के द्वारा यही संकेत किया गया है कि वृद्धों के द्वारा अधिकार का त्याग तथा यौवन की सामर्थ्य एवं आकांक्षा का आदर ही समाज के उद्धार और उत्कर्ष का मार्ग है। 'सेनानी-काव्य' मे अंकित स्वर्ग के कल्पान्तर का यही सन्देश है। 'पार्वती महाकाव्य' मे तारकवध के बाद त्रिपुरो के उद्धार और एक नवीन मगलमयी सस्कृति के निर्माण के प्रसंग में युवको के इस समादर का सामाजिक फल अधिक स्पष्ट रूप मे प्रकट हुआ है। युवको का परस्पर स्नेह और सहयोग यौवन के इस साफल्य को अधिक सम्पन्न बनाता है। सेनानी के साथ उनके सहपाठियो के सहयोग तथा जयन्त के साथ

सेनानी के लक्ष्य का संकेत इसी ओर है। 'सेनानी काव्य' यौवन का काव्य है। परशुराम के आश्रम की शिक्षा, स्वर्ग के कल्पान्तर, इन्द्र के वानप्रस्थ, जयन्त के अभिषेक, जयन्त के विवाह आदि के प्रसंगों के द्वारा 'सेनानी काव्य' मे यौवन की मंगलमयी महिमा की प्रतिष्ठा की गई है। 'पार्वती महाकाव्य' मे तारक-वध के बाद त्रिपुरों के उद्धार और एक नवीन संस्कृति के निर्माण के प्रसग में यौवन की यह मंगलमयी महिमा अधिक सम्पन्न रूप मे सफल हुई है।

कथा और समाजिक दर्शन की दृष्टि से 'सेनानी काव्य' का उक्त वृत्त और अभिमत दोनो ही नितान्त मौलिक हैं। पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक परम्परा मे परशुराम के व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त शक्ति और योग की समन्वित साधना तथा उसके सामाजिक उपयोग का संकेत कही भी नही मिलता। परशुराम की व्यक्तिगत साधना मे प्राप्त शक्ति और योग के समन्वय को भी भारतीय परम्परा मे समुचित आदर नही दिया गया। रामकथा के प्रसग मे शिव और परशुराम के उपहास के प्रसग मिलते हैं। इससे अधिक मान शिव और परशुराम के चरित को हिन्दी साहित्य में नही दिया गया है। आज चीनी आक्रमण की भूमिका मे परशुराम की प्रतीक्षा होरही है, किन्तु इसके पूर्व कदाचित् ही परशुराम के चरित और उनकी नीति का स्मरण किया गया है। यौवन की महिमा भारतीय संस्कृति की परम्परा में अनेक रूपों में व्याप्त रही है। किन्तु इतिहास और साहित्य में यौवन का समुचित आदर नही किया गया है। स्वर्ग के कल्पान्तर, इन्द्र के वानप्रस्थ और जयन्त के अभिषेक की भूमिका में यौवन का समादर

'सेनानी काव्य' की अपूर्व मौलिकता है। युग-युग से एकांगी अध्यात्म और अहिंसा की मरीचिका में भ्रमित रहने वाले तथा वार्धक्य की भावनाओं एवं ऐतिहासिक पराजयों से पीडित भारतवर्ष के लिए *वर्तमान संकट में 'सेनानी काव्य' की ये मौलिकतायें साहित्यिक* दृष्टि से ही नहीं वरन् ऐतिहासिक एवं राजनैतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

८—सेनानी काव्य और कुमारसम्भव महाकाव्य—

'सेनानी काव्य' में देवताओं के सेनापति के रूप में कुमार कार्तिकेय के चरित और तारकासुर के वध का वर्णन है। इस प्रकार 'सेनानी काव्य' का कथानक मूलत. कालिदास के 'कुमार-सम्भव महाकाव्य' के समान है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' में भी पार्वती की तपस्या, पार्वती के विवाह, कुमार कार्तिकेय के जन्म और तारकवध का वर्णन है। किन्तु मूल कथावृत्त मे समानता होते हुए भी उक्त दोनों काव्यों के स्वरूप में बहुत अन्तर है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' का काव्य-सौंदर्य अतुलनीय है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'सेनानी काव्य' की तुलना 'कुमारसम्भव' के साथ करना हमें अभीष्ट नहीं है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से हम केवल 'सेनानी काव्य' में समाहित भाव-गत ओज की ओर संकेत करना चाहते हैं। इस ओज की गरिमा का मूल्यांकन आलोचकों का अधिकार है। हमारा उद्देश्य केवल 'सेनानी काव्य' और 'कुमार सम्भव महाकाव्य' की कुछ बाहरी भिन्नताओं का संकेत करना है। इन भिन्नताओं का सम्बन्ध कुमार कार्तिकेय के जन्म और तारकासुर के वध के कथा प्रबन्ध से है। 'कुमारसम्भव महा-

काव्य' में कुमार कार्त्तिकेय को पार्वती का औरस पुत्र नही माना गया है। पौराणिक परम्परा के आधार पर 'कुमार सम्भव' में भी कुमार कार्त्तिकेय का जन्म कुछ अलौकिक रूप से हुआ है। अग्नि से जन्म होने के कारण वह अग्नि भू कहलाते हैं तथा शर (सरपत) से जन्म होने के कारण उनको शरजन्मा की सज्ञा मिली है। 'कुमार सम्भव' में भी अग्नि तथा शर से ही उनका अलौकिक जन्म माना गया है। कुमार कार्त्तिकेय षडानन कहलाते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा के समान उनके छः मुख बनाये जाते हैं। छः कृत्तिकाओं के द्वारा उनका पालन हुआ। षडानन का यह पौराणिक रूप भी कुछ अलौकिक ही है। पौराणिक परम्परा में कुमार कार्त्तिकेय के जन्म और रूप के समान ही उनके द्वारा तारक के वध का चित्रण भी कुछ अलौकिक रूप से ही किया गया है। छः दिन के शिशु के रूप में कुमार कार्त्तिकेय ने देवताओं के सेनानी बन कर एक अलौकिक चमत्कार के साथ तारकासुर का वध किया। पौराणिक परम्परा के इसी अलौकिक वृत्त के अनुरूप 'कुमार सम्भव' महाकाव्य मे कुमार कार्त्तिकेय के जन्म के समान ही तारकासुर के वध का वर्णन भी अलौकिक रूप में किया गया है। कालिदास के पौराणिक युग मे यह अलौकिकता लौकिक आस्था का विषय थी। अत. कालिदास ने उसे अगीकार कर अपने युग के अनुरूप काव्य की रचना की। किन्तु आज के वैज्ञानिक और यथार्थवादी युग में यह अलौकिकता लोकमान्य नही हो सकती। आधुनिक युग में इन अलौकिक प्रतीको की लौकिक व्याख्या तथा इन अलौकिक कथाओं का लौकिक रूपान्तर अपेक्षित है।

इसी धारणा के अनुसार 'सेनानी काव्य' में एक स्वच्छन्द और मौलिक कल्पना के आधार पर कुमार कार्तिकेय के जन्म और तारकासुर के वध की कथा एक नवीन एवं सुयोचित रूप मे प्रस्तुत की गई है। 'सेनानी काव्य' में 'कुमार सम्भव' में वर्णित कुमार कार्तिकेय के अलौकिक जन्म के विपरीत उनके जन्म का वृत लौकिक रूप से चित्रित किया गया है। 'सेनानी काव्य' में कुमार कार्तिकेय को पार्वती का औरस पुत्र माना गया है। कार्तिकेय के जन्म के प्रसग में अग्नि और शर का प्रसग इस काव्य में नहीं है। 'पार्वती महाकाव्य' के सर्ग १३ और १४ में क्रमशः पार्वती के गर्भ और कुमार कार्तिकेय के लौकिक जन्म का वर्णन किया गया है। कुमार कार्तिकेय के जन्म के समान ही तारकासुर के वध का वर्णन भी लौकिक रूप से ही किया गया है। 'सेनानी काव्य' में वर्णित तारक-वध में कोई अलौकिकता और चमत्कार नहीं है। 'सेनानी काव्य' के कुमार कार्तिकेय ने परशुराम के आश्रम में अन्य ब्रह्मचारियो के साथ शस्त्र और शास्त्र की समुचित शिक्षा प्राप्त करके तरुण वय में देवताओ के सेनापति का पद ग्रहण किया। उन्होंने अपने सहपाठियो के सहयोग से स्वर्ग में शक्ति-साधना का आयोजन किया। शक्ति-साधना से उत्साहित होकर देवताओ ने कुमार कार्तिकेय के सेनापतित्व में तारकासुर की राजधानी शोणितपुर पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। तरुण कुमार का सेनापतित्व उनके शिक्षित सहपाठियो तथा शक्ति-साधना से जागरित देवताओं के सहयोग से सफल हुआ। देवताओ की यह विजय कोई अलौकिक चमत्कार न थी। वह विजय परशुराम के द्वारा शिक्षित कुमार कार्तिकेय के समर्थ सेनापतित्व तथा उनके

द्वारा आयोजित स्वर्ग के कल्पान्तर का साक्षात् फल थी। कुमार कार्तिकेय के जन्म और तारक वध की कथा का 'सेनानी काव्य' में वर्णित यह लौकिक रूप आधुनिक युग की मान्यता के अधिक अनुरूप है। किन्तु इसके साथ-साथ 'सेनानी काव्य' की इस लोकानुकूल कथा का एक प्रयोजन भी है। यह प्रयोजन सामाजिक अनीति और अतिचार का उन्मूलन है। 'सेनानी काव्य' में अनीति के उग्र-रूप के उन्मूलन का एक अनिवार्य मार्ग प्रस्तुत किया गया है। यह मार्ग सात्त्विक युवको की सगठित शक्ति-साधना है। 'सेनानी काव्य' का तारक-वध इसी साधना का परिणाम है। समाज की प्रच्छन्न अनीति के उन्मूलन का मार्ग 'पार्वती महाकाव्य' के त्रिपुर सम्बन्धी सर्गों में अंकित किया गया है।

९—सेनानी काव्य और तारक वध महाकाव्य—

दारागंज प्रयाग के निवासी प० गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश' ने एक 'तारक वध' नाम का विशाल महाकाव्य लिखा है। गिरीश जी एक प्रतिष्ठित साहित्यकार और कवि थे। उन्होंने पं० अयोध्यासिंह 'हरिऔध' और श्री मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-साधना के विषय में दो महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे हैं। 'तारक-वध' गिरीश जी की काव्य-साधना का सर्वोच्च फल है। रचनाकाल और महत्व दोनों ही दृष्टियों से 'तारक वध' महाकाव्य कविवर गिरीश जी की जीवन-साधना का सर्वस्व है। 'तारकवध' के प्रकाशन के थोड़े दिन बाद ही कवि गिरीश जी के स्वर्गवास से सहसा ऐसा अनुमान होता है कि मानों 'तारकवध' का प्रणयन और उसका प्रकाशन उनके जीवन की प्राण प्रेरणा बने रहे। वय की दृष्टि से

से गिरीशजी का स्वर्गवास असामयिक ही था, फिर भी उनके अचानक और सहज स्वर्गवास से ऐसा लगता है, मानों वे 'तारकवध' को पूर्ण और प्रकाशित करके कृतकृत्य और मृत्युंजय हो गये। साहित्यिक और दार्शनिक महत्व की दृष्टि से 'तारकवध' ऐसा ही गौरवपूर्ण महाकाव्य है। 'तारकवध' की भूमिका से विदित होता है कि अपने यौवन-काल में २० वर्ष तक गिरीश जी इस महाकाव्य की रचना करते रहे। जयशंकरप्रसाद की 'कामायनी' की भाँति 'तारकवध' का प्रकाशन भी कवि के जीवन के अन्तिम वर्षों में (सन् १९५८ में) हुआ।

गिरीश जी के 'तारकवध' महाकाव्य का कथानक भी 'कुमारसम्भव' महाकाव्य के समान कुमारकार्त्तिकेय के द्वारा तारकासुर के वध के प्रसंग पर ही आश्रित है। इस प्रकार मूल रूप में 'कुमारसम्भव', 'तारकवध' और 'सेनानी काव्य' का कथानक समान है। किन्तु कवियों के विश्वास और उनके उद्देश्यों की भिन्नता के कारण इन तीनों काव्यों के कथानक में बहुत अन्तर है। 'कुमारसम्भव' और 'सेनानी' काव्य के कथानक की भिन्नताओं का संकेत हम ऊपर कर चुके हैं। 'तारकवध' और 'सेनानी' काव्य के कथानक का आधार समान होने के कारण इन दोनों काव्यों की तुलना भी अपेक्षित है। 'तारकवध' महाकाव्य की रचना भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के उत्कर्ष काल में हुई है। कवि गिरीश जी की विचारधारा महात्मा गाँधी के अहिंसा सिद्धान्त के प्रभाव में पली है। गाँधीवाद का कवि गिरीश पर इतना प्रबल प्रभाव है कि तारकासुर के वध के युद्धपूर्ण पौराणिक वृत्त को भी उन्होंने गाँधीवाद के साँचे

में ढाल दिया है । उनके 'तारकवध' महाकाव्य में तारकासुर का वध युद्ध में अस्त्रों के द्वारा नहीं हुआ है और न इस महाकाव्य में 'वध' का अर्थ शारीरिक निधन है । महात्मा गाँधी के अहिंसावाद की भूमिका में गिरीश जी ने 'तारकवध' का अर्थ अनीति का मानसिक उन्मूलन माना है । इसकी विधि गाँधीवाद की परिचित हृदय-परिवर्तन की प्रणाली है । 'तारकवध' के कुमारकार्तिकेय युद्ध के सेनानी नहीं हैं, वरन् वे महात्मा गाँधी के अनुरूप अहिंसा और प्रेम के नेता हैं। उन्होंने युद्ध में अस्त्रों के द्वारा तारकासुर का वध नहीं किया है, वरन् अहिंसा और प्रेम के अस्त्र से उसका हृदय-परिवर्तन किया है । तारकासुर अनीति का प्रतीक है, प्रेम के द्वारा उसका हृदय-परिवर्तन ही उसका वध है । इस प्रकार कविवर गिरीश जी का 'तारकवध' महाकाव्य पौराणिक परम्परा के प्रसिद्ध कथानक की एक नैतिक व्याख्या है । वह पौराणिक वीर-काव्य का गाँधीवादी संस्करण है ।

गिरीश जी के 'तारकवध' महाकाव्य की तुलना में 'सेनानी' काव्य का कथानक और प्रयोजन पूर्णतः विपरीत है । 'तारकवध' और 'सेनानी' काव्य के स्वरूप में अहिंसा और युद्ध का वर्णन है । इस दृष्टि से 'कुमारसम्भव' और 'सेनानी' काव्य में अधिक समानता है । कुमारकार्त्तिकेय के जन्म और तारक के वध में कुछ अलौकिकता होते हुए भी 'कुमारसम्भव' के कार्त्तिकेय देवताओं के सेनापति हैं और उन्होंने युद्ध में ही तारक का वध किया है। 'सेनानी' काव्य में कार्त्तिकेय के जन्म और तारक के वध के अलौकिक पक्षों का परिहार करके कथानक को अधिक लौकिक और युगसंगत बनाने का प्रयत्न

किया गया है । परशुराम के आश्रम मे कुमारकार्तिकेय की दीक्षा और शक्ति-साधना के द्वारा स्वर्ग के कल्पान्तर से 'सेनानी' काव्य का तारकवध सगठित शक्ति के द्वारा अनीति के उन्मूलन का रूपक बन गया है । इस प्रकार 'सेनानी' काव्य का कथानक और दर्शन 'तारकवध' महाकाव्य के पूर्णत: विपरीत है । दोनो काव्यो का यह अन्तर इतना प्रखर है कि दोनो काव्यों मे इस अन्तर का समर्थन कथानक के अतिरिक्त अनेक सिद्धान्त वाक्यो मे मिलेगा । जहाँ 'तारकवध' महाकाव्य महात्मा गाँधी के अहिंसा दर्शन पर आश्रित है, वहाँ 'सेनानी' काव्य परशुराम के शक्ति-दर्शन से प्रेरित है। 'तारकवध' के कार्त्तिकेय अहिंसा के नेता हैं, 'सेनानी' काव्य के कार्त्तिकेय युद्ध के तरुण सेनानी हैं। 'सेनानी' काव्य के पहले सर्ग मे ही परशुराम के वचनो मे एकागी अहिंसा और हृदय-परिवर्तन का खण्डन मिलेगा । आगे के सर्गों मे देवसेनानी और कुमारकार्तिकेय के वचनो और कृत्यों मे देवत्व की मर्यादा के अन्तर्गत शक्ति और युद्ध के द्वारा प्रकट एव उग्र अनीति के उन्मूलन का समर्थन मिलेगा। 'सेनानी' काव्य का यह शक्ति-दर्शन पौराणिक कथानक की रूप-रेखा के अनुरूप है, यद्यपि इतना अवश्य है कि 'सेनानी' काव्य के कवि कल्पित प्रसग इस रूपरेखा मे नये रग भर देते हैं । अहिंसा-दर्शन का भी अपना महत्व है। बुद्ध और गाँधी उसे निरपेक्ष रूप मे मानते थे । 'सेनानी' काव्य मे अहिंसा-दर्शन की कुछ सीमाओं का सकेत और कुछ भ्रान्तियों का अनावरण किया गया है। 'तारकवध' के कवि के द्वारा साक्षात् युद्ध के प्रसिद्ध कथानक के ऊपर अहिंसा-वाद का आरोपण कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। 'तारकवध'

महाकाव्य की रचना 'सेनानी' काव्य (तथा पार्वती महाकाव्य) से बहुत पहले हो चुकी थी, किन्तु उसका प्रकाशन 'पार्वती महाकाव्य' के प्रकाशन के दो-तीन वर्ष बाद हुआ। इस प्रकार 'तारकवध' महाकाव्य के कथानक और दर्शन को बिना जाने 'सेनानी' काव्य के कवि ने 'तारकवध' महाकाव्य के विपरीत दर्शन को अपनाया है।

१०—सेनानी काव्य और परशुराम की प्रतीक्षा—

सेनानी काव्य के नायक देवसेनानी कुमार कार्तिकेय हैं। उन्होंने ही परशुराम के आश्रम में दीक्षा ग्रहण करके तथा देवताओं को शक्ति-साधना का सक्रिय संदेश देकर तारकासुर के वध और देवताओं की विजय की सफल योजना की थी। किन्तु सेनानी और देवताओं की इस सफलता के पीछे परशुराम का शक्ति-मन्त्र था जिसे परशुराम ने अपने जीवन में सिद्ध और चरितार्थ किया था तथा जिसकी दीक्षा उन्होने कुमारकार्तिकेय को और अपने आश्रम मे शिक्षा पाने वाले अन्य बटुकों को दी थी। उनके शक्ति-मंत्र ने ही कुमार कार्तिकेय को युवकों का ओजस्वी आदर्श बनाया और बार-बार पराजित देवताओं को स्थायी विजय का वरदान दिया। इस दृष्टि से 'सेनानी काव्य' परशुराम के शक्ति-सन्देश का ही काव्य है। आरम्भ के तीन सर्गों में परशुराम का यह शक्ति-सन्देश ही अपने ओजस्वी स्वर में गूंज रहा है। अन्तिम दो सर्गों का तारक-वध और विजयपर्व इसी शक्ति-सन्देश के फल हैं।

अस्तु, शक्ति-सन्देश के मूल स्रोत तथा सेनानी के गुरु होने

के नाते परशुराम प्रथम वंदनीय हैं। राम और कृष्ण के माधुर्य से मुग्ध भारतीय समाज भगवान् परशुराम के इस सन्देश को भुलाता रहा है। किन्तु आज चीनी आक्रमण की विभीषिका ने हमें इस सन्देश को स्मरण करने के लिये विवश कर दिया है। बुद्ध के उदार धर्म को एशिया के जिस विशाल देश ने अपनाया था, आज वही देश अहिंसा के उपदेश का बदला भयंकर आक्रमण से दे रहा है। बुद्ध की अहिंसा के उपासक उदासीन भारतवासी विस्मित होकर युद्ध के लिये विवश हो रहे हैं। अहिंसा की प्रवंचना से प्रताड़ित भारतीय जनता आज बुद्ध को भुलाकर परशुराम का स्मरण कर रही है। चीन के आक्रमण से आज अचानक सारे देश में उत्तेजना और आक्रोश का वातावरण छा गया है। इस आक्रोश और उत्तेजना की अभिव्यक्ति काव्य में भी हुई है। कल्पनाजीवी कवियों ने भी चीन के विरोध में अपना स्वर ऊँचा किया है। पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रसंग में रची हुई अनेक कविताएँ छपी हैं। उनमें अधिकांश कविताओं में चीन को चुनौती और ललकार दी गई है तथा विश्वासघात के लिये चीन की भर्त्सना की गई है। देशवासियों को सजग और संगठित होने की प्रेरणा कदाचित् ही किसी कविता में मिलेगी। इस प्रेरणा से देश के नेता और देश की जनता चिरकाल से अपरि-है। देश की पम्परा के विपरीत सन्देश देने के लिये एक क्रांतिकारी प्रतिभा अपेक्षित है।

इस प्रतिभा का परिचय आधुनिक हिन्दी के सूर्य कवि दिनकर के 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक काव्य में मिलता है। चीनी आक्रमण के प्रसंग में लिखी गई अधिकांश कविताओं से भिन्न

दिनकर के इस काव्य में देश के जागरण की प्रेरणा और सशक्त संगठन का सन्देश गुंजरित हुए हैं। आधुनिक हिन्दी के उदयाचल पर उदित होकर अपने कवि-जीवन के आरम्भ काल से ही कवि दिनकर ने काव्य के क्षेत्र में ओज का प्रसार किया है। ओज-प्रधान हिन्दी काव्य का वह अपराह्न सूर्य आज अपने प्रखर तेज से दीप्तिमान है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में उसी तेज की दीप्ति दमक उठी है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में दिनकर का परिचित ओजस्वी स्वर युद्ध के अभियान का तूर्यनाद बन गया है। हिन्दी के प्रमुख आचार्य डा० नगेन्द्र के शब्दों में "भारतीय काव्य में अकारण आक्रमण से उत्पन्न आक्रोश की कदाचित् यह प्रबलतम अभिव्यक्ति है। इसके प्रतिपाद्य से किसी का मतभेद हो सकता है—सम्भवतः शान्ति के क्षणों में स्वयं कवि को ही उसमें संशोधन करना पड़े, किन्तु इस बात से इन्कार करना कठिन होगा कि 'दिनकर' की यह रचना वर्तमान युद्ध-काव्य के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण के रूप में, अथवा यों कहें कि वर्तमान आक्रोश के काव्यात्मक आलेख के रूप में अमर रहेगी।"

'सेनानी काव्य' चीन के प्रकट आक्रमण के समय तथा उसके प्रसंग में नहीं रचा गया है। उसकी रचना आज से दस वर्ष पूर्व भारत की युग-युगीन पराजयों के प्रभाव से विमुक्ति का सन्देश देने के लिये हुई थी और उसका प्रकाशन 'पार्वती महाकाव्य' के अंश के रूप में आज से आठ वर्ष पूर्व हुआ था। इस मुक्ति-संदेश के प्रेरणा-स्रोत परशुराम ही हैं। इस दृष्टि से 'सेनानी काव्य' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' का विषय बहुत कुछ समान है। कुछ सिद्धान्तों और प्रसंगों में यह समानता अधिक स्पष्ट दिखाई देती है। कवि दिनकर

ने देशवासियों का जागरण के लिये आह्वान किया है—

> औ बदनसीब अन्धो ! कमजोर अभागो ।
> अब भी तो खोलो नयन, नींद से जागो ॥

और इस रूप मे परशुराम का अभिनन्दन किया है—

> है एक हाथ में परशु, एक में कुश है,
> आ रहा नये भारत का भाग्य-पुरुष है ।

सेनानी काव्य में परशुराम के आश्रम और उनके व्यक्तित्व का चित्रण विस्तार के साथ किया गया है । इसका कुछ आभास इस प्रकार है —

> टँगे थे परशु औ पालाश उसमें साथ दोनों,
> हृदय से एक, उनको ग्रहण करते हाथ दोनो;
> हुआ था भूमि पर अवतरित अद्भुत वीर योगी,
> समुद्धृत सृष्टि जिसकी नीति से निर्भ्रान्त होगी ।
> उटज के पास ही थी एक उज्ज्वल अस्त्र शाला,
> बनी थी विश्व के हित वह विपुल विस्मय निराला,
> अनोखा ज्ञान, तप औ योग का गम्भीरता से,
> कभी सयोग या प्रतियोग सम्भव वीरता से ।
> असम्भव ही जिसे ससार अब तक मानता था,
> महत्ता भी अत. जिसकी न वह पहचानता था,
> उसी को एक जीवन मे सफल जिसने बनाया,
> जगत को श्रेय का निर्भ्रान्त पथ जिसने दिखाया ।
> समुन्मूलन तथा कर क्षत्रियों के दृप्त दल का,
> मिटा आतक असुरो के तथा उद्दाम बल का;

प्रमाणित कर जगत के जागरण की ब्रह्मवेला,
हुआ जो वीर ब्राह्मण विश्व में अद्भुत अकेला।

'सेनानी काव्य' के परशुराम का आह्वान इस प्रकार है —

हृदय में वेद, कर में परशु भीषण धर रहा हूँ,
युगों से विश्व में यह घोषणा मैं कर रहा हूँ।
अरे! ओ! ज्ञान के साधक दलित विप्रो! अभागो!
अरे! तुम शक्ति की भी साधना के अर्थ जागो॥

धर्म के छल और जीवन के मर्म का संकेत 'परशुराम की प्रतीक्षा' में इस प्रकार किया गया है:–

वास्तविक मर्म जीवन का जान गये हैं,
हम भलीभाँति अघ को पहिचान गये हैं।
हम समझ गये हैं खूब धर्म के छल को,
वम की महिमा को और विनय के वल को॥

धर्म और जीवन के मर्म का संकेत 'सेनानी काव्य' मे इस प्रकार मिलता है:–

धरा में धर्म, नय औ शान्ति के पूजित पुजारी,
बनाते मानवों को ही रहे नित धर्मचारी।
सुनाते शान्ति का उपदेश केवल सज्जनों को,
बनाते और भी दुर्बल मृदुल उनके मनो को॥
स्वयं ऐश्वर्य के उपभोग से कृतकृत्य होते,
जगत के पूज्य, पर प्रच्छन्न खल के भृत्य होते।
छली आचार्य बन जग को यही ज्ञानी भुलाते,
यही कटु सत्य को सुकुमार सपनों मे सुलाते॥

× × × × ×

जाना सबने धर्म आज नूतन जीवन का,
जाना सबने मर्म आज रति औ नर्तन का।
जाना बल का मूल, शक्ति का साधन जाना,
आज विजय का सिद्ध मार्ग सबने पहिचाना ।।
मदन भस्म के मर्म आज थे सम्मुख जागे,
शंकर का आदेश मूर्त दर्पण - सा आगे,
था कुमार अभिरूप वीर्य–बल–विक्रमशाली,
जीवन की नय हुई सुरों को विदित निराली ।।

'परशुराम की प्रतीक्षा' में तप और शक्ति के समन्वय का सन्देश दिया गया है –

केवल कृपाण को नही, त्याग - तप को भी।
टेरो, टेरो साधना, यज्ञ - जप को भी ।।

यही सदेश परशुराम का जीवन-मंत्र है। परशुराम ने इसी समन्वय को अपने जीवन मे चरितार्थ किया था, इसका संकेत 'सेनानी काव्य' के छन्दो मे ऊपर किया गया है। 'सेनानी काव्य' के अनुसार परशुराम के आश्रम में शिक्षा पाने वाले ब्रह्मचारी इसी समन्वय को आत्मसात् करते थे .–

इसी विधि शस्त्र का औ शास्त्र का अभ्यास करते।
रहे बटु वीर गुरु का सफल अन्तेवास करते ।।

इसी समन्वय को देव-सेनानी कुमार कार्त्तिकेय ने अपनी प्रेरणा से स्वर्ग के कल्पान्तर में साकार बनाया था:–

कल्पान्तर हो गया स्वर्ग का सफल हुआ शिव का वरदान।
उत्कंठित हो उठे युद्ध के लिये विजित देवो के प्राण ।।

भूल गई सम्भ्रान्त स्वप्न-सा अमरावती अनन्त विलास।
देव कर्म बन गया योग औ अस्त्रों का सन्तत अभ्यास ॥

कन्दराओं में तप को जीवन का परम लक्ष्य मानने वाले भारतीय अध्यात्मवादियों को लक्ष्य कर कवि दिनकर ने कहा है:—

यह नही शान्ति की गुफा, युद्ध है, रण है,
तप नही, आज केवल तलवार शरण है।

सेनानी काव्य' के परशुराम ने भी यही विचार व्यक्त किया है—

न होता विश्व का निर्णय विपिन या कन्दरा में।
सदा जीवन बिगड़ता और बनता रणधरा में ॥

कवि दिनकर ने अनीति पर स्त्रियो के सौभाग्य के बलिदान का सकेत भी 'परशुराम की प्रतीक्षा' में किया है:—

बलिवेदी पर बालियाँ—नथें चढती हैं,

'तारकवध' के बाद शोणितपुर की सभा में सेनानी के सदेश में 'सेनानी काव्य' मे भी इसका सकेत है.—

कितनी कुमारियों, वन्धुओं के रोदन की,
कितने शिशुओं के करुणामय क्रन्दन की,
प्रतिध्वनि मे गु जित है उसकी जय-गाथा,
सुन जिसे आज भी विनत हमारा माथा।

अस्तु, परशुराम के समान आदर्श पर आश्रित होने के कारण 'सेनानी काव्य' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में अनेक प्रकार से समानता है। 'सेनानी काव्य' के उपेक्षित कवि का यह सौभाग्य है कि आधुनिक हिन्दी काव्य के सूर्य ने उसके कुछ भावों का समर्थन किया है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में देशवासियों के लिये एक जागरण

का संदेश है तथा संगठन और बलिदान की प्रेरणा है । चीन की चुनौती और ललकार देने वाली भावुक कविताओं की तुलना में 'परशुराम की प्रतीक्षा' की यह विशेषता अभिनन्दनीय है। सामयिक आक्रोश में रचित होने के कारण 'परशुराम की प्रतीक्षा' में देश के शक्तिशाली संगठन की कोई योजना नहीं दी जा सकी है। दस वर्ष पूर्व भारत के पतन और उत्थान के स्थायी प्रश्न के आधार पर रचित होने के कारण 'सेनानी काव्य' में 'स्वर्ग के कल्पान्तर' के निमित्त से 'देश के कल्पान्तर' की एक व्यावहारिक योजना प्रस्तुत की गई है। परशुराम का आदर्श ही सुरक्षा और अभय का शाश्वत मार्ग है। यही आदर्श भारत के लिये अनुकरणीय है । किन्तु वृद्ध परशुराम की अपेक्षा तरुण सेनानी का आदर्श अधिक प्रेरणाप्रद हो सकता है। सेनानी युवकों के आदर्श हैं । युद्ध और संकट के काल में युवकों का उत्साह ही देश का रक्षक है । शान्ति-काल में वही उत्साह निर्माण और अभय का सम्बल बनता है। इसके अतिरिक्त केवल वृद्ध नेतृत्व के बल पर किसी देश का भाग्य सदा नहीं पल सकता। सेनानी के समान वीर और ओजस्वी युवकों के निर्माण की अखण्ड परम्परा ही स्थायी रूप से देश के गौरव की रक्षा और देश के भाग्य का निर्माण कर सकती है। परशुराम के आश्रम में कुमार कार्त्तिकेय तथा अन्य ब्रह्मचारियों की शिक्षा तथा सेनानी की प्रेरणा के द्वारा 'स्वर्ग के कल्पान्तर' के रूप में 'सेनानी काव्य' में इसी सृजनात्मक परम्परा के सत्य का निर्देश किया गया है । इस सत्य को अपनाकर ही युगों से पद-दलित और आज के संकटापन्न भारत का भविष्य उज्ज्वल बन सकता है । अन्त में यह स्पष्ट कर देना

आवश्यक है कि परशुराम का ब्राह्मणत्व एक ऐतिहासिक संयोग मात्र है। दोनो ही काव्यों में उन्हे 'असुर भाव का शत्रु' मान कर प्रस्तुत किया गया है ।

११—आशा और आभार—

'सेनानी काव्य' की रचना आज से दश वर्ष पूर्व हुई थी और आज से आठ वर्ष पूर्व 'पार्वती महाकाव्य' के अग के रूप में उसका प्रकाशन हुआ था। 'पार्वती महाकाव्य' शिव-कथा पर आश्रित हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है । 'कुमार-सम्भव' के बाद दो हजार वर्ष के अन्तराल में शिव की अर्थवती और मगलमयी कथा पर आश्रित कोई भी उल्लेखनीय काव्य नही है । राम और कृष्ण के मधुर चरितों से मुग्ध कवियों ने शिव के उदात्त और तेजस्वी चरित्र को ध्यान नही दिया । वैष्णव कवियो ने शिव को केवल उपहास के योग्य समझा है और अपने इष्ट देवताओ की महिमा बढ़ाने के लिये हास्यास्पद रूप में शिव का चित्रण किया है । शिव के रूप और चरित्र की महिमा को हिन्दी के कवि नही पहचान सके । वीरता और शृंगार के दुर्बल आराधकों को शिव का तपोमय और तेजस्वी रूप आकर्षित न कर सका । भक्ति के आवरण मे शृगार और नायिका-भेद का निरूपण करने वाले मध्यकालीन कवि शिव-पार्वती के तपोमय प्रेम और पवित्र दाम्पत्य को उचित आदर न दे सके। स्वयं दाम्पत्य-जीवन में ही जीवन को पूर्ण मानने वाले तथा दाम्पत्य के चित्रण को ही काव्य का सर्वस्व मानने वाले कवि देव-सेनानी कुमार-कार्त्तिकेय के समान कुमारों के सम्भव (जन्म) मे समाज और संस्कृति की सृजनात्मक परम्परा का अमृत-मार्ग भी न देख सके ।

इस दुर्भाग्यपूर्ण दृष्टिकोण का परिणाम देश का ऐतिहासिक पतन हुआ। साहित्य में इस दृष्टिकोण के कारण ही शिव, पार्वती और कार्तिकेय के चरित्र की पूर्ण उपेक्षा हुई।

दस वर्ष पूर्व रचित और आठ वर्ष पूर्व प्रकाशित 'पार्वती महाकाव्य'जैसी उदात्त और ओजस्वी रचना की पूर्णत: मौन उपेक्षा शिव-चरित्र की उपेक्षा की उक्त परम्परा का ही क्रम है। हिन्दी काव्य की जो प्रतिभा तथा आलोचना की जो मनीषा सदा से शिव-चरित्र के महत्व की उपेक्षा करती आई है, वह अपने उसी उपेक्षामय दृष्टिकोण के कारण आज भी शिव-चरित्र पर आश्रित एक उदात्त और गम्भीर काव्य को उचित आदर देने के लिये उद्यत नहीं है। हिन्दी के आचार्यों और आलोचकों का अपने साहित्यिक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति अद्भुत दृष्टिकोण भी पार्वती महाकाव्य की इस उपेक्षा का कारण है। व्यक्तिगत कृतित्व के कारण मुझे इस उपेक्षा का क्षोभ नहीं है। 'पार्वती महाकाव्य' के प्रति व्यक्तिगत कृतित्व की भावना मेरे मन में आरम्भ से ही नहीं है। मैं तो उसे भगवती पार्वती के अनुग्रह का फल मानता हूँ। व्यक्तिगत कृतित्व का दम्भ रहने पर ऐसी रचनाएं सम्भव नहीं हैं, यह मेरा साहित्यिक अनुभव और अभिमत है। शिव के चरित्र की महिमा तथा उसके अनुरूप सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा ही 'पार्वती महाकाव्य' में साकार हुई है। इन्हीं के निमित्त से 'पार्वती महाकाव्य' की उपेक्षा मेरे लिये कुछ क्षोभ का कारण अवश्य बनी है। 'पार्वती महाकाव्य' में जिस सृजनात्मक और ओजस्वी राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्ति मिली है, यदि वह भावना हमारे साहित्य और समाज की

परम्परा में अन्य रूपों में साकार हुई होती, तो 'पार्वती महाकाव्य' की उपेक्षा मेरे लिये किंचित् भी क्षोभ का कारण नहीं होती। साहित्यकार के नाते मैं रचना मात्र को कृतित्व का सर्वस्व और उदासीन प्रकाशन को साहित्यिक आचार का अन्त मानता हूँ। मनुष्य के नाते मैं 'पार्वती महाकाव्य' की उपेक्षा से नहीं, वरन् राष्ट्रीय-जीवन में सृजनात्मक और ओजस्वी परम्परा की उपेक्षा से व्यथित हूँ।

'पार्वती महाकाव्य' मेरी यशःकामना का उद्योग नहीं वरन् मेरी इस व्यथा की ही वाणी है। शिव-पार्वती के पवित्र और तपोमय जीवन की भूमिका में परशुराम और कुमार कार्तिकेय के निमित्त से राष्ट्रीय-जीवन की सृजनात्मक और ओजस्वी परम्परा की परिकल्पना को ही मैंने काव्य का रूप दिया है। मेरे मत में यही परम्परा हमारी ऐतिहासिक पराजयों के प्रतिशोधन और हमारे भावी उत्कर्ष की दिशा है। एकांगी अध्यात्म और अहिंसा के आग्रह अब तक हमारे राष्ट्रीय-जीवन को भ्रान्त और निष्फल बनाते रहे हैं। अध्यात्म और अहिंसा मनुष्य-जीवन के चरम सत्य हैं, किन्तु एकांगी बनकर वे असत्य बन जाते हैं। अध्यात्म की उपेक्षा करने वाले आततायी अपने आक्रमण से इस एकांगी अध्यात्म और अहिंसा को निष्फल और हास्यास्पद बनाते रहे हैं। हाल का चीनी आक्रमण हमारी इस भ्रान्त नीति को अन्तिम और उग्रतम चुनौती है। इस चुनौती का सामना इस भ्रान्त नीति से न हो सकेगा, यह स्पष्ट है। शक्ति की साधना ही अन्याय के प्रतिकार और देश-रक्षा का एकमात्र मार्ग है। चीनी आक्रमण के प्रसंग में हजारों कविताएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। उनमें अधिकांश कविताओं में चीन को चुनौती और ललकार दी गई है। युग-युग की भ्रान्त परम्परा में पल हुए कवि

और पत्रकार यह सोचने में असमर्थ रहे कि ये कविताऐं चीन में नही पढी जायेंगी । देश के जागरण और संगठन का संदेश बहुत कम कविताओं मे मिल सकेगा । कवि दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' इन अपवादों में सर्वश्रेष्ठ है । उसमे देश के जागरण की सशक्त प्रेरणा हिन्दी के ओजस्वी कवि की वाणी से मुखरित हुई है। किन्तु सामयिक आक्रोश की प्रतिक्रिया होने के कारण देश की हीनता की गम्भीर मीमांसा और उसके जागरण की समर्थ योजना 'परशुराम की प्रतीक्षा' में भी नही दी जा सकी है।

'सेनानी काव्य' की रचना चीनी आक्रमण के प्रसंग में नही हुई है । वह आठ वर्ष पूर्व प्रकाशित 'पार्वती महाकाव्य' का एक अंश है। पार्वती के विवाह और त्रिपुरों की कथा के बीच होने के कारण 'सेनानी काव्य' के कथानक को पार्वती का हृदय कहा जा सकता है । कुमार कार्तिकेय के रूप में युवकों का एक ओजस्वी आदर्श सेनानी काव्य में प्रस्तुत किया गया है । भारत का प्रत्येक नवयुवक सेनानी के समान तेजस्वी और वीर बने, तभी देश की सुरक्षा और उन्नति सम्भव हो सकती है। आज चीनी आक्रमण के बाद बुद्ध और गांधी की अहिंसा को भुलाकर परशुराम तथा अन्य ओजस्वी आदर्शों का स्मरण हो रहा है। कवि दिनकर की 'परशुराम की प्रतीक्षा' का पत्रों में अभिनन्दन हो रहा है तथा अन्य पराक्रमी वीरों की कथायें प्रकाशित हो रही हैं । यह अब एकांगी अध्यात्म और अहिंसा के प्रभाव से उदासीन, निरुत्साह और दुर्बल बने हुए देशवासियों को वर्तमान संकट में उत्साहित करने के लिये हो रहा है। वर्तमान संकट की इस भावुक प्रतिक्रिया के पीछे कोई व्यवस्थित विचार और व्यावहारिक योजना नहीं है । अतः भावुक प्रतिक्रिया

के ये खद्योत राष्ट्रीय जागरण के प्रतिभामय सूर्य का निर्माण कर सकेंगे, यह अत्यन्त संदिग्ध है।

'सेनानी काव्य' में आज से आठ वर्ष पूर्व परशुराम की शक्ति-साधना का संदेश प्रकाशित किया था। परशुराम के प्रेरणा-मय संदेश के साथ-साथ उसमें स्वर्ग के कल्पान्तर के निमित्त से एक शक्तिशाली भारत के निर्माण की योजना भी दी गई है। सेनानी और जयंत के व्याज से युवकों के सम्मान और गौरव को राष्ट्र की उन्नायक विभूति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु इतने पर भी अथवा इसी कारण यह काव्य इन आठ वर्षों के भीतर हिन्दी के आलोचकों और पाठकों का ध्यान आकर्षित न कर सका। आज के संकट में परशुराम का स्मरण करने वाले साहित्यकार और पत्रकार इसकी प्रासंगिक चर्चा को भी अपना कर्त्तव्य नहीं समझते।

सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण की जिस भावना से प्रेरित होकर मैंने दश वर्ष पूर्व 'पार्वती महाकाव्य' की रचना की थी, उसी भावना से प्रेरित होकर आज मैं 'पार्वती महाकाव्य' के इस अंश को 'सेनानी काव्य' के रूप में पृथक् प्रकाशित कर रहा हूँ। चीनी आक्रमण से उत्पन्न परिस्थिति के उपयुक्त बनाने के लिये इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। राष्ट्र के ओजस्वी उत्कर्ष की एक स्थायी भावना से इसकी रचना हुई थी, वही स्थायी भावना इसमें अपने मूल रूप में सुरक्षित है। हिन्दी के अधिकारी विद्वानों और आलोचकों से मैं साहित्यिक न्याय की याचना करना अपना कर्त्तव्य नहीं मानता। पत्र-पत्रिकाओं के अभिनन्दन का भी मैं अभिलाषी नहीं हूँ। साहित्य का स्थायी न्याय समय और समाज करता है, भवभूति का यह विश्वास मेरा भी आश्वासन है। युवकों के आदर्श

देव-सेनानी कुमार कार्तिकेय का यह ओजस्वी चरित्र तथा परशुराम का शक्ति-सदेश देश के नवयुवको को इस संकट-काल मे अपेक्षित प्रेरणा और उत्साह दे सके, तो इस राष्ट्रीय सकट मे मेरे कवि का योगदान सफल होगा । काव्य की भाषा सरल एव स्पष्ट है, फिर भी सामान्य पाठक और युवक अर्थ-ग्रहण की कठिनाई के कारण किसी की सहायता के याचक न बने, इस उद्देश्य से छदो का सरल अर्थ साथ-साथ दे दिया गया है। सम्पूर्ण काव्य के कथानक, विषय और प्रयोजन को आरम्भ मे ही स्पष्ट करने के लिये एक भूमिका दे दी गई है। आशा है देश के नवयुवक यौवन के इस आदर्श और ओजस्वी काव्य का आदर और उपयोग करेंगे।

'सेनानी काव्य' के छदों का अर्थ मेरी सहधर्मिणी श्रीमती शकुन्तला रानी एम० ए० ने किया है । उनके स्वभाव के अनुरूप छदो के ये अर्थ सरल और स्पष्ट हैं। व्यस्त रहने के कारण उनके अध्ययन के समान ही मैं उनके इस कार्य मे भी अधिक समय और सहयोग नही दे सका हूँ। फिर भी निकट और सुलभ होने के कारण मेरा आवश्यक सहयोग उन्हे इस कार्य में मिल सका है। 'पार्वती महाकाव्य' की रचना मे उनका विपुल भाव-योग मुझे मिला है। 'सेनानी काव्य' के इस रूप में उनका यह सार्थक योग दाम्पत्य के उस सक्रिय और सृजनात्मक साम्य की परम्परा के अनुरूप है जिसका प्रतिपादन काव्य की शैली से 'पार्वती' महाकाव्य और 'सेनानी काव्य' मे किया गया है।'

पुष्पवाटिका छात्रावास
महारानी श्री जया कालेज, भरतपुर
स्वतन्त्रता दिवस, १५ अगस्त, १९६३

विनीत—
रामानन्द तिवारी
'भारतीनन्दन'

सर्ग १

कुमार दीक्षा

हिमालय पर्वत पर स्थित परशुराम के आश्रम
में कुमार कार्तिकेय तथा अन्य कुमारों
की शस्त्र-शिक्षा एवं योग-साधना
का वर्णन ।

—•—

[१]

हिमालय के निविड़ एकान्त औ सूने विजन मे,
चतुर्दिक अद्रि-शिखरो से घिरे दुर्गम्य वन मे,
समाहित योग की मम भूमिका-से भूमि तल मे,
बना था एक आश्रम अगम अद्भुत पुण्य स्थल मे।

[२]

भयावह दूर से ही शून्यता उसको बनाती,
न था जनवास कोई भी जहाँ तक दृष्टि जाती,
चतुर्दिक कोट-से उन्नत तथा दुर्गम शिखर थे,
खड़े दृढ देवदारु अनेक प्रहरी-से प्रखर थे।

१—अर्थ हिमालय के घने (निविड़), एकान्त और सूने निर्जन प्रदेश में, चारो ओर पर्वत शिखरो से घिरे हुए दुर्गम वन मे एक आश्रम बना था। वह आश्रम योग की सम भूमिका के समान समतल भूमि-भाग मे तथा एक अत्यन्त दुर्गम और अद्भुत एवं पवित्र स्थल मे बना था।

२—अर्थ उस आश्रम को उस प्रदेश की शून्यता दूर से ही डरावना (भयावह) बना रही थी। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, वहाँ तक कोई भी जनवास अर्थात् मनुष्यों का निवास नही दिखाई देता था। उस आश्रम के चारो ओर कोट (परकोटा) के समान ऊँचे और दुर्गम पर्वत शिखर घिरे हुये थे तथा अनेक देवदारु के दृढ वृक्ष प्रखर अर्थात् तेज अथवा कुशल प्रहरियों के समान खड़े थे।

[३]

विजन में गूँजती भागीरथी की चण्ड धारा,
न होता दृष्टिगोचर किन्तु था उसका किनारा,
चमक विद्युल्लता-सी एक पल को सान्द्र घन में,
जगाती ज्योति-सी अद्भुत विपिन में और मन में ।

[४]

मनुज भयभीत होते किन्तु पशु निर्भय विचरते,
न भीषण हिंसकों को देख मृदु मृग-वर्ग डरते,
अनोखी शान्ति छाई थी भयंकर भी विपिन में
मृदुलता थी कठिन भी मार्ग के शीतल तुहिन में ।

३—अर्थ आश्रम का वह निर्जन प्रदेश विजन होने के कारण शान्त और नीरव था। वह भागीरथी गंगा के किनारे पर बना हुआ था। पर्वतीय गंगा की प्रचण्ड धारा का ही एक शब्द उस निर्जन प्रदेश में गूँजता था। किन्तु सघन वन के कारण उसका किनारा नहीं दिखाई देता था। गंगा के शुभ्र जल की उज्ज्वल धारा उस सघन वन में एक क्षण को उसी प्रकार चमक जाती थी, जिस प्रकार घने काले (सान्द्र) बादल में बिजली की लहर चमक जाती है। गंगा की धारा की वह विद्युल्लेखा वन में और दर्शक के मन में एक अद्भुत ज्योति-सी जगा देती थी।

४—अर्थ मनुष्य उस आश्रम के निकट जाने में भयभीत होते थे, किन्तु पशु उस आश्रम के निकट निर्भयता से विचरते थे। सिंह आदि के समान भयंकर एवं हिंसक पशुओं को देखकर मृग आदि के समान कोमल पशु समूह डरते न थे। निर्जन एकान्त के कारण भयंकर प्रतीत होने वाले वन में भी एक अनोखी शान्ति छाई थी तथा कठिन मार्ग के शीतल तुषार अथवा हिम में भी एक कोमलता थी।

[५]

असुर भी दूर तक थे दृष्टि गत होते न कोई,
यहाँ किस पुण्य-चय मे नीति उनकी दुष्ट खोई,
यहाँ था कौन ऐसा वीर दुर्जय औ प्रतापी,
कि जिसकी भीति असुरो के हृदय मे क्रूर व्यापी ?

[६]

न थे गन्धर्व, किन्नर, अप्सराओं के शिविर भी,
न होते गान औ उल्लास से गुंजित अजिर भी,
तपोधन कौन ऐसा था यहा पर वास करता,
कि जिसके तेज से शकित हुई रति मे अमरता ?

५—अर्थ उस आश्रम के आस पास दूर तक कहीं भी कोई राक्षस नहीं दिखाई देते थे। यहाँ किस पुण्य के सचय अथवा समूह में उन राक्षसो की दुष्ट नीति खो गई थी अर्थात् विलीन हो गई थी। यहाँ इस आश्रम मे ऐसा कौन दुर्जय और प्रतापी वीर रहता था, जिसका भय राक्षसो के क्रूर हृदय मे समाया हुआ था अर्थात् जिसके भय के कारण वे आश्रम के निकट नही आते थे।

६—अर्थ उस आश्रम के निकट गन्धर्व, किन्नर और अप्सराओ के शिविर भी नहीं थे, जो कि हिमालय के गन्धर्व और किन्नर प्रदेश में प्रायः दिखाई देते थे। उस आश्रम प्रदेश मे गन्धर्व और किन्नरों के भवन न थे। अतः उनके प्रागण गान और नृत्य के उल्लास से गुंजित नहीं होते थे। यहाँ पर इस आश्रम में ऐसा कौन तपोधनी मुनि निवास करता था, जिसके तेज के प्रताप से देवता भी विलास में आशंकित होते थे अर्थात् डरते थे।

[७]

विपिन के गर्भ में यह जल रही थी कौन ज्वाला,
प्रदीपित मोह-तम में यथा ऋत की यज्ञ-शाला;
उदय होता यथा आदित्य कुहरे-युत गगन में,
अनावृत ज्योति आत्मा की यथा तम-पूर्ण मन में।

[८]

सुगन्धित धूम की थीं उठ रहीं लहरें गगन में,
रहा छा पुण्य सौरभ होम का गिरि और वन में;
शिखायें धूम की उठ कर, अलक्षित पवन-कर से,
नियति के लेख नभ में रच रहीं अज्ञात वर-से।

७—अर्थ घने वन के बीच में परशुराम के यज्ञ की ज्वाला इस प्रकार जल रही थी जैसे मोह के अन्धकार में सत्य (ऋत) की यज्ञशाला दीप्त हो रही हो अथवा जैसे घने कुहरे से घिरे हुए आकाश में सूर्य उदित होता है अथवा तमोगुण के अन्धकार से पूर्ण मन में आत्मा की ज्योति खिल रही हो। (यज्ञ का पुरुष, सत्य, सूर्य और आत्मा ये सब परशुराम की साधना की सात्त्विक और मङ्गलमयी दिशा के सूचक हैं)

८—अर्थ परशुराम की यज्ञशाला से सुगन्धित होम धूम की लहरें उठ रही थीं। उनके होम का पवित्र सौरभ पर्वत और वन में छा रहा था। होमधूम की शिखायें आकाश में उठकर हवा से फैल रही थीं, मानो वायु के अलक्षित कर के द्वारा वे आकाश में विश्व की भाग्य नियति का लेख रच रही थीं, जो विश्व के लिये अज्ञात वर के समान था। (परशुराम की साधना हिमालय के वातावरण को पवित्र बना रही थी और विश्व के भावी मंगल को निश्चित बना रही थी, यद्यपि उनकी साधना का यह वरदान अविदित था)।

[९]

तपोवन था यही भृगुराज का विख्यात जग में,
न जाता भूल कोई असुर जिसके मृत्यु-मग मे,
भयकर शान्ति मे थी साधना होती प्रलय की,
प्रशिक्षा-मन्त्रणा होती अनय के जिर-विजय की।

[१०]

कठिन कान्तार के उस दुर्ग के भीतर रचा था,
समायत एक प्रांगण (तरु न कोई भी बचा था);
भयकर शान्ति में उर के पृथुल करुणा प्रसग-सा,
विदित होता हिमालय के अपर वह मानसर-सा।

९—अर्थ यही भृगुवंशी मुनि परशुराम का जगत में विख्यात तपोवन था। राक्षसों के लिए यह तपोवन मृत्यु का मार्ग था, अतः कोई भी राक्षस उस तपोवन के मार्ग में नहीं जाता था। इस तपोवन का वातावरण अत्यन्त शान्त था। इस शान्तिपूर्ण वातावरण में वहाँ प्रलय की साधना होती थी अर्थात् युद्ध की शिक्षा होती थी तथा असुरों की अनीति को स्थायी रूप से पराजित करने की प्रशिक्षा एवं मन्त्रणा होती थी।

१०—अर्थ उस दुर्गम और घने वन के दुर्ग के भीतर एक विशाल समतल प्रांगण बना हुआ था, जिसके सभी वृक्ष काट दिये गये थे। दुर्गम वन के बीच वह विशाल प्रांगण ऐसा प्रतीत होता था मानों भयकर शान्तिमय हृदय की विपुल करुणा का प्रसार हो अथवा मानों वह हिमालय का दूसरा मानसरोवर हो।

[११]

उसी के एक तट पर उटज निर्मित एक तृण का,
बना प्रतिशोध-मन्दिर विश्व के कारुण्य-ऋण का;
सरलता त्याग-तप की थी वहाँ साकार सारी,
कदाचित् शौर्य के सन्मुख सहज नत थी विचारी।

[१२]

टँगे थे परशु औ पालाश उसमें साथ दोनों,
हृदय से एक उनको ग्रहण करते हाथ दोनों;
हुआ था भूमि पर अवतरित अद्भुत वीर योगी,
समुद्धृत सृष्टि जिसकी नीति से निर्भ्रान्ति होगी।

११—अर्थ उस प्रांगण के एक किनारे एक तृणों का कुटीर बना हुआ था। वह परशुराम की कुटी थी, जो विश्व की करुणा के ऋण को चुकाने के लिए प्रतिशोध मन्दिर के समान थी। इस कुटीर में त्याग और तप की सम्पूर्ण सरलता साकार दिखाई देती थी। किन्तु वह सरलता परशुराम के तपोधन के शौर्य से अभिभूत थी। कदाचित् वह बेचारी सरलता शौर्य के सामने सहज भाव से विनत थी।

१२—अर्थ परशुराम के उस कुटीर में उनका परशु और पलाश दण्ड दोनों साथ साथ टँगे थे। वीर और ब्रह्मचारी परशुराम के दोनों हाथ उन दोनों को एक हृदय से अर्थात् एक भाव से ग्रहण करते थे। परशुराम के रूप में पृथिवी पर एक अद्भुत वीर और योगी का अवतार हुआ था जिसकी भ्रान्ति रहित नीति से ही सृष्टि का उद्धार हो सकता है।

[१३]

उटज के पास ही थी एक उज्ज्वल अस्त्र-शाला,
बनी थी विश्व के हित वह विपुल विस्मय निराला,
अनोखा ज्ञान, तप औ योग का गम्भीरता से
कभी सयोग या प्रतियोग सम्भव वीरता से !

[१४]

असम्भव ही जिसे ससार अब तक मानता था,
महत्ता भी अत जिसकी न वह पहचानता था,
उसी को एक जीवन मे सफल जिसने बनाया,
जगत को श्रेय का निर्भ्रान्त पथ जिसने दिखाया।

१३—अर्थ उस कुटीर के पास ही एक उज्ज्वल अस्त्रशाला थी, जो उज्ज्वल अस्त्रों से जगमगा रही थी। वह अस्त्रशाला विश्व के लिए एक अनोखे और महान् विस्मय का कारण थी। ज्ञान, तप और योग का वीरता के साथ संयोग अथवा प्रतियोग एक अद्भुत आश्चर्य है और कदाचित् ही सम्भव है।

१४—अर्थ इस संयोग को संसार के नेता अब तक असम्भव ही मानते थे। असम्भव मानने के कारण वे उसके महत्व को भी नहीं पहचानते थे। उसी संयोग को अपने एक जीवन में परशुराम ने स्वयं सफल और चरितार्थ करके दिखाया तथा संसार को कल्याण का भ्रान्तिरहित पथ बतलाया।

[१५]

समुन्मूलन तथा कर क्षत्रियो के दृप्त दल का,
मिटा आतंक असुरो के तथा उद्दाम बल का;
प्रमाणित कर जगत के जागरण की ब्रह्म-वेला,
हुआ जो वीर ब्राह्मण विश्व मे अद्भुत अकेला।

[१६]

प्रबल उद्दाम बल के अनय से कर त्राण जग का,
हुआ सकेत-ध्रुव कैलास-शिव के शुभ्र मग का,
अकिंचन ज्ञान-तप को शक्ति का दे दर्प भारी,
प्रथम शिव-शान्ति की दुर्गम सरणि जिसने विचारी।

१५—अर्थ उन परशुराम ने बल के अभिमानी और अत्याचारी क्षत्रियो का नाश किया तथा सहस्रबाहु जैसे अनेक राक्षसो का सहार करके उनकी उच्छृंखल शक्ति का आतंक दुनियाँ मे मिटाया। इस प्रकार अनीति का नाश कर उन्होंने जगत के जागरण की ब्रह्मवेला को प्रमाणित किया। इस दृष्टि से वे वीर ब्राह्मण विश्व मे एक अद्भुत अवतार हुए हैं और अपने ढग के अकेले महापुरुष थे। (शक्ति और योग का ऐसा समन्वय करने वाला कोई दूसरा नहीं हुआ)।

१६—अर्थ उन्होंने प्रबल और उच्छृंखल शक्ति की अनीति मे संसार की रक्षा की। उत्तराखण्ड मे स्थित परशुराम का आश्रम कैलास के मार्ग में था। परशुराम की नीति विश्व मंगल के उज्ज्वल मार्ग का सकेत करने वाले ध्रुवतारे के समान थी। शक्ति के बिना जो ज्ञान और तप तुच्छ एवं दीन हो जाते हैं, उनको शक्ति का महान् गौरव देकर परशुराम ने मगलमयी शान्ति के दुर्गम मार्ग का सर्वप्रथम अनुसधान किया।

[१७]

वही भृगुराज हो क्रमश पराजित काल–क्रम से,
समर्पित कर रहे विद्या प्रणय से पूर्ण श्रम से,
दिवाकर ज्ञान से युत शौर्य अद्भुत वृद्ध वय मे,
बना दीक्षित द्विजो को अस्त्र विद्या से अभय मे।

[१८]

प्रहर्षित निज हृदय मे आज अति आचार्य वर थे,
अधर थे स्फुरित होते औ फडकते आज कर थे,
चिरन्तन शक्ति औ शिव की अनन्य उपासना का,
मिला था स्कन्द फल–सा सकल सचित साधना का।

१७—अर्थ वही परशुराम युवावस्था में अद्भुत पराक्रम दिखाकर काल की गति से क्रमशः पराजित होकर वृद्ध हो रहे थे। किन्तु वृद्धावस्था में भी वे बटुकों को शक्ति और योग की शिक्षा देकर अपनी कीर्ति को अमर बना रहे थे। अपने आश्रम में वे प्रेम और परिश्रम के साथ बटुकों को शिक्षा दे रहे थे। वृद्धावस्था में भी वे ज्ञान के साथ-साथ अद्भुत शौर्य दिखाते थे और ब्राह्मण युवकों को अस्त्र विद्या की शिक्षा के द्वारा अभय में दीक्षित कर रहे थे।

१८—अर्थ आज वे वरिष्ठ आचार्य परशुराम अपने हृदय में अत्यन्त प्रसन्न थे। उनकी इस प्रसन्नता का कारण स्कन्द का आगमन था। उत्तेजना के कारण उनके अधर (कुछ कहने के लिए) स्फुरित होते थे और उनके हाथ (शिक्षा के अर्थ अस्त्र-संचालन के लिए) फड़कते थे। परशुराम ने चिरकाल तक शक्ति और शिव की अनन्य भाव से उपासना की थी। आज कुमार स्कन्द उनको अपनी सम्पूर्ण और सञ्चित साधना के सम्पूर्ण और संचित फल के समान प्राप्त हुआ था।

[१९]

यही थे सोचते भृगुराज मन में शान्त अपने,
कि "होंगे सत्य भू में चिर–रचित निर्भ्रान्त सपने;
अमृत होगा धरा मे अब सनातन धर्म मेरा,
अजय होगा सदा एकत्र विद्या–कर्म मेरा ।

[२०]

हृदय में वेद, कर मे परशु भीषण धर रहा हूं,
युगो से विश्व में यह घोषणा मैं कर रहा हूं,
अरे ! ओ ! ज्ञान के साधक दलित विप्रो ! अभागो !
अरे ! तुम शक्ति की भी साधना के अर्थ जागो ।

१९—अर्थ भृगुराज परशुराम मन में शान्त होकर यही सोचते थे कि 'मेरे चिरकाल से रचे हुए भ्रान्ति रहित सपने अब सेनानी के उद्योग से पृथ्वी पर सत्य होंगे । मेरा शक्ति–ज्ञान के समन्वय का सनातन शाश्वत धर्म अब पृथ्वी पर अमर होगा । मेरा ज्ञान और कर्म का समन्वय एकत्र अब स्कन्द कुमार के रूप में अजय होगा अर्थात् जीवन का अजेय सिद्धान्त बनेगा ।

२०—अर्थ *परशुराम ने कहा कि "मैं चिरकाल से अपने हृदय में* वेद का ज्ञान रखता हूँ तथा हाथ में भयकर परशु धारण कर रहा हूँ । इस प्रकार ज्ञान और शक्ति की समन्वित साधना करके मैं युगो से ससार में यह घोषणा कर रहा हूँ कि 'हे ब्राह्मणो ! अभागो ! तुम केवल ज्ञान के ही साधक मत बने रहो, जागरित होकर शक्ति की साधना भी करो । (केवल ज्ञान पगु रहता है; विश्व का कल्याण ज्ञान और शक्ति के समन्वय से ही सम्भव होगा) ।"

[२१]

न होगा विश्व का उद्धार केवल ज्ञान-नय से,
प्रतिष्ठित धर्म होगा भूमि पर केवल अभय से,
अकेला बल यदपि बनता अनर्गल दर्प खल का,
अकेला ज्ञान बनता दास दुर्बल दृप्त बल का।

[२२]

न होता विश्व का निर्णय विपिन या कन्दरा में,
सदा जीवन बिगडता और बनता रणधरा मे;
न होगा ज्ञान से जाग्रत कभी बल-दृप्त भोगी,
सदा ध्रुव-धर्म-जय की भूमिका सच्छक्ति होगी।

२१—अर्थ इस विश्व का उद्धार केवल ज्ञान की नीति से नहीं हो सकता, इस भूमि पर धर्म की प्रतिष्ठा केवल अभय से ही हो सकती है अर्थात् जब तक मनुष्य दुष्टों के भय से शंकित रहेंगे, तब तक पृथ्वी पर धर्म का प्रसार नहीं हो सकता। अकेला बल दुष्टों का अहंकार बन जाता है, किन्तु सज्जनों का (शक्ति के समन्वय से रहित) अकेला ज्ञान भी दर्प से युक्त और अविचारी बल का दुर्बल दास बन जाता है।

२२—अर्थ विश्व के भाग्य का निर्णय वन में या कन्दरा (गुफा) में नहीं होता, जहाँ कि ज्ञानी मुनि साधना करते हैं। मनुष्यों का जीवन रण-क्षेत्र में ही बनता या बिगडता है अर्थात् विश्व के जीवन का निर्णय युद्धक्षेत्र में ही होता है। बल के गर्व से उद्धत भोगी जन ज्ञान से कभी जाग्रत नहीं हो सकते। सत् शक्ति अर्थात् सात्विक और श्रेयमयी शक्ति ही धर्म के विजय की स्थायी भूमिका बन सकेगी।

[२३]

नही है विश्व के सज्जन सभी ज्ञानी विरागी,
न होकर ज्ञान मे तन्मय किसी ने देह त्यागी;
प्रकृति के धर्म रहते देह–मन के साथ सारे,
प्रवंचित हैं यही होते सभी साधक विचारे।

[२४]

प्रकृति के भोग मे हो सगठित बल कामचारी,
बनाता ज्ञान–तप को द्वार का केवल भिखारी;
समर्पित कर सभी साधन सुखो के और बल के,
बने सेवक, अकिंचन ज्ञान–तप हो, दुष्ट दल के।

२३—अर्थ संसार के सभी सज्जन मनुष्य ज्ञानी या वैरागी नहीं होते और न ज्ञान मे तन्मय होकर उनमें से किसी ने देह का त्याग किया है। प्रकृति के सभी धर्म सदैव ही शरीर और मन के साथ रहते हैं। शक्ति से विहीन होकर निष्पाप साधक यहीं पर आकर धोखा खाते हैं। (वे प्रकृति की इस अनिवार्यता को भूल जाते हैं और एकागी अध्यात्म के भ्रम मे रहते हैं।)

२४—अर्थ उच्छृंखल और स्वेच्छाचारी बल को अतिचार के द्वारा प्रकृति के भोग प्राप्त होते हैं। बल की यही सफलता उसके संगठन का आधार बन जाती है। अतिचारी बल के सगठित होने पर ज्ञान, तप आदि सात्विक वृत्तियाँ उसके द्वार की भिखारी बन जाती हैं अर्थात् उसके दान-दया पर जीती हैं। इस प्रकार सुख और बल के सभी साधन दुष्टों को समर्पित कर ज्ञान और तप दुष्टों के सेवक बन जाते हैं।

[२५]

स्वय होकर समाहित ज्ञान मे उपरत उदासी,
प्रतिष्ठित हो परम कैवल्य में एकान्त वासी,
अकेले स्वार्थ मय आनन्द का उपभोग करते,
असुर उत्पात ही बस भग उनका योग करते।

[२६]

तनिक भी ज्ञान मे यदि प्रकृति का आधार रहता,
सभी छल अर्थ-बल के विवश योगाचार सहता,
पुरस्कृत कीर्ति-सुख से हो पतन को बाध्य होता,
असुर दल का प्रसाधन भर सुरो का साध्य होता।

२५—अर्थ संसार से उदासीन ज्ञान के साधक स्वय ज्ञान की साधना मे लीन होकर तथा समाज से दूर एकान्त वास मे परम कैवल्य को प्राप्तकर अध्यात्म के आनन्द का उपभोग स्वयं अकेले ही करते हैं। इस प्रकार उनकी अध्यात्म साधना स्वार्थमय बन जाती है। उनके इस एकान्त और स्वार्थमय अध्यात्म योग को असुरो के उत्पात ही भंग करते हैं (समाज के कल्याण की चिन्ता से उनकी यह एकान्त साधना भग नहीं होती)।

२६—अर्थ ज्ञान की साधना में यदि प्रकृति का तनिक भी आधार रहता है, (प्रकृति से पूर्ण वैराग्य अत्यन्त कठिन है) तो ज्ञानियों की योग साधना धन और शक्ति के सभी छलो को विवश होकर सहती है। असुरो का छल ज्ञानियो को यश और सुख से पुरस्कृत करते हैं। इस पुरस्कार से ज्ञान विवश होकर पतित होता है। पतित ज्ञान का परिणाम यह होता है कि जो ज्ञान देवताओं अथवा सज्जनों का साध्य है, वह असुरों का शृंगार अथवा अलंकार बन जाता है।

[२७]

प्रथम होकर विरत जिन कीर्ति–सुख औ मान धन से,
निरत होते निभृत तप–योग मे तल्लीन मन से,
उन्ही के दास बन कर क्रीत हा ! कितने न ज्ञानी,
असुर के छत्र–चारण बन सजाते राजधानी ।

[२८]

असुर का साध्य केवल भोग अथवा भोग्य ही है,
असुर को ज्ञान लौकिक, और साधन–योग्य ही है,
सदा गिरि–वृष्टि सा अध्यात्म उसको व्यर्थ होता,
न होकर सरस पाहन पुष्प–दान–समर्थ होता ।

२७—अर्थ पहले ज्ञान के साधक यश, सुख, सम्मान और धन की कामना से विरक्त होकर तन्मय मन से एकान्त तप योग में सलग्न होते हैं, किन्तु अन्त में उन्ही के (कीर्ति सुख, मान और धन के) क्रीतदास बनकर न जाने कितने ज्ञानी असुरों के वैभव के रक्षक (छत्र) और प्रचारक (चारण) बनकर उनकी राजधानी के अलंकार बन जाते हैं ।

२८—अर्थ भोग्य पदार्थ ही असुरो के जीवन के साध्य हैं । असुरों की रुचि लौकिक ज्ञान में ही होती है, आध्यात्मिक ज्ञान में नहीं । असुरो का वह लौकिक ज्ञान भी साध्य नहीं होता वरन् उनके भोग का साधन मात्र होता है । जिस प्रकार पर्वत पर होने वाली वर्षा व्यर्थ होती है (वह कृषि में सफल नहीं होती), उसी प्रकार असुरो के लिए अध्यात्म का उपदेश व्यर्थ होता है । पर्वत की वृष्टि से सरस होकर पत्थरों में फूल नहीं खिलते, उसी प्रकार अध्यात्म की शिक्षा से सरस होकर असुरो के हृदय में मधुर भाव नहीं खिलते ।

[२९]

यदपि है योग-सा ही व्यक्तिगत यह भोग तन का,
तदपि जड़ भोग्य बनता सूत्र आसुर संगठन का,
अबलता ज्ञान की बन प्रेरणा उनके अनय की,
बजाती दुन्दुभी इतिहास में उनकी विजय की।

[३०]

सदा ही व्यक्तिगत अध्यात्म का तप-ज्ञान होता,
अखिल निधि योग की साधक निभृत उर में सँजोता,
न बनता व्यक्तियों का साध्य यह, आराध्य जग का,
अतः ज्ञानी सदा रहता पथिक एकान्त मग का।

२९—अर्थ यद्यपि असुरों का शारीरिक भोग भी ज्ञानियों के अध्यात्म योग के समान व्यक्तिगत ही है। फिर भी दोनों के परिणाम में अन्तर है। व्यक्तिगत योग साधन शक्ति और संगठन का आधार नहीं बन सकता। किन्तु असुर के लक्ष्यभूत भोग्य विषय जड़ होते हुए भी असुरों के संगठन के सूत्र बन जाते हैं। दूसरी ओर ज्ञान की निर्बलता असुरों की अनीति की प्रेरणा बनती है और उस दुर्बलता से विवश होकर ज्ञान ही असुरों की विजय की दुंदुभी इतिहास में बजाता है।

३०—अर्थ अध्यात्म का तप और ज्ञान सर्वदा व्यक्तिगत होता है। योग की सम्पूर्ण सम्पत्ति को साधक अपने एकान्त हृदय में सँजोता है। जो अध्यात्म व्यक्तियों का साध्य रहता है, वह सम्पूर्ण समाज की आराधना का लक्ष्य नहीं बनता। अतः व्यक्तिगत अध्यात्म का साधक ज्ञानी सदा एकान्त मार्ग का पथिक रहता है (अध्यात्म के साधकों का संगठन नहीं बन पाता)।

[३१]

सदा ही व्यक्तिगत तप-योग साधन-जात रहते,
अत साधक अकेले ही अखिल उत्पात सहते,
न बनता ज्ञान-तप-युत योग कारण सगठन का,
अरक्षित धर्म होता हेतु मानव के पतन का।

[३२]

धरा मे धर्म, नय औ शान्ति के पूजित पुजारी,
बनाते मानवों को ही रहे नित धर्मचारी,
सुनाते शान्ति का उपदेश केवल सज्जनो को,
बनाते और भी दुर्बल मृदुल उनके मनो को।

३१—अर्थ तप और योग के समस्त साधन अर्थात् आचार सदा व्यक्तिगत रहते हैं। (*ज्ञानी जन तप-योग की साधना* अकेले ही करते हैं। अध्यात्म के क्षेत्र मे सगठन सम्भव नही होता।) अतः असुरों के सारे उत्पातों को भी अध्यात्म के साधक अकेले ही सहते हैं। ज्ञान और तप से युक्त योग सगठन का कारण नहीं बनता। अत सगठन की शक्ति के बिना धर्म अरक्षित रह जाता है। अरक्षित धर्म उत्थान के स्थान पर मनुष्य के पतन का कारण बनता है।

३२—अर्थ पृथ्वी पर धर्म, नीति और शान्ति के पुजारी बनकर पूजित होने वाले धर्म के नेता माननीय भावना से युक्त सज्जनों को ही धर्म से प्रभावित कर धर्मचारी बनाते रहे। वे केवल सज्जनों को ही शान्ति का उपदेश देते रहे तथा सज्जनता के कारण मृदुल एव दुर्बल *उनके मन को और भी दुर्बल बनाते रहे।* (दुर्जनों पर उनके धर्म उपदेश । कोई प्रभाव नहीं होता और न वे इसका प्रयत्न करते हैं।)

[३३]

स्वयं ऐश्वर्य के उपभोग से कृत-कृत्य होते,
जगत के पूज्य, पर प्रच्छन्न खल के भृत्य होते,
छली आचार्य बन जग को यही ज्ञानी भुलाते,
यही कटु सत्य को सुकुमार सपनों में सुलाते।

[३४]

यही असहाय कर निर्बल विशृङ्खल मानवों को,
अभय-सा दान कर उद्धत बनाते दानवों को,
इन्हीं प्रच्छन्न अरियों को समझ कर मित्र अपना ॥
रहा जग मूढ़ मन मे पालता नित स्वर्ग सपना।

३३—अर्थ (सज्जनों की श्रद्धा से धर्माचार्यों को सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।) उन ऐश्वर्यों के उपभोग से वे कृतकृत्य हो जाते हैं। वे धर्माचार्य प्रकट रूप में जगत के पूज्य बन जाते हैं, किन्तु प्रच्छन्न रूप में अर्थात् छिपे रूप में वे दुष्टों के सेवक होते हैं, क्योंकि उनके द्वारा समाज में दुष्टों के लक्ष्य पूरे होते हैं। ये ही ज्ञानी जन छली आचार्य बनकर संसार को भ्रम में भुलाते हैं। ये ही जीवन के यथार्थ किन्तु कटु सत्यों को धर्म और अध्यात्म के कोमल सपनों में सुलाते रहे। (ये कोमल सपने कठोर सत्य की चोट से प्रायः टूटते रहे हैं।)

३४—अर्थ ये छली आचार्य ही शक्ति की साधना से विमुख बनाकर मानवों को बलहीन और विशृङ्खल (असंगठित) बनाते हैं तथा इस प्रकार उन्हें असहाय कर देते हैं। (शक्ति और संगठन ही मनुष्यों के सहायक हैं।) मानवों की दुर्बलता और असहायता दानवों के लिए अभयदान बन जाती है और दानवों को अधिक उद्धत बना देती है। ये छली आचार्य मानव समाज के छिपे हुए शत्रु हैं। किन्तु इनको अपना मित्र समझकर मूढ़ संसार अपने मन में सदा स्वर्ग के सपने पालता रहा।

[३५]

हुये जब क्रान्ति के निर्घोष आतंकित गगन में,
रहे तब मौन ये निष्ठुर सुरक्षित बन भवन में,
अरक्षित धर्म-प्रिय जन पक्षियों-से विवश मरते,
प्रवचन का रुधिर से कठिन प्रायश्चित्त करते।

[३६]

कुसुम-से शिशु अनल मे क्रान्ति की बलिदान होते,
लुटा कर लाज नारी के प्रपीड़ित प्राण रोते,
सखा ये दानवो के बन प्रवचक धर्म-धारी,
बनाते दानवो की दया का नर को भिखारी।

३५—अर्थ दानवों की उच्छृंखलता के कारण जब समाज में क्रान्तियां हुईं और क्रान्ति के गर्जन भय से पूर्ण आकाश में प्रतिध्वनित हुए, तब ये छली आचार्य अपने भवन में सुरक्षित बने रहे तथा निष्ठुरता पूर्वक मौन बने रहे। धर्म का आदर करने वाले सज्जन सत्य और संगठन के बिना अरक्षित रहे तथा क्रान्ति के विप्लव में पक्षियों के समान विवश होकर मरते रहे। धर्म की प्रवंचना का कठिन प्रायश्चित वे अपने रुधिर से करते रहे।

३६—अर्थ कुसुम के समान कोमल बालक उस क्रान्ति की अग्नि में बलि होते रहे। उस क्रान्ति के विप्लव में असंख्यों नारियों की लाज लूटी गई। अपनी लाज लुटाकर नारियों के पीड़ित प्राण रोते रहे। ये प्रवचक धर्मधारी दानवों के मित्र बनकर मानवों को दानवों की दया का भिखारी बनाते रहे।

[३७]

दया पर दानवों की धर्म कब तक जी सकेगा ?
रुधिर से दुर्बलों के धर्म-तरु कब तक पलेगा ?
न जब तक शक्ति का समवाय होगा ज्ञान-नय में,
प्रतिष्ठित धर्म तब तक हो न पायेगा अभय में।

[३८]

न तज कर वचना जब तक जगत के धर्मधारी,
बनेंगे ज्ञान से युत शक्ति के निर्भय पुजारी,
असुर के द्वार पर जब तक अनय का फल न होगा,
अनाचारी तभी तक पाप से विह्वल न होगा।

३७—अर्थ दानवों की दया पर धर्म कब तक जीता रहेगा ? (दानवों को धर्म का कोई सच्चा सम्मान नहीं है।) धर्म का वृक्ष दुर्बलों के रुधिर से सिंचित होकर कब तक पलता रहेगा अर्थात् दुर्बलों के बलिदान से धर्म की रक्षा कब तक होती रहेगी ? जब तक कि ज्ञान और नैतिकता में शक्ति का समन्वय नहीं होगा, तब तक धर्म की अभय में प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

३८—अर्थ जगत के धर्माचार्य जब तक छल को नहीं छोड़ेंगे और ज्ञान से समन्वित शक्ति के निर्भय पुजारी नहीं बनेंगे, असुरों के द्वार पर जब तक उनकी अनीति का परिणाम न आयेगा, तब तक अत्याचारी दानव पाप से व्याकुल नहीं होगा।

[३६]

पडेगा शक्ति का जब वज्र दानव के अजिर में,
बहेंगे पाप के जब पत्र अपने ही रुधिर में,
तभी पापी अनाचारी असुर को ज्ञान होगा,
तभी शिव धर्म का जग मे नवीन विहान होगा।

[४०]

बिलखते देख अपनी नारियों को जब भवन में,
निरख असहाय शिशुओं को भरे आँसू नयन मे,
द्रवित औ दीर्ण करुणा से असुर का मर्म होगा,
तभी निर्भय अनय से पुण्य मानव धर्म होगा।

३६—अर्थ जब शक्ति का वज्र दानवों के आँगन में गिरेगा और उनके पाप के वृक्ष के सूखे पत्र जब उनके अपने ही रुधिर की धारा मे बहेंगे, तभी पापी और अतिचारी दानवों के मन में ज्ञान का उदय होगा और तभी मंगलपूर्ण धर्म का जगत मे नवीन प्रभात होगा।

४०—अर्थ जब (अपने दल के युवकों के निधन के बाद) अपने कुल की स्त्रियों को अपने घर में दुःख से बिलखते हुए देखकर तथा असहाय बालकों की आँखों मे आँसू भरे देखकर, असुर का हृदय करुणा से द्रवित और विदीर्ण होगा, तभी मानव धर्म अनीति के अत्याचारों से निर्भय होगा।

[४१]

भुलाता ही सदा यह सत्य अब तक लोक आया,
सदा इस भ्रान्ति का कटु फल पराजय-शोक पाया,
न जाने शक्ति से क्यों धर्म का मन भीत होता,
सदा नभ मे रहा वह कल्पतरु के बीज बोता।

[४२]

युवा वय में अकेले ही असुर - सहार मैंने,
किये कितने, बना निष्कण्टकित ससार मैंने,
सहस्रों बाहु असुरो के किये खण्डित परशु से,
किया तर्पण अनय का दानवों के रुधिर - असु से।

४१—अर्थ यह मनुष्य-समाज अब तक सदा उक्त सत्य को भुलाता आया है और इस भ्रान्ति का कडुवा फल पराजय और शोक के रूप मे पाया। न जाने धर्म मे ऐसी कौनसी दुर्बलता है, कि शक्ति की साधना से धर्म का मन सदा डरता रहा। शक्ति की साधना की उपेक्षा करके धर्म सदा कल्पना के शून्य आकाश में स्वर्गिक कल्पतरु के बीज बोता रहा अर्थात् स्वर्ग के दिव्यफल की कामना करता रहा।

४२—अर्थ युवावस्था में मैंने अकेले ही कितने असुरों का संहार किया और संसार को निष्कण्टक बनाया। सहस्रबाहु जैसे असुरों के सहस्रों बाहुओं को मैंने परशु से खण्डित किया और दानवों की अनीति का तर्पण मैंने उनके ही रुधिर और प्राणों से किया।

[४३]

प्रकृति के धर्म से जीवित असुर की जाति रहती,
रुधिर मे ही अनय के बीज की विष-पाँति बहती;
अयुत उत्पन्न होते एक से उर्वर प्रकृति में,
न कौशल और श्रम कुछ भी अनृत की सृष्टि-धृति मे।

[४४]

कठिन है पुण्य को औ धर्म को रक्षित बनाना,
सुरक्षित कर, निरन्तर धर्म की सरिता बहाना,
अकेले ही मिटाना मूल अवनी से अनय की,
कठिन युग-कर्म, सीमा देखकर इस देह-वय की।

४३—अर्थ असुरों के जीवन में प्राकृतिक भोग ही प्रधान होता है, इसी के द्वारा उनकी जाति बढ़ती रहती है। अनीति के बीजों की विषमयी पंक्ति उनके रुधिर में ही बहती है (अनीति प्राकृतिक है उसके प्रचार में किसी शिक्षा और श्रम की आवश्यकता नहीं होती) प्रकृति बहुत उर्वर (उपजाऊ) है, अतः एक असुर से असंख्य असुर उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव अनीति और पाप के उत्पादन और धारण में न कोई कुशलता है और न कोई परिश्रम है (ये प्राकृतिक क्रम में बड़ी सरलता से उत्पन्न होते और बढ़ते हैं।)

४४—अर्थ पुण्य और धर्म की परम्परा का पालन करना और उसकी रक्षा करना तथा सामाजिक जीवन में इनको सुरक्षित बनाकर धर्माचार की धारा को निरन्तर बहाना कठिन है। धर्म को सुरक्षित बनाने के लिए अनीति की जड़ को पृथ्वी से मिटाना भी अकेले के लिए कठिन है। (यह सज्जनों के संगठन के द्वारा ही हो सकता है) शरीर और आयु की सीमा को देखकर ये युगल (दोनों) धर्म कठिन दिखाई देते हैं।

[४५]

अमृत होती सदा विद्या समर्पित शिष्य वर को,
मिला अब तक न अधिकारी यथोचित परशुधर को,
परम सौभाग्य है भू-स्वर्ग के ही साथ मेरा,
बनेगा शिव-कुमार त्रिलोक का नूतन सवेरा।

[४६]

बनेगा यह विपश्चित वीर, योगी, ब्रह्मचारी,
करेगा यह सफल औ अमर सब विद्या हमारी,
सुरक्षित कर सुरों को शक्ति के शिव सगठन मे,
करेगा धर्म का उद्धार आतङ्कित भुवन मे,

४५—अर्थ (ये दोनों धर्म शक्ति और ज्ञान के समन्वय की शिक्षा की निरन्तर परम्परा के द्वारा सम्भव हो सकते हैं) श्रेष्ठ शिष्य को समर्पित करने से विद्या अमर हो जाती है, क्योंकि वह परम्परा बन जाती है। अब तक परशुराम को ऐसा अधिकारी शिष्य नहीं मिला, जैसा कि उन जैसे गुरु के लिए उचित था। आज पृथियी और स्वर्ग के साथ मेरा भी यह परम सौभाग्य है कि परशुराम को एक योग्य शिष्य मिला है। शिव का पुत्र कुमार स्कन्द अब विद्या प्राप्त करके विद्या के तेज से विश्व के नवीन सूर्य के समान उदित होगा तथा तीनों लोकों मे सुख शान्ति, हर्ष, सजगता, अभय आदि का नवीन प्रभात लायेगा। (विश्व का परिचित सूर्य एक ही लोक में प्रकाश करता है।

४६—अर्थ यह स्कन्द कुमार योगी और ब्रह्मचारी बनकर बुद्धिमान वीर बनेगा। यह हमारी सम्पूर्ण विद्या को सफल और अमर बनायेगा। शक्ति के मंगलपूर्ण संगठन मे देवताओं को सुरक्षित बनाकर यह स्वर्ग का उद्धार करेगा तथा असुरों के आतंक से पीड़ित पृथिवी लोक मे धर्म का उद्धार करेगा।

[४७]

इसी विध विप्र, योगी, ज्ञानियों के वंशधारी,
बनें यदि ज्ञान से युत शक्ति के निर्भय पुजारी,
कभी तो विश्व से उच्छेद होगा दानवों का,
प्रतिष्ठित धर्म होगा पुण्य सुर औ मानवों का।"

[४८]

उठी कर्कश भुजाये फड़क मुनि की, रोष आया,
प्रलय के सूर्य-सा दीपित परशु कर मे उठाया,
चले सकेत पा गुरु का सभी शिक्षाधिकारी,
चमत्कृत हो उठी कान्तार की वह प्रकृति सारी।

४७—अर्थ इसी प्रकार ब्राह्मणों, योगियों और ज्ञानियों के वंशधर यदि ज्ञान से युक्त शक्ति के निर्भय उपासक बनें, तो विश्व में कभी तो दानव कुलों का नाश हो जायेगा और तब देवताओं और मानवों का पवित्र धर्म प्रतिष्ठित होगा।

४८—अर्थ धनुष की प्रत्यंचा से कठोर मुनि की भुजायें फड़क उठीं और उनके मन में रोष बढ़ने लगा, प्रलय के सूर्य के समान दीप्त होता हुआ परशु (फरसा) उन्होंने हाथ में उठा लिया। गुरु का सकेत पाकर सभी शिक्षा के अधिकारी ब्रह्मचारी उठ खड़े हुए और आश्रम के उस सघन वन की सम्पूर्ण प्रकृति अस्त्रों से और ब्रह्मचारियों के तेज से चमत्कृत हो उठी अर्थात् चमकने, चौंकने और चकित होने लगी।

[५७]

निरख कर स्वप्न अपना वह चिरन्तन सत्य होते,
प्रहर्षित हो परशुधर आज थे कृत कृत्य होते;
रहे जो सर्वदा प्रज्वलित काल-कृशानु जैसे,
कमल वन से प्रफुल्लित हुये प्रातर्भानु जैसे।

[५८]

खिले थे शान्ति औ आह्लाद से अद्भुत विरागी,
दृगों में स्नेह-करुणा की अनोखी ज्योति जागी,
युगों से आज सुफलित भव्य मानस सृष्टि अपनी,
प्रणय से देख कर, की सफल मुनि ने दृष्टि अपनी।

५७—अर्थ चिरकाल से सोचे हुए अपने स्वप्न को सत्य होते देखकर आज परशुधारी परशुराम हृदय में हर्षित होकर अपने को कृतकृत्य मान रहे थे। जो परशुराम सदैव काल कृशानु (कालाग्नि) के समान प्रज्वलित दिखाई देते थे अर्थात् सदैव क्रोध के कारण लाल वर्ण के तथा तेज के कारण प्रकाशमान रहते थे, वे ही आज कमलों के वन से युक्त प्रातःकाल के सूर्य के समान हृदय में प्रफुल्लित दिखाई दे रहे थे।

५८—अर्थ वे अद्भुत वैरागी आज शान्ति और मन के आनन्द से प्रफुल्लित दिखाई दे रहे थे। उनके नेत्रों में स्नेह और करुणा की एक अनोखी ज्योति जग रही थी। जिस सुन्दर सृष्टि की कल्पना वे अपने मन में युगों से कर रहे थे, वह आज सुन्दर रूप में फलित हो रही थी। उसे प्रेम भाव से देखकर मुनि परशुराम ने आज अपनी दृष्टि को सफल किया।

[५९]

दिया आशीष सबको मौन अपने शान्त मन से,
हृदय का भाव दुष्कर व्यक्त करना है वचन से;
भरा था कण्ठ गद्गद्, विवश फिर भी अधर खोले,
वचन वटु वर्ग से आचार्य अन्तिम आज बोले–

[६०]

"प्रथम है आज का प्रिय वत्स ! यह अन्तिम सवेरा,
हुआ जब सत्य जीवन का चिरन्तन स्वप्न मेरा;
प्रफुल्लित आज तुमको देख कर हूँ मैं हृदय में,
मिला परमार्थ मुझको अन्तत इस वृद्ध वय में।

५९—अर्थ आज परशुराम का मन (जो सदा क्रोध से उद्विग्न रहता था) शान्त था। उन्होंने मौन भाव से और मन से सब ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद दिया। हृदय के भाव को वचन से व्यक्त करना कठिन है। प्रेम के कारण उनका कण्ठ गद्गद् हो रहा था और भरा था, किन्तु फिर भी विवश होकर उन्होंने अपने अधर खोले अर्थात् उन्होंने कुछ कहना चाहा। आज आचार्य ने ब्रह्मचारी वर्ग से आशीर्वाद और दीक्षा के अन्तिम शब्द कहे—

६०—अर्थ हे वत्स ! तुम्हारे अन्तेवास का आज यह अन्तिम प्रभात मेरे लिए वह प्रथम प्रभात है जब कि मेरा चिरकाल से सोचा हुआ जीवन का स्वप्न सत्य हुआ है। आज तुम लोगों को देखकर मेरा हृदय बहुत प्रफुल्लित है। मुझको इस वृद्धावस्था में अन्त में परमार्थ (जीवन का अन्तिम लक्ष्य) प्राप्त हुआ।

[६१]

तुम्हारा शस्त्र-विक्रम, शास्त्र-कौशल गर्व मेरा,
तुम्हारा यह सफल दीक्षान्त जय का पर्व मेरा;
हुई सम्पूर्ण मानो आज जीवन-साध मेरी,
समुत्थित धर्म ने गति शक्ति की निर्बाध हेरी।

[६२]

तुम्हारी प्रीति का कारण हुई यदि प्रीति मेरी,
विनय है, तो धरा में अमर रखना नीति मेरी;
कुमारों को धरा औ स्वर्ग के यह मन्त्र देना,
अभय से धर्म को यह श्रेय का ध्रुव तन्त्र देना।

६१—अर्थ तुम्हारा शस्त्रों का पराक्रम और शास्त्रों का कौशल मेरे लिए गर्व का विषय है। तुम्हारा यह सफल दीक्षान्त समारोह मेरे लिए विजय का पर्व है। मानो आज मेरे जीवन की सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण हो गईं। धर्म ने जाग्रत होकर आज शक्ति के निर्बाध मार्ग को आँखें खोलकर देखा है।

६२—अर्थ यदि तुम्हारे प्रति मेरी प्रीति मेरे प्रति तुम्हारी प्रीति का कारण बनी है तो मेरा तुम लोगों से इतना विनम्र निवेदन है कि तुम पृथिवी पर मेरी नीति को अमर बनाना। पृथिवी और स्वर्ग के नरपुत्रों को मेरी नीति का यह मन्त्र सिखाना और धर्म को अभय से प्राप्त होने वाला यह कल्याणकारी अटल तन्त्र देना।

[६३]

अखिल अध्यात्म का आधार केवल ज्ञान ही है,
खिलाता ज्ञान का आलोक तप औ ध्यान ही है,
सदा वह ज्ञान–दीपक ज्योति आत्मा की जगाता,
वही आनन्द का शिव पन्थ है हमको दिखाता।

[६४]

अनय के विश्व मे पर कठिन होना ज्ञान पूरा,
प्रकृति के श्लेप से प्राय रहा है वह अधूरा;
अधूरे ज्ञान मे प्राय. अह का बीज पलता,
यही अज्ञान दुर्जय ज्ञानियो को नित्य छलता।

६३—अर्थ (यह सत्य है कि) सम्पूर्ण अध्यात्म का आधार केवल ज्ञान ही है। तप और ध्यान से ही ज्ञान का प्रकाश प्रकट होता है। ज्ञान का वह दीपक सदा आत्मा के प्रकाश को प्रकट करता है। वही ज्ञान हमको आनन्द का कल्याणकारी मार्ग दिखाता है।

६४—अर्थ किन्तु इस अनीति से पूर्ण संसार में ज्ञान का पूर्ण होना कठिन है, प्रकृति के संश्लेष (लगाव) के कारण प्रायः वह ज्ञान अधूरा ही रहता है। उस अधूरे ज्ञान मे प्रायः अहंकार का बीज पलता है और इसी अधूरे ज्ञान का अज्ञान बड़े बड़े ज्ञानियों को सदा छलता रहता है।

[६५]

अहं के बीज से हो अंकुरित दो दल निकलते,
वही बन गर्व औ विद्वेष के फल-फूल फलते;
इसी से ज्ञानियों ने सदा असमय में अकेले,
असुर-उत्पात के आघात सन्तत मौन झेले।

[६६]

रहा अज्ञान ही वह ज्ञान नित उनका अभागा,
नहीं उसमें कभी शुचि स्नेह का आलोक जागा।
इसी से बन न पाया योग सज्जन-सगठन का,
अधूरा ज्ञान कारण धर्म औ नय के पतन का।

६५—अर्थ उस अधूरे ज्ञान के अहंकार के वृक्ष में से दो दल अंकुरित होते हैं, वे ही गर्व और द्वेष के फल फूल बनकर फलते हैं। इनके ही कारण ज्ञानी मनुष्यों ने सदा असमय में अकेले ही असुरों की अनीतियों के उत्पातों को मौन होकर सहन किया है।

६६—अर्थ सज्जनों का वह अभागा अर्थात् दुर्भाग्यपूर्ण (अधूरा) ज्ञान वास्तव में सर्वदा अज्ञान ही रहा। उसमें कभी भी पवित्र प्रेम का प्रकाश प्रकट नहीं हुआ और इसी कारण सज्जनों के संगठन का संयोग कभी नहीं बन सका। धर्म और नीति के पतन का कारण यह अधूरा ज्ञान ही रहा है।

[६७]

रहे जो शान्ति में उपदेश देते धर्म-नय का,
रहा जिनको सदा ही शक्ति मे सन्देह भय का,
वही लख क्रान्ति मे दुर्नय खलो का काँप उठते,
प्रवर्धित सामने उनके उन्ही के पाप उठते।

[६८]

अहिंसा सज्जनो की है उन्हे दुर्बल बनाती,
खलों की क्रूरता अपना उसे सम्बल बनाती,
तथा पलकर उसी पर, दे चुनौती धर्म-नय को,
समुद्यत दुष्ट होते विश्व के बल से विजय को।

६७—अर्थ जो महात्मा शान्ति के समय मे धर्म और नीति का उपदेश देते रहे तथा जिनको सदा ही शक्ति मे भय का संदेह रहा, वे ही क्रान्ति के समय दुष्ट अत्याचारियों की अनीति को देख कर काँप उठते थे। किन्तु उनके कृत्या वे पाप उन्ही के सामने बढ़कर प्रकट होते थे।

६८—अर्थ सज्जनों की अहिंसा उन्हें दुर्बल बनाती है और उनकी इस अहिंसा से पोषित होकर दुष्टों की क्रूरता बढ़ती है। उसी अहिंसा पर पलकर अत्याचारी दुष्ट धर्म और नीति को चुनौती देकर अर्थात् उसकी उपेक्षा करके बल के द्वारा विश्व पर विजय प्राप्त करने लिए उद्यत होते हैं।

[६९]

सदा रहते असुर के कोप से भयभीत ज्ञानी,
सदा विक्षिप्त रहते योग क्रम मे त्रस्त ध्यानी,
अभय ही धर्म का आधार ध्रुव जग में बनेगा,
समन्वय शक्ति का ही सुगति शिव-मग में बनेगा।

[७०]

अहिंसा की मृदुलता सदा दुर्बलता कहाती,
असुर के अनय का उत्साह वह दूना बढाती,
विजय का फल तथा उपभोग काम-विलास-धन का,
भयकर रज्जु दृढ बनता असुर के सगठन का।

६९—अर्थ ज्ञानी जन सदैव ही असुरो के कोप से भयभीत रहते हैं योग-क्रम मे लगे हुये ध्यानी जन भी असुरों के उत्पातों से त्रस्त (पीड़ित) होकर विक्षिप्त (अशान्त) रहते हैं। अभय ही संसार मे धर्म का दृढ आधार बनेगा। धर्म ज्ञान के साथ शक्ति का समन्वय ही कल्याण के मार्ग मे अच्छी गति का साधन बनेगा।

७०—अर्थ सज्जनों की अहिंसा की कोमलता उनकी दुर्बलता ही कहलाती है। वह कोमलता असुरों की अनीति और उत्साह को दूना बढ़ाती है। इस उत्साह से असुरों को विजय मिलती है। इस विजय का फल उन्हें बहुत से लाभ प्रदान करता है। इनमें काम के विलास और धन का उपभोग मुख्य है। विजय के ये लाभ असुरो के संगठन का दृढ और भयंकर रज्जु बनते हैं। (इनके आधार पर असुरो का दृढ संगठन बन जाता है।)

[७१]

विजय - उत्साह से हो उग्र और उद्दण्ड दूना,
प्रकृति - सेवी असुर बनता तमोनय का नमूना,
प्रकृति के भोग मे पशु भी सदा एकान्त वासी,
असुर बनता विकृति से प्रकृति का अद्‌भुत विलासी।

[७२]

न पशु का भोग उच्छृखल तथा आतक बनता,
किसी का क्लेश और समाज का न कलक बनता,
न करता पशु परिग्रह भी अनय के हेतु धन का,
न लेता काम पशु का रूप निर्दय आक्रमण का।

७१—अर्थ विजय के उत्साह से असुर दूना उग्र और उदण्ड बन जाता हैं। प्रकृति का सेवन (उपभोग) करने वाला असुर तामसिक अनीति का नमूना (आदर्श) बन जाता है। प्रकृति के भोग में पशु भी सदा अकेला रहता है अर्थात् वह एकान्त-भाव में अकेला ही प्रकृति का उपभोग करता है। किन्तु असुर विकृत से प्रकृति का अद्‌भुत रूप में विलास करता है।

७२—अर्थ पशु का भोग उच्छृखल अर्थात् मर्यादाहीन नहीं होता और न उसका भोग आतंक का कारण बनता है; वह किसी के लिए क्लेश का कारण नहीं बनता और न पशु का भोग अपने समाज में कलक का कारण बनता है। पशु अनीति के लिये धन का सग्रह भी नहीं करता और न पशु की कामवृत्ति निर्दय आक्रमण का रूप ग्रहण करती है अर्थात् पशु प्राकृतिक धर्मों का निर्वाह शान्ति और मर्यादापूर्वक करते हैं।

[७३]

मनुज का धर्म औ नय व्यक्ति की ही साधना है,
अहिंसा भी हृदयगत व्यक्ति की ही भावना है,
अनय के सगठन में लुप्त होते बुद्धि उर हैं,
अत पशु से अधिक दुर्बोध्य हो जाते असुर हैं।

[७४]

अत. करते प्रभावित व्यक्ति के ही शुचि हृदय को,
अहिंसा-प्रेम के आग्रह सफल कर धर्म-नय को,
असुर दल पर अहिंसा का प्रभाव न धर्म नय का
कभी होता, असुर दल जानता बस अर्थ भय का।

७३—अर्थ मनुष्य का धर्म और आचार व्यक्ति की ही साधना है। अहिंसा भी मनुष्य के हृदय से उत्पन्न व्यक्ति की ही भावना है। अनीति के संगठन में बुद्धि और हृदय की भावना लुप्त हो जाती है, इसीलिए असुर पशुओं से भी अधिक क्रूर हो जाते हैं तथा उनको समझाना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

७४—अर्थ (संगठित असुरों पर अहिंसा के उपदेश का प्रभाव नहीं होता) अहिंसा और प्रेम के उपदेश शुद्ध हृदय व्यक्तियों को ही प्रभावित करते हैं। इस प्रभाव से धर्म और नीति सफल हो जाते हैं। किन्तु असुरों के सगठित दल पर अहिंसा, धर्म और नीति के उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं होता। असुरों का समूह केवल भय का अर्थ जानता है। वह बलवान् की शक्ति के भय से ही प्रभावित होता है।

[७५]

सही है यह, असुर के भी हृदय औ भाव होते,
प्रियों के दुख उनके मर्म में बन घाव रोते,
असुर-दल मे दया औ मान का व्यवहार होता,
असुर का भी विनय औ प्रीति का ससार होता।

[७६]

सही है, किन्तु यह सब वर्ग तक सीमित रहा है,
असुर का प्रेम औ सद्‌भाव सबके हित कहाँ है ?
नरों को औ सुरों को कब असुर ने जीव माना,
अनय की यातना का मर्म दानव ने न जाना

७५—अर्थ यह सही है कि असुरों के भी हृदय होता है और मन में भाव भी होते हैं। अपने प्रियजनों के दुःख उनके मर्म को भी प्रभावित करते हैं। उनके दुःख से द्रवित होकर वे भी करुणा से रोते हैं। असुर-दल में भी दया और परस्पर सम्मान का व्यवहार होता है। असुरों का भी विनय और प्रीति का ससार होता है।

७६—अर्थ यह सब सत्य है कि असुरों में भी दया, प्रेम, मान आदि होते हैं, किन्तु वे सब अपने वर्ग तक ही सीमित रहते हैं। असुरों का प्रेम और सद्‌भाव सब के लिए नहीं है, असुरों ने मनुष्यों और देवताओं को प्राणधारी कभी नहीं माना है तथा इसका अनुभव नहीं किया कि उनके भी प्राणों में पीड़ा होती है। दूसरों के साथ वे जो अनीति करते हैं, उस अनीति की यातना (पीड़ा) का जो मर्म अर्थात् उसकी वेदना को दानवों ने कभी नहीं जाना।

[७७]

हुआ होगा असुर अपवाद - सा कोई अकेला,
भयंकर घात जिसका यदि विनय के साथ झेला
किसी नर साधु ने, तो द्रवित हो उसके अभय से,
धरा होगा चरण पर शीष संतापित हृदय - से।

[७८]

इसी अपवाद को ले नीति के निष्ठुर प्रणेता,
बताकर शील-नय को असुर के उर का विजेता,
रहे इस धर्म-भीरु समाज को सन्तत भुलाते,
विजयिनी शक्ति को उसकी रहे भ्रम से सुलाते।

७७—अर्थ ऐसा अपवाद रूप में कोई एक असुर हुआ होगा, जिसका भयंकर घात किसी साधु (सज्जन) मनुष्य ने यदि विनय के साथ सहा हो, तो उसका (असुर) हृदय उस साधु की निर्भयता से द्रवित हो गया हो और उसने उन साधु के चरणों पर दुःखी हृदय से अपना शीष रक्खा हो।

७८—अर्थ मानवीय सदाचार के निर्दय निर्माता इसी एक अपवाद को लेकर शील और सदाचार को असुरों के हृदय को जीतने वाला बताने लगे तथा इस धर्म-भीरु समाज को ऐसे अपवाद के उदाहरण देकर अहिंसा के चमत्कार के सपनों में भुलाते रहे और उनमें विजय प्राप्त करने की जो शक्ति थी, उसे ऐसे ही भ्रम में सुलाते रहे अर्थात् उस शक्ति को जागरण का अवसर नहीं दिया।

[७९]

उन्हीं को पूजता भगवान कर संसार भोला,
कभी जीवन-कसौटी पर न उनका तत्व तोला,
अनोखी शक्ति से तप-त्याग की सब अनय सहता,
युगों से धर्म-धारा में रहा तृण-तुल्य बहता ।

[८०]

लिये संग्राम में नर-रक्त से रंजित पताका,
विरचती खड्ग से इतिहास का रुधिराक्त साका,
विजयिनी भी असुर की कौनसी उन्मत्त सेना,
कभी समझी दया में जीत कर ही छोड़ देना ।

७९—अर्थ उन्हीं आचार्यों को यह भोला संसार भगवान मानकर पूजता आ रहा है । इस भोले समाज ने उनके तत्व को कभी जीवन की कसौटी पर नहीं तोला । यह मनुष्य समाज तप-त्याग की अनोखी शक्ति से सब अनीति को सहता आ रहा है और युगों से धर्म की धारा में तिनके के समान बहता आ रहा है ।

८०—अर्थ संग्राम में मनुष्यों के रक्त से रंगी हुई पताका लेकर घूमती हुई तथा तलवार से इतिहास के रुधिर-रंजित युद्ध का चित्रण रचती हुई असुरों की कौनसी विजयिनी सेना रक्तपात की कल्पना से द्रवित होकर किसी देश या समाज को केवल पराजित करके ही सन्तुष्ट बनी गई ।

[८१]

असुर की वाहिनी के ये प्रचण्ड नृशंस नेता,
रुधिर संग्राम के दुर्दान्त ये गर्वित विजेता,
दया से हो द्रवित लौटे कभी हो तृप्त जय से ?
कभी शासन किया जित देश के ऊपर हृदय से ?

[८२]

रहे नेता सदा ही दानवों के कामचारी,
रही उनके भयन से मही कम्पित भीत सारी,
बलाधिप और सैनिक रहे उनके घोर आगे,
युगों से मौन अत्याचार सहते नर अभागे ।

८१—अर्थ रक्त-रंजित संग्राम के कठोर और अभिमानी विजेता, असुरों की सेना के ये प्रचंड और निर्दयी नेता कभी विजय से तृप्त होकर तथा हृदय में दया से द्रवित होकर लौटे हैं ? विजय प्राप्त करने के बाद क्या कभी इन असुरों के विजयी नेताओं ने उस देश का शासन हृदय (प्रेम) से किया है ।

८२—अर्थ दानवों के नेता सदा स्वेच्छाचारी रहे हैं और उनकी क्रूरता से यह सारी पृथिवी कंपित ही रही है । उनके सेनापति और सैनिक उनसे भी बढ़कर होते हैं; इसीलिए अभागे मनुष्य युगों से दानवों के अत्याचार मौन रहकर सहते आ रहे हैं ।

[८३]

पराजित देवता उनसे हुये हैं बार कितनी !
बहाई मानवों ने है रुधिर की धार कितनी !
सदा देते रहे बलि मान अथवा प्राण की वे,
रहे बस बात करते सर्वदा बलिदान की वे।

[८४]

रहे रतिलास से सुर स्वयं को निर्बल बनाते,
रहे नर दीन दुर्बल धर्म के बस गीत गाते,
किसी ने भी उठाकर सिंह शावक-सी न छाती,
सुनाई जागरण की शक्ति से गर्जित प्रभाती।

८३—अर्थ देवता उनसे (दानवों से) कितनी बार पराजित होते रहे हैं मानवों ने अपने रक्त की न जाने कितनी धाराये बहाई हैं। मनुष्य सदा मान अथवा प्राण की बलि देते रहे हैं और सदा केवल बलिदान की ही बातें करते रहे हैं। (शक्ति के संगठन और अनीति के प्रतिकार का प्रयत्न उन्होंने कभी नहीं किया।)

८४—अर्थ देवता अपने को भोग-विलास से निर्बल बनाते रहे। दीन और दुर्बल नर धर्म के केवल गीत गाते रहे। उनमें से किसी ने भी सिंह-शावक की सी वीर छाती उठाकर शक्ति के जागरण की गर्जित प्रभाती कभी नहीं सुनाई।

[८५]

रहे बस देवता विधि, विष्णु और शिव को मनाते,
रहे नर सर्वदा भगवान से आशा लगाते,
स्वयं भगवान का वर मान नर-कल्पित वचन को,
रहे भगवान पर निर्भर असुरदल के दलन को।

[८६]

असुर के नाश के हित रहे केवल होम करते,
न अपना शक्ति से जाग्रत अकंपित रोम करते,
हवन में नारियों की लाज की आहुति चढ़ाते,
रहे मुख-पाठ से दुर्गा तथा काली मनाते।

८५—अर्थ देवता केवल ब्रह्मा, विष्णु और महेश को मनाते रहे। मनुष्य सदा भगवान से ही आशा लगाते रहे कि वे अवतार लेकर असुरों का नाश करें। मनुष्य के कल्पित वचन को भगवान का वचन मानकर मनुष्य भगवान पर ही निर्भर रहे कि अवतार लेकर असुर-दलों का संहार वे (भगवान) ही करेंगे।

८६—अर्थ सज्जन मनुष्य असुरों के नाश के लिए केवल होम करते रहे, उन्होंने शक्ति के जागरण के लिए अपना रोम भी नहीं हिलाया अर्थात् कोई उद्योग नहीं किया। वे हवन में स्त्रियों की लाज की आहुति चढ़ाते रहे, किन्तु मुख से पाठ करके दुर्गा और काली को मनाते रहे। (उन्होंने स्त्रियों की रक्षा के लिए वास्तविक शक्ति की साधना नहीं की।)

[८७]

न जाना धर्म का भी मर्म मन में दीन अपने,
रहे बस देखते भगवान के रंगीन सपने,
निरर्थक मन्दिरों में दीप धर घण्टा बजाते,
भजन कर, भ्रान्त मन में, रहे प्रभु के गीत गाते।

[८८]

नहीं भगवान कोई क्षीरनिधि में शान्त सोता,
नहीं आकाश से भगवान का अवतार होता,
सदा भगवान का आवास है नर के हृदय में,
सदा अवतार उनका शक्ति के जाग्रत उदय में।

८७—अर्थ सज्जनों ने अपने दीन मन में धर्म का भी मर्म नहीं जाना, वे तो भगवान के रंगीन सपने देखते रहे कि कभी तो भगवान सुनेंगे ही और इसी आशा को लेकर मन्दिरों में निरर्थक ही दीपक रखकर घंटा बजाते रहे तथा (भगवान का) भजन करके अपने भ्रान्तिपूर्ण मन में प्रभु का गुणगान करते रहे।

८८—अर्थ भगवान किसी क्षीरसागर में शान्ति से नहीं सोता है और न आकाश से भगवान का अवतार होता है। भगवान का आवास तो सदा मनुष्य के हृदय में है। जहाँ शक्ति सजग होकर उदित होती है, वहीं भगवान का अवतार होता है।

[८९]

हृदय में सर्व भूतो के सदा भगवान रहते,
सभी श्रुति शास्त्र वारम्वार पूर्ण-प्रमाण कहते,
रहे क्यो धर्म के आटोप में सन्तत ठगाते ?
हृदय मे क्यो नही भगवान को अपने जगाते ?

[९०]

अखिल ऐश्वर्य युत सौन्दर्य करुणा शील नय का,
अपरिमित शक्ति वल के एक आत्मा में उदय का,
सदा व्यवहार - सज्ञा - मात्र है भगवान होता,
सभी के हृदय-क्षीरधि मे वही भगवान सोता।

८९—अर्थ सब जीवों के हृदय मे सदा भगवान रहते हैं। यह बात पूर्ण-प्रमाण वाले सभी श्रुति-शास्त्र वार-बार कहते हैं। फिर न जाने मनुष्य धर्म के आडम्बर में क्यों अपने को सदा ठगाते रहे ? उन्होंने भगवान को अपने हृदय मे क्यों नहीं जगाया ?

९०—अर्थ जिस आत्मा में सम्पूर्ण ऐश्वर्य के सहित सौन्दर्य, करुणा, शील, नय तथा अपरिमित शक्ति-बल का उदय हो जाता है, उसी को सदा व्यवहार मे भगवान की संज्ञा (नाम) दे दी जाती है। भगवान तो सबके हृदय रूपी क्षीरसागर मे सोता रहता है, उसे जगाने की आवश्यकता होती है।

[९१]

कभी इन भूतियो का यदि परम विस्तार होता,
किसी के सजग उर मे तो वही अवतार होता,
यही भगवान युग युग मे नये अवतार धरता,
विजय कर दानवों को, धर्म का उद्धार करता ।

[९२]

अत आदर्श जीवन मे सदा भगवान नर का,
उसी की साधना है धर्म शाश्वत मनुज वर का,
बने भगवत्व के साधक सभी नर और नारी,
अयुत भगवान से परिपूर्ण हो अवनी हमारी।

९१—अर्थ यदि इन विभूतियों का किसी सजग व्यक्ति के हृदय में अधिकतम विस्तार हो जाता है, तो उसी को अवतार समझना चाहिए। युग-युग मे यही भगवान नये अवतार लेता है और यही भगवान दानवों पर विजय प्राप्त करके धर्म का उद्धार करता है।

९२—अर्थ अतः भगवान सदा मनुष्य के जीवन का आदर्श है। श्रेष्ठ मनुष्यों का सनातन धर्म उसी की साधना है। सभी नर और नारी भगवान के उन श्रेष्ठ गुणों के साधक बनें और यह हमारी पृथिवी असंख्य भगवानों से पूर्ण हो जाय।

[९३]

सुरों के मार्ग दर्शक हो मनुज धर्माधिकारी,
समन्वित शक्ति दोनों की बनेगी अभयकारी,
समर मे कर पराजित दानवो के दृप्त दल को,
प्रमाणित कर सकेंगे धर्म-नय के शक्ति-बल को।

[९४]

नही होती समर से धर्म की यद्यपि प्रतिष्ठा
नही होती रुधिर से दानवो को धर्म निष्ठा,
समर अनिवार्य करता अनय बर्बर दानवो का
अत. उपयोग उसका इष्ट सुर औ मानवो का।

९३—अर्थ जो मनुष्य स्वर्ग और देवपद की कामना करते रहे हैं, वे धर्म के अधिकारी मनुष्य देवताओं के मार्ग दर्शक बनें। मनुष्य और देवता दोनों की समन्वित शक्ति अभयकारी बनेगी। वे युद्ध मे दानवों के दर्प युक्त समूह को पराजित करके धर्म-नीति के शक्ति बल को प्रमाणित कर सकेंगे।

९४—अर्थ यद्यपि धर्म की प्रतिष्ठा युद्ध से नहीं होती है और दानवों में धर्मनिष्ठा उत्पन्न नहीं की जा सकती। किन्तु रक्तपात के द्वारा बर्बर दानवों की अनीति और नृशंसता ही युद्ध को अनिवार्य बनाती है। अतः अनिवार्य होने के कारण देवताओं और मानवों को युद्ध का उपयोग करना आवश्यक है।

[६५]

विनय से चाहते हैं जो असुर को सुर बनाना,
कुसुम से चाहते वे पर्वतों में पुर बनाना,
चढ़ा बलि धर्मशीलों की सदा ये धर्मधारी,
बने रहते अहिंसा शान्ति के पूजित पुजारी।

[६६]

कभी जाकर न असुरों के सुरक्षित रुधिर पुर में,
जगाया धर्म का आलोक उनके अन्ध उर में,
रहे बस निर्बलों को ही सदा निर्बल बनाते,
उन्हीं की भक्ति में यश-पर्व बस अपना मनाते।

६५—अर्थ जो विनय से असुरों को सुर बनाना चाहते हैं, वे कुसुम से पर्वतों पर पुर बनाना चाहते हैं। पर्वतों पर पुर (नगर) कुसुम से नहीं लोहे से ही बन सकते हैं, उसी प्रकार असुरों का हृदय परिवर्तन शक्ति या बल से ही कराया जा सकता है। विनय से असुरों का हृदय-परिवर्तन करने वाले धर्म के आचार्य धर्मात्माओं की बलि चढ़ा कर ही सदा शान्ति और अहिंसा के पूजित पुजारी बने रहते हैं।

६६—अर्थ उन धर्माचार्यों ने असुरों के सुरक्षित रुधिरपुर (शोणितपुर) में जाकर उनके अन्धकार युक्त हृदय में धर्म का प्रकाश कभी नहीं जगाया। वे सदा निर्बलों को ही अहिंसा का उपदेश देकर और निर्बल बनाते रहे तथा उन्हीं की श्रद्धा में अपना यश-पर्व मनाते रहे।

[९७]

नहीं है पाप कोई शक्ति की आराधना में,
सदा है पाप औरों के अहित की साधना में,
अहित है पर अरक्षा भी स्वय के धर्म हित की,
अत: है पाप ही यह धर्म-चर्या बल-रहित की।

[९८]

सुरक्षित शक्ति से ही धर्म चिर कल्याणकारी,
अरक्षित धर्म बनता पाप-छल से छद्मचारी,
फिरेगा शक्ति से ही धर्म का ध्रुव चक्र आगे,
मिटेंगे या तजेंगे अनय सब दानव अभागे।

९७—अर्थ शक्ति की आराधना में कोई पाप नहीं है। पाप तो सदा दूसरे के अहित की साधना में होता है। अपने धर्म के हित की रक्षा न करना भी अहितकारी है। अतः बल रहित की यह धर्म-चर्या भी पाप ही है।

९८—अर्थ शक्ति से सुरक्षित होकर ही धर्म सनातन कल्याणकारी हो सकता है। जो धर्म शक्ति से सुरक्षित नहीं होता, उस अरक्षित धर्म में पाप और छल प्रवेश कर जाते हैं तथा उस धर्म का आचार छद्म (छल) से पूर्ण बन जाता है। जब धर्म के रथ का चक्र शक्ति से ही स्थायीरूप से आगे फिरेगा अर्थात् धर्म की प्रगति होगी, तभी ये अभागे दानव या तो अपनी अनीति को त्याग देंगे या स्वयं नष्ट हो जायेंगे।

[९९]

सदा दृढ लौह से ही लौह का जड पिंड कटता,
शिला का जड़ हृदय पा वाण का आघात फटता,
पिघलता लौह बस उत्तप्त हो भीषण अनल से,
असुर होता पराजित है सदा निर्भीत बल से।

[१००]

नही यदि शक्ति से हम दानवों का अन्त करते,
रहेंगे तो सदा ही धर्मचारी व्यर्थ मरते,
बढाती और भी हिंसा अहिंसा यदि हमारी,
उचित है तो बनें हम शक्ति के निर्भय पुजारी।

९९—अर्थ लोहे का अचेतन टुकड़ा सदा दृढ़ लोहे से ही कटता है। पत्थर की शिलाओं का जड़ हृदय बाण के आघात से ही विदीर्ण होता है। लोहा भयंकर अग्नि में तपकर ही पिघलता है, इसी प्रकार असुर सदा निर्भय बल से ही परास्त हो सकता है।

१००—अर्थ यदि शक्ति के संगठन से हम दानवों का अन्त नहीं करेंगे तो धर्मात्मा सज्जन मनुष्य सदा इसी प्रकार के हाथों निरपराध मरते रहेंगे। यदि हमारी यह अहिंसा और अधिक हिंसा बढ़ाती है, तो हमें चाहिए कि हम शक्ति के निर्भय पुजारी बन जायें।

[१०१]

सदा उपयोग होगा ज्ञान से बल का हमारे,
रहेंगे शक्तिधारा के सदा श्री-शिव किनारे,
हमारा ध्येय बस आतंक का उच्छेद होगा।
बढ़ेगा धर्म क्या, जब तक न वह निश्शंक होगा।

[१०२]

रहे जो नाम से भगवान के जग को भुलाते,
वही यदि धर्म में शिवशक्ति की निष्ठा जगाते,
नहीं इतिहास में इतने पतन के पर्व होते,
नहीं सुर-नर पतित किन्नर तथा गन्धर्व होते।

१०१—अर्थ हमारी शक्ति का उपयोग भी सदा ज्ञान पूर्वक होगा और हमारी शिव शक्ति रूपी दो किनारों की मर्यादा में मारी शक्तिधारा का प्रवाह होगा। असुरों की भाँति अन्धा शक्ति का प्रयोग नहीं होगा। हमारी शक्ति का ध्येय केवल असुरों के आतंक को नष्ट करने का होगा। जब तक धर्म के पालन में निर्भयता का अनुभव नहीं होगा, तब तक धर्म की उन्नति नहीं हो सकती।

१०२—अर्थ जो लोग भगवान का नाम लेकर संसार को भुलाते रहे, वे ही यदि धर्म में शिव और शक्ति की निष्ठा को जगाते, तो मनुष्य के इतिहास में पतन की इतनी घटनायें न होतीं, तथा अनेकों सुर नर पतित होकर किन्नर और गन्धर्व नहीं बनते।

[१०३]

सदा शिव शक्ति मे निस्सीम निर्भय त्याग होगा,
नही कादर्य का कारण विषय अनुराग होगा,
असुर का बल न रखता त्याग की वह शक्ति क्षमता,
अत शिव शक्ति के वह कर न सकता साथ समता।

[१०४]

अत. होकर सजग बस एकदा शिव शक्ति बल से,
सुसज्जित सगठित हो सुर-नरो के सघ दल से,
करे आह्वान असुरो का समर मे यदि अभय हो,
सदा को धर्म, नय औ सत्य की शाश्वत विजय हो।

१०३—अर्थ हमारी कल्याणमयी शक्ति में सदा असीम निर्भयता तथा त्याग होगा। विषयों का अनुराग कायरता का कारण नहीं बनेगा। असुर के बल में त्याग की वह शक्ति नहीं होगी, इसलिए वह त्यागमयी कल्याणकारी शक्ति के साथ समता नहीं कर सकता अर्थात असुरशक्ति शिव शक्ति का सामना नहीं कर सकेगी।

१०४—अर्थ अतः यदि सचेतन होकर एक बार कल्याणमयी शक्ति के बल से सज्जित और संगठित होकर सुर और नरों के समूह निर्भय होकर असुरों को युद्ध के लिए पुकारें, तो सर्वदा के लिए धर्म, नीति तथा सत्य की सनातन विजय होगी।

[१०५]

यही सन्देश लेकर विश्व में तुम वीर जाओ,
धरा के ज्ञानियों मे शक्ति का साधन जगाओ,
इसी उद्योग से जग मे अनय का नाश होगा,
तभी निर्भय धरा पर धर्म का सुप्रकाश होगा।

[१०६]

सदा बन शक्ति के सैनिक, दलन कर दानवो का,
मिटाना खेद औ भय तुम सुरो औ मानवो का,
यही आशीष अन्तिम आज तुमको वत्स ! मेरा
मिटाना ज्ञान-बल से विश्व का दुर्नय-अँधेरा।

१०५—अर्थ हे वीर ! तुम विश्व मे मेरा यही सन्देश लेकर जाओ, और इस पृथिवी के ज्ञानियों में शक्ति के संगठन का ज्ञान जाग्रत करो। संसार मे शक्ति के इसी उद्योग से अनीति का नाश होगा और तभी पृथिवी पर धर्म का स्वच्छ प्रकाश उदित होगा।

१०६—अर्थ तुम लोग शक्ति के सैनिक बनकर सदा दानवों का नाश करना और उससे देवताओं तथा मनुष्यों का दुःख और भय दूर करना। हे वत्स ! मेरा आज यही अन्तिम आशीर्वाद है कि तुम ज्ञान के बल से विश्व का अनीति रूपी अँधेरा मिटा देना और प्रसन्नता तथा शक्ति का प्रकाश फैलाना।

[१०७]

रहे शिव-ज्ञान की निष्ठा तुम्हारे दृढ़ हृदय में,
प्रतिष्ठित शक्ति-बल तुमको करे शाश्वत अभय में।
तुम्हारे शौर्य से यह धर्म की धरणी अभय हो,
सदा ही धर्म के रण में तुम्हारी पूर्ण जय हो।"

[१०८]

वचन आचार्य के धर कर सचेतन युवक मन में,
झुका कर सिर विनय पूर्वक महामुनि के चरण में,
चले निज निज गृहों का वीर दीक्षित वटुक सारे,
धरा के उन्नयन का हृदय में उत्साह धारे।

१०७—अर्थ तुम्हारे दृढ़ हृदय में कल्याणपूर्ण ज्ञान की निष्ठा सदा रहे, शक्ति और बल तुमको सनातन अभय में प्रतिष्ठित करें। तुम्हारे पराक्रम से यह धर्म की धरती निर्भय बने और धर्म के युद्ध क्षेत्र में सदा तुम्हारी पूर्ण विजय हो।"

१०८—अर्थ आचार्य परशुराम के वचनों को मन में ग्रहण करके तथा उन महामुनि के चरणों में विनय पूर्वक सिर झुकाकर, अपने हृदय में पृथिवी के उद्धार का उत्साह लेकर, वे सचेतन युवक ब्रह्मचारी दीक्षा ग्रहण कर अपने-अपने घर के लिए चल दिये।

सर्ग २

देवोद्बोधन

समावर्त्तन के बाद देवताओं के सेनापति नियुक्त
होने पर देव-सेनानी कुमार कार्त्तिकेय का
देवताओं के प्रति जागरण और
शक्तिसाधना का सन्देश।

[१]

शिक्षा पूरी कर कुमार निज गृह को आये,
फिर सूने कैलाश कूट पर उत्सव छाये,
जीवन का सवेग नया-सा गिरि ने पाया,
बनकर हर्षालोक अपरिमित मुख पर छाया।

[२]

देख पुत्र को उमा हर्ष से उर मे फूली,
शिक्षा का सब खेद मिलन के सुख में भूली,
दे सौ सौ आशीष एक ही गद्गद् स्वर से,
चरणो पर से उन्हे उठाया पुलकित कर से।

१—अर्थ कुमार कार्तिकेय अपनी शिक्षा को पूर्ण करके गुरु के यहाँ से जब अपने घर को आये; तब उस कैलाश पर्वत पर, जो कुमार के चले जाने के बाद सूना हो गया था, कुमार के आ जाने के कारण सबके हृदयों में एक नई उमंग-सी आ गई, प्रसन्नता के कारण उत्सव होने लगे अर्थात् उस सूने पर्वत पर चहल-पहल होने लगी। उदासीनता के कारण जो पर्वत अभी तक सूना-सा लगता था, उस पर्वत पर एक नवीन जीवन की गति आ गई। जीवन के नये वेग (गति) का हर्ष अपार आलोक बनकर पर्वत के मुख पर (तथा कैलाश वासियों के मुख पर) छा गया (हर्ष से मुख पर चमक आ जाती है।)

२—अर्थ पुत्र को लौटकर आता हुआ देखकर माता उमा अपने हृदय में बहुत प्रसन्न हुईं और शिक्षा के लिये गये हुए पुत्र के वियोग का जो दुःख था, उसको पुत्र के मिलने के सुख में भूल गईं। पुत्र ने आते ही माता के चरण छुए, उस समय प्रसन्न भाव से हर्षित होकर एक ही स्वर में सौ-सौ आशीर्वाद देकर माता ने पुत्र को शीघ्र ही चरणों पर से उठा लिया।

[३]

और बाहुओं में भर उसको अंक लगाया,
अन्तर का वात्सल्य उमड़ आँखों में आया,
बार बार भर अंक स्नेह से चूमा मुख को,
कौन जानता माता के अन्तर के सुख को !

[४]

निज चरणों में प्रणत पुत्र को उत्सुक कर से
उठा, बिठाया शिव से निज समीप आदर से,
और स्नेह से शिक्षा तथा वीर भृगुपति का,
पूछा क्रमश वृत्त कठिन आश्रम की गति का,

३—अर्थ पुत्र को चरणों पर से उठाकर माता पार्वती ने उसे बाहुओं में भरकर हृदय से लगा लिया और उनके हृदय का जो प्रेम (वात्सल्य) था, वह आँखों में आँसू बनकर उमड़ पड़ा पुत्र को बार-बार गोद में भरकर प्रेम से उसके मुख को चूम लिया। उनके हृदय में प्रेम का अनिर्वचनीयभाव उठ रहे थे। माता के हृदय के सुख को कौन जान सकता है?

४—अर्थ माता से मिलने के बाद कुमार अपने पिता शिव के पास पहुँचे और उनके भी चरणों का स्पर्श करने के लिए चरणों में झुके, तब शिव ने भी प्रसन्न भाव से पुत्र को चरणों पर से उठाया और आदर के साथ अपने पास बैठा लिया। तब शिव ने क्रमशः शिक्षा का तथा वीर परशुराम जी का तथा उनके आश्रम की कठिन गति के समाचार पूछे।

[५]

था अपूर्व आनन्द उमा औ शिव के मन में,
मानों पाया पुत्र दूसरा इस जीवन में,
मग्न मातृकायें ममता के स्रोत बहातीं,
कर सुत का सत्कार न फूली हृदय समातीं।

[६]

छाया था आनन्द-पर्व-सा फिर गिरिवन में,
था अपूर्व उल्लास सभी स्वजनों के मन में,
दूर दूर से समाचार सुनकर नर नारी,
आये दर्शन को कुमार के कर श्रम भारी।

५—अर्थ उमा और शिव के मन में पुत्र को देखकर एक अपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा था, मानो जीवन में उन्होंने दूसरा पुत्र पाया हो। सप्त मातृकायें (देवियाँ) जो कुमार की मातामही के समान थीं, आनन्द में विभोर हो रहीं थीं और उनके हृदय में ममता के स्रोत बह रहे थे, (उनकी आँखों में प्रेम और आनन्द के आँसू छलक रहे थे।) मातृकायें पुत्र का आदर करके अपने हृदय में हर्ष से फूली नहीं समा रही थीं।

६—अर्थ उस पर्वत के वन में कुमार के आ जाने से फिर एक नवीन आनन्द का उत्सव-सा छाया हुआ था (पहले एक बार कुमार के जन्म के समय कैलाश पर्वत पर आनन्द का उत्सव हुआ था) और सभी आत्मीय जनों के मन में हर्ष का अपूर्व (जो पहले नहीं हुआ था) उल्लास भरा हुआ था। कुमार के आगमन का समाचार पाकर दूर-दूर से स्त्री-पुरुष उनके दर्शन की अभिलाषा से बड़ा परिश्रम उठाकर उस पर्वत पर आ रहे थे। (पर्वत प्रदेश में यात्रा कठिन होती है)

[७]

हो होकर निज भवन भेंट कर बन्धुजनो को,
आश्वासित कर स्वजनों के सन्दिग्ध मनो को,
वे कुमार के सखा वटुक भी सारे आये:
उमा - शम्भु ने पुत्र अनेको मानों पाये।

[८]

समाचार सुन गन्धर्वों से सुरपुर वासी,
हुये प्रफुल्लित, दूर हुई सब ग्लानि उदासी
चढ विमान औ दिव्य वाहनों पर सब धाये,
मनोवेग से श्रीशिवपुर मे वे सब आये।

७—अर्थ कुमार के सखा वटुक भी अपने अपने घर होकर अपने बन्धुजनों से भेंट करके तथा अपने आत्मीय जनों के संदिग्ध हृदयों को आश्वासन देकर कुमार के पास कैलास पर्वत पर आ गये। उस समय शिव-पार्वती को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उनको अनेकों पुत्र प्राप्त हुए हों।

८—अर्थ स्वर्ग के वासी देवताओं ने जब गन्धर्वों से यह समाचार सुना कि कुमार शिक्षा पूर्ण करके घर आ गये हैं, तब उनके मन प्रसन्नता से खिल उठे और उनकी पराजय की ग्लानि तथा उदासी सब मिट गई। सब देवता विमानों और दिव्य वाहनों पर चढ़ चढ़ कर श्रीशिवपुर में इतनी शीघ्रता से आ गये कि मानों उनके विमान मन की गति के साथ आये हों। (मन की गति संसार में सबसे तेज है।)

[९]

सबका स्वागत किया द्वार पर नन्दीश्वर ने,
सबको आदर दिया प्रेम से जगदीश्वर ने,
इन्द्र, वरुण, गुरु, सूर्य चन्द्र, सब आलोकित थे,
किस अपूर्व आभा से सबके मुख द्योतित थे।

[१०]

सबने किया प्रणाम स्कन्द को लखकर आते,
सिंह वक्ष से, औ गति से गजराज लजाते,
वृषभ-स्कन्ध की गति-विधि से गर्वित अभिमानी,
हुये देवता हृष्ट देख अपना सेनानी।

९—अर्थ शिव के द्वारपाल नन्दीगण ने द्वार पर बड़े प्रेम से देवताओं का स्वागत-सत्कार किया और फिर जगत के ईश्वर शिव ने प्रेम से सब देवताओं को आदर दिया। इन्द्र, वरुण, गुरु, सूर्य, चन्द्र आदि देवताओं के मुख हर्ष के उल्लास से आलोकित हो रहे थे। उनकी आत्मा में एक अपूर्व (जो पहले नहीं थी) ज्योति जाग उठी थी और उस ज्योति की आभा से उनके मुख दीप्त हो रहे थे।

१०—अर्थ स्कन्द कुमार को आते देखकर सब देवताओं ने उनको प्रणाम किया। उनके सिंह के समान वक्षस्थल से तथा गति से गजराज भी लजा रहे थे। वृषभ के समान कन्धों की चाल-ढाल से गर्व युक्त और अभिमान युक्त अपने सेनानी (सेनापति) को देखकर सभी देवता हृदय में बड़े प्रसन्न हुए।

[११]

फूट रहा था तेज दृगों से औ आनन से,
वाल सूर्य हो रहा विलज्जित रक्त वदन से,
भुज दण्डों मे उमड रही थी वल की धारा,
मिला विश्व के अखिल ओज को विग्रह न्यारा।

[१२]

सव को किया प्रणाम स्कन्द ने सिर नत करके,
सवने आशीर्वाद दिया सिर पर कर धरके,
सवने मानो मूर्त्त मनोरथ अपने पाये,
होकर मानों सत्य सभी के सपने आये।

११—अर्थ देव सेनानी कुमार कार्तिकेय अपने नए और शौर्य के तेज मे दीपित हो रहे थे। उनके व्यक्तित्व का वह तेज उनकी आँखों मे तथा उनके आनन से फूट रहा था। उनके उस तरुण तेज से उनका मुखमण्डल लाल हो रहा था, जिसके सामने उदीयमान बाल सूर्य भी लज्जित हो रहा था। कुमार के भुजदण्ड ऐसे शक्तिशाली प्रतीत होते थे कि उन्हें देखकर ऐसा लगता था जैसे समस्त बल की धारा उनके भुजदण्डों में उमड रही हो। उनके तेजस्वी शरीर को देखकर ऐसा लगता था कि माना अखिल विश्व के ओज ने स्कन्दकुमार के रूप में एक अनोखा आकार पा लिया।

१२—अर्थ स्कन्द कुमार ने सब देवताओं को सिर झुकाकर प्रणाम किया, सबने उनके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। स्कन्द कुमार के ओजस्वी रूप को देखकर सबको ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उनके मनोरथ साकार होकर आ गये हों। स्कन्दकुमार माना उनके मनोरथों का मूर्त्त रूप था। सबको ऐसे ओजस्वी सेनानी की अभिलाषा थी। ऐसे ही सेनानी के सपने सब लोग देख रहे थे, आज मानों उनके सपने सत्य होकर सफल हुए हों।

[१३]

देवों को अब विदित हुआ, रण का सेनानी
होता कैसा शूरवीर, निर्भय औ ज्ञानी,
देख स्कन्द के सखा-सैनिकों के आनन को,
जाना, आये सिंह-बाल तजकर कानन को।

[१४]

जाना सबने धर्म आज नूतन जीवन का,
जाना सबने मर्म आज रति औ नर्तन का,
जाना बल का मूल, शक्ति का साधन जाना,
आज विजय का सिद्धि मार्ग सबने पहचाना।

१३—अर्थ तेजस्वी स्कन्द कुमार को देखकर देवताओं को ज्ञात हुआ कि युद्ध का वीर सेनानी कैसा वीर, निर्भय और ज्ञानी होता है। स्कन्द कुमार के साथ उनके सखा बटुक सैनिक के रूप में थे, जिनके तेजस्वी मुखों को देखकर देवताओं को ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि सिंह के किशोर वन को छोड़कर आ गये हों। (सिंह का मुख ही प्रमुख होता है और वही उसके शौर्य का सूचक होता है। सिंह के शरीर का पिछला भाग बहुत हल्का होता है।)

१४—अर्थ सब देवताओं ने आज जीवन का नवीन धर्म जाना। सबने आज रति और नृत्य का मर्म जाना कि ये दुर्बलता और पराजय के कारण हैं। संयम से ही शक्ति का संचय होता है। सबने आज शक्ति का साधन तथा बल का मूल कारण जाना और विजय के लिए सिद्ध मार्ग भी आज ही सबने पहचाना अर्थात् तेजस्वी कुमार को तथा उनके सखाओं को देखकर देवताओं को प्रतीत हुआ कि विजय प्राप्त करने के लिए ऐसा तेज होना चाहिए।

[१५]

मदन भस्म के मर्म आज ये सम्मुख जागे,
शंकर का आदेश मूर्त दर्पण-सा आगे,
था कुमार अभिरूप वीर्य बल विक्रम शाली,
जीवन की नय हुई सुरों को विदित निराली।

[१६]

था आनन पर आज सभी के ओज अनोखा,
दूर हुआ स्वर्गिक जीवन का सबके धोखा;
सबने आज रहस्य शक्ति औ जय का जाना,
हुई पराजय ग्लानि स्वप्न-सा आज पुराना।

१५—अर्थ शिव ने काम को क्यों भस्म किया था, इसका रहस्य भी देवताओं को आज ज्ञात हो रहा था। वह रहस्य यह था कि काम के संस्कार एवं ब्रह्मचर्य के द्वारा ही शक्ति की साधना तथा विजय की सृजनात्मक परम्परा सम्भव हो सकती है। इसी रहस्य का उपदेश शिव ने कामदहन के समय देवताओं को दिया था। वीर्यवान, बलवान और विक्रमशाली सेनानी के दिव्य रूप में वह आदेश आज उनके सामने मूर्तरूप में उपस्थित था। कुमार का वह रूप उनके सामने एक दर्पण के समान था, जिसमें वे अपना स्वरूप देख सकते थे तथा देखकर उसे सँभार, सुधार भी सकते थे। देवताओं को जीवन की अपूर्व नीति आज ज्ञात हुई कि शक्ति और साधना का समन्वय ही विजय का मार्ग है।

१६—अर्थ आज देवताओं के मुखों पर अपूर्व ओज छा रहा था। स्वर्ग के विलासमय जीवन का भ्रम दूर हो गया। आज सबको शक्ति और विजय का रहस्य विदित हुआ। शक्ति की साधना और विजय का ज्ञान हो जाने पर सबकी पुरानी पराजय की जो ग्लानि थी वह पुराने (बहुत दिन के) स्वप्न के समान विलीन हो गई थी (शक्ति के ज्ञान से विजय निश्चित लगने लगी थी)।

[२५]

मिला अभय अध्यात्म-योग का ऋषि मुनियों को,
मिला श्रेय का वर अमोघ सज्जन गुणियों को;
देवों ने आदेश योग-तप-नय का पाया,
आज उन्होंने मर्म हार औ जय का पाया।

[२६]

नृत्य गान मे रहीं लीन अब तक अनजानी,
अप्सरियों ने अब जीवन की लय पहचानी;
मर्यादा का आज लाज की परिचय पाया,
आज सत्य से हुई अलकृत जीवन-माया।

२५—अर्थ कुमार कार्तिकेय के पराक्रम के कारण ऋषि-मुनियों को अध्यात्म और योग के साधन के लिये अभय प्राप्त हो गया है। सज्जन और गुणी मनुष्यों के लिए कल्याण का अमोघ (अविफल) वरदान प्राप्त हो गया है। देवताओं को योग, तप तथा नीति का आदेश मिल गया है तथा आज उनको पराजय और विजय का मर्म विदित हो गया है।

२६—अर्थ जो स्वर्ग की अप्सरियाँ अब तक नृत्य और गान के अज्ञान में भूली रहीं थीं, उनको अब जीवन के सृजनात्मक संगीत की लय का प्रत्यभिज्ञान हुआ है। आज उनको लाज की मर्यादा का परिचय मिला तथा आज उनके जीवन की माया सत्य से सुशोभित हुई है।

[२७]

देवो को वर तुल्य मिला जय का सेनानी,
पाकर मानो प्राण हुई जीवित इन्द्राणी;
"नाथ ! आपका यही विश्व को अन्तिम वर हो,
यह शिवशक्ति-धर्म ससृति में सदा अमर हो।"

[२८]

वोले शंकर "पुण्यवती सुरपुर की रानी !
वने विश्व-वरदाव तुम्हारी मगल वाणी,
वाचस्पति का वचन विश्व का मगल वर हो,
शक्ति-योग यह मेरा जग का धर्म अमर हो।

२७—अर्थ पराजय से निराश हुए देवताओं को आज आपके वरदान के समान यह विजय का सेनानी स्कन्द कुमार प्राप्त हुआ है। जो इन्द्राणी पराजय की ग्लानि से मृत प्राय हो रही थी, वह मानो तेजस्वी सेनानी के रूप में नवीन प्राण पाकर आज पुनर्जीवित हो गई है हे स्वामी ! यह कल्याणमयी शक्ति का धर्म ससार में सदैव अमर रहे, विश्व के लिए आपका यही अन्तिम वरदान हो।"

२८—अर्थ तव शंकर ने कहा:—'हे पुण्यवती स्वर्ग की सम्राज्ञी ! तुम्हारी मंगलमयी वाणी विश्व का वरदान बने और वाचस्पति गुरु बृहस्पति का वचन विश्व के लिए मंगलमय वरदान हो तथा मेरा यह शक्ति-योग विश्व का अमर धर्म बने।

[२६]

बने उमा का तप नारी की नय कल्याणी,
युवकों का आदर्श विश्व में हो सेनानी;
शक्ति-योग से श्रेय विश्व में चिर विजयी हो,
जीवन संस्कृति प्रेम और आनन्दमयी हो।

[३०]

हुआ समावर्तन कुमार का वर मंगल का,
हुआ सिद्ध संस्कार श्रेय से संगत बल का;
पुण्य पर्व से हर्ष अभययुत सबने पाया,
जीवन का अधिकार आज निर्भय बन आया।

२६—अर्थ उमा का तप स्त्रियों की कल्याणमयी नीति बने। सेनानी (स्कन्दकुमार) विश्व में युवकों के लिए आदर्श हो। शक्ति के योग से कल्याण विश्व में स्थायी रूप से विजयी हो। जीवन की संस्कृति प्रेम और आनन्द से परिपूर्ण हो।

३०—अर्थ कुमार कार्त्तिकेय का समावर्तन संस्कार मंगलकारी वरदान के समान सम्पन्न हुआ। इस संस्कार से लोक-मंगल से समन्वित शक्ति का संस्कार (परिष्कार) भी सिद्ध हो गया। समावर्तन के पुण्य पर्व से सबने अभय से युक्त हर्ष प्राप्त किया। आज (देवताओं, मुनियों और मनुष्यों का) जीने का अधिकार निर्भय बन गया अर्थात् उन्हें असुरों के आतंक से रहित जीवन का अधिकार प्राप्त हुआ।

[३१]

सुर सेना के संग स्कन्द के पुण्य गमन की,
अनुमति शिव से मिली, हुई देवों के मन की;
सज्जित हुआ प्रयाण हेतु निर्भय सेनानी,
सुत गौरव की प्रीति पूर्ण गिरिजा ने मानी।

[३२]

ले विजया के स्वर्ण थाल से अक्षत रोली,
करके अंकित तिलक, कण्ठ भर गिरिजा बोली;
"बन देवों के वीर कुशल विजयी सेनानी,
करो विश्व मे निर्मित शिव संस्कृति कल्याणी।"

३१—अर्थ देवताओं की सेना के साथ सेनापति बनकर स्कन्द कुमार के ले जाने की अनुमति शिव से मिल गई शिव की इस अनुमति से देवताओं का मनोरथ पूर्ण हो गया। शिव की अनुमति प्राप्तकर निर्भय सेनानी देव सेना के साथ प्रयाण के लिए अस्त्र शस्त्र को धारण कर सज्जित हुआ। पुत्र के गौरव (उत्कर्ष) से माता को जो प्रेमपूर्ण प्रसन्नता (प्रीति) मिलती है, उसमे गिरिजा (महान् गिरि की पुत्री पार्वती) ने अपनी प्रसन्नता को पूर्ण माना।

३२—अर्थ पार्वती ने विजया के स्वर्ण थाल मे से रोली चावल लेकर स्कन्दकुमार के मस्तक पर तिलक अंकित किया और प्रेम से गद्गद् वाणी मे बोली—"तुम देवताओं के कुशल, वीर और विजयी सेनानी बनकर विश्व मे शिव की कल्याणकारी संस्कृति का निर्माण करो।

[३३]

लेकर कर से धूल जननि के पुण्य चरण की,
भावभरी शुचि प्रणति विदा के हित अर्पण का,
ले माता से विदा पिता के सम्मुख आया,
जोड़ पाणि युग श्रीचरणों में शीष नवाया।

[३४]

रोक हृदय का वेग धीर गद्गद् स्वर भर के,
दिया पुण्य आशीष शीष पर मृदु कर धर के;
"शिक्षा, संयम और योग के संचित बल से,
निर्भय करना युद्ध दुष्ट असुरों के दल से।

३३—अर्थ कुमार कार्तिकेय ने माता के पुण्य चरणों की धूल लेकर भाव से भरा हुआ पवित्र प्रणाम विदा के निमित्त अर्पित किया। माता से विदा लेकर कुमार पिता के सम्मुख पहुँचे और दोनों हाथ जोड़कर पिता के चरणों में सिर झुकाया।

३४—अर्थ हृदय में उमड़ते हुए प्रेम के वेग को रोककर धीर और गद्गद् वाणी से शिव ने पुत्र के सिर पर अपना कोमल हाथ रखकर उसे पुण्य आशीर्वाद दिया "कि शिक्षा, संयम और योग के संचित बल से तुम दुष्ट असुरों के दलों से निर्भय होकर युद्ध करना।

[३५]

है वीरों का धर्म विश्व का अनय मिटाना,
जिन्हें न नय प्रिय, उन्हें शक्ति का स्वाद चखाना;
जाओ रण में श्रेय शक्ति की सदा विजय हो,
दूर धर्म के पुण्य मार्ग से दुर्बल भय हो।"

[३६]

ममतामयी मातृकाओं ने लगा हृदय से,
लिया शीश औ कर का चुम्बन पूर्ण प्रणय से,
अश्रुभरा आशीष प्रेम से देकर बोली,
"वत्स ! विजय का तिलक उमा की हो यह रोली।"

३५—अर्थ वीरों का धर्म यही है कि वे संसार से अनीतियों को समाप्त करें। जिन लोगों को सदाचार प्रिय नहीं है, उन्हें तुम शक्ति का स्वाद चखाना। हे वीर ! तुम रण में जाओ, कल्याण-मयी शक्ति की सर्वदा विजय होगी, धर्म के पवित्र मार्ग से धर्म की प्रगति का बाधक दुर्बल भय दूर हो जाये।"

३६—अर्थ पिता से विदा लेने के बाद स्कन्दकुमार मातृकाओं से विदा लेने गये। मातृकाओं ने मातामही के समान उन्हें ममता से पाला था, इसलिए प्रेम के कारण उन्होंने कुमार को हृदय से लगा लिया। प्रेम से उनके सिर का और हाथों का चुम्बन किया तथा वे करुणा के आँसुओं से पूर्ण आशीर्वाद देकर बोली 'हे वत्स ! उमा ने जो यह रोली का तिलक तुम्हारे भाल पर किया है, यह तुम्हारा विजय का तिलक बने अर्थात् तुम्हें विजय प्राप्त हो।"

[३७]

माता, पिता, मातृकाओं का वन्दन करके,
जया और विजया का सिर अभिनन्दन धरके;
स्मरण चित्त में मात, पिता औ गुरु का करता,
चला इन्द्र के साथ वीर दृढ़-द्रुत पग धरता।

[३८]

देख रही थी उमा कक्ष के वातायन से,
सुत का वीर प्रयाण हर्ष से आर्द्र नयन से;
बाँधे सिर पर मुकुट, देह पर कवच चढाये,
अंग अंग मे अस्त्र शस्त्र द्युतिवन्त सजाये,

३७—अर्थ माता पिता तथा मातृकाओं को नमस्कार करके, जया विजया दासियों का अभिनन्दन सिर पर धारण कर, माता-पिता और गुरु का मन में स्मरण करता हुआ वीर स्कन्दकुमार इन्द्र के साथ दृढ़ और शीघ्र चरण रखता हुआ चल दिया।

३८—अर्थ हर्ष के आँसुओं से गीले नेत्रों से पार्वती घर के वातायन से पुत्र का वीरतापूर्ण प्रस्थान देखती रहीं। कुमार के सिर पर मुकुट बँधा हुआ था, देह पर कवच चढ़ा हुआ था और अंग अंग में दीप्तिमान अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे।

[३६]

प्रलय काल के सूर्य तुल्य था दीपित होता,
था किरणों–सा तेज प्रसार असीमित होता;
सिंह गमन से साथ इन्द्र के चलता जाता,
होती गद्‌गद् देख हृदय मे पुलकित माता।

[४०]

उल्का–से अनुगमन कर रहे सैनिक सारे,
देव हो रहे थे अवभासित ज्यों रवि–शशि–तारे;
हुई प्रवाहित कौन ईश की ज्योतिर्धारा,
उतर कूट से करती ज्योतित गिरि–वन सारा।

३६—अर्थ वह कुमार अस्त्र शस्त्रों की आभा से प्रलयकालीन सूर्य के समान दीप्त हो रहा था। जिस प्रकार सूर्य की किरणों का प्रसार असीमित होता है, उसी प्रकार कुमार के तेज का प्रसार भी असीमित था। इन्द्र के साथ कुमार स्कन्द सिंह की चाल से जा रहा था, उसको देखकर स्कन्द की माता हृदय में बड़ी पुलकित हो रही थी।

४०—अर्थ स्कन्द कुमार के साथी बटुक सैनिक बनकर उल्काओं के समान सेनानी के पीछे चल रहे थे। पुच्छल तारा अधिक चमकता है, उसी प्रकार स्कन्दकुमार के तेजस्वी सैनिक देवताओं से अधिक तेजस्वी लग रहे थे। देवताओं और सैनिकों का दल कैलाश से उतरता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो महादेव के शीश से ज्योतिर्धारा पर्वत शिखर से उतर कर सम्पूर्ण पर्वत और वन को प्रकाशित कर रही हो।

[४१]

ऐरावत पर साथ इन्द्र ने स्वय बिठाया,
देख पुत्र का मान उमा ने गौरव पाया;
बैठे सैनिक सखा विमानों मध्य सुरो के,
चले कुतूहल – भीति जगाते वन्य उरो के।

[४२]

मनोवेग से देवलोक मे वे सब आये,
सुनते ही सवाद हर्ष के उत्सव छाये;
आये देव – कुमार अतिथियों के दर्शन को,
अर्घ्य-माल ले अप्सरियाँ आई वन्दन को।

४१—अर्थ इन्द्र ने कुमार को ऐरावत हाथी पर स्वयं बिठाया। पुत्र के इस गौरवपूर्ण सम्मान को देखकर पार्वती को गौरव का अनुभव हुआ। कुमार के सखा सैनिक देवताओं के विमानो पर बैठ गये और वनवासियों के हृदयों में कुतूहल और भय जगाते हुए चल दिये।

४२—अर्थ सेनानी, सैनिक, इन्द्र और देवता सब स्वर्ग लोक में बहुत शीघ्र आ गये, मानो वे मन के वेग से ही इतनी शीघ्रता से आ गये। देवलोक में सेनानी तथा उनके सखाओं और देवताओं के पुनः आगमन से हर्ष के उत्सव छा गए। देव कुमार अतिथियों के दर्शन के लिए आये तथा अप्सरियाँ अर्घ्य और माला लेकर उनके वन्दन के लिए आईं।

[४३]

किन्नरियों ने स्वागत के मधु गीत सुनाये,
गन्धर्वों ने हर्ष नृत्य के साज सजाये;
कर अभिवन्दन ग्रहण, सकुचित मन, सुरपुर का,
किया स्कन्द ने प्रकट भाव अपने भी उर का।

[४४]

देवों से अनुगत कुमार ने सुरपुर देखा,
देख विकृतियाँ, उठी क्षोभ की उर में रेखा;
असुरों की उत्पात – कथा अंकित पहचानी,
हुआ हृदय में मौन क्रुद्ध अतिशय सेनानी।

४३—अर्थ सबके स्वागत में किन्नरियों ने मधुर गीत सुनाये और गन्धर्वों ने हर्ष के नृत्य के साज सजाये। स्वर्ग के निवासियों का अभिवन्दन संकोच के साथ ग्रहण करके स्कन्द ने अपने हृदय का भाव भी प्रकट किया।

४४—अर्थ देवताओं से अनुगत कुमार कार्त्तिकेय ने स्वर्ग को देखा। स्वर्ग की सज्जा में उत्पन्न हुई विकृतियाँ देखकर सेनानी के हृदय में क्षोभ की रेखा उठी। असुरों की अनीतियों की कथा को उन्होंने स्वर्ग की उजड़ी दशा में अंकित देखा। उसको देखकर सेनानी मन में क्रुद्ध हुआ, यद्यपि वह मौन रहा।

[४५]

बढ़ा हृदय का वेग, वक्ष ऊपर को आया,
बंकिम भृकुटी हुई, रक्त-सा मुख पर छाया;
रोक हृदय का भाव, मौन में गोपन करके,
सुरपुर की दुर्दशा वीर अवलोकन करके;

[४६]

साथ इन्द्र के वैजयन्त के पथ में आया,
आगे बढ़कर स्वयं इन्द्र ने मार्ग दिखाया,
उदासीन लखकर विलास की विधियाँ सारी,
वीतराग लख वैजयन्त की चित्र अटारी।

४५—अर्थ सुरपुर की दुर्दशा को देखकर वीर सेनानी के हृदय में क्रोध का वेग बढ़ा और क्रोध के कारण हृदय की गति तीव्र हो गई और उनका वक्षस्थल ऊपर को उठ आया, उनकी भौंहें क्रोध के कारण टेढ़ी हो रही थीं और उनके मुख का वर्ण क्रोध से लाल हो रहा था। किन्तु अपने हृदय के भाव को रोककर और उसे मौन में छिपाकर तथा स्वर्ग की दुर्दशा का अवलोकन करके

४६—अर्थ वीर सेनानी इन्द्र के साथ वैजयन्त प्रासाद के मार्ग में आया। इन्द्र ने स्वयं आगे बढ़कर उन्हें वैजयन्तप्रासाद का मार्ग दिखाया। वहाँ के वैजयन्त प्रासाद में विलास की समस्त विधियों को उदासीन देखकर तथा वैजयन्त की चित्रसारी अटारी को रागरहित देखकर,

[४७]

तीव्र इन्द्र का ताप हृदय में अनुमित करके,
मौन अधर मे तीव्र क्लिष्ट–सी लघुस्मिति भर के;
धीर कण्ठ से वीर वचन यह बरबस बोला,
"सहता कितना ध्वंस विश्व का मानस भोला !"

[४८]

पाणि–योग से पुनः स्कन्द को वन्दित करके,
देव सभा की ओर विनय से इगित करके,
इन्द्रासन का मार्ग शक्र ने स्वयं दिखाया,
अपने दक्षिण भाग वीर को प्रथम बिठाया।

४७—अर्थ उन सबके आधार पर इन्द्र के मन के तीव्र संताप को हृदय में अनुमान करके तथा अपने मौन अधरों में एक तीखी, क्लेशपूर्ण और लघु स्मिति भरकर कुमार कार्त्तिकेय ने धीर कण्ठ से विवशतापूर्वक ये वचन कहे—'विश्व का भोला मन अपनी दुर्बलता और विवशता के कारण कितना विनाश सहता है।"

४८—अर्थ दोनों हाथों को जोड़कर स्कन्दकुमार का वन्दन करके विनय से देव–सभा की ओर संकेत करके, इन्द्र ने स्वयं इन्द्रासन का मार्ग उनको दिखाया और उस वीर कुमार को अपने दक्षिण भाग में स्वयं बैठने से पहले बिठाया।

[४९]

वाम पार्श्व में मौन मुग्ध बैठी इन्द्राणी,
बैठे सम्मुख स्वर्ण पीठ पर गुरुवर ज्ञानी;
निज निज आसन सूर्य, वरुण, यम, सोम विराजे,
गन्धर्वों ने मुदित बजाये जय के बाजे।

[५०]

अभिवादन के हेतु भूमि पर वन्दन करती,
रूप कला से समुद शिष्ट अभिवादन करती,
लेकर मंगल माल अप्सरायें सब आईं,
नृत्य समेत प्रशस्ति किन्नरी-कुल ने गाईं।

४९—अर्थ इन्द्रासन के बायें भाग में मौन और मुग्ध भाव से इन्द्राणी बैठी थी। उनके सामने स्वर्ण के आसन पर ज्ञानी गुरु बृहस्पति बैठे थे। अपने अपने आसनों पर सूर्य, वरुण, यम, सोम बैठे थे। प्रसन्न होकर गन्धर्वों ने विजय के बाजे बजाये।

५०—अर्थ अभिवादन के लिए भूमि पर झुककर प्रणाम करती हुईं, अपने रूप-सौन्दर्य और अपनी कला से प्रसन्नता पूर्वक शिष्ट अभिवादन करती हुईं, सब अप्सरायें मंगल की मालायें लेकर आईं और किन्नरियों ने नृत्य-सहित सेनानी की प्रशंसा के गीत गाये।

[५१]

स्वागत शिष्टाचार हुआ जब विधि से पूरा,
(अप्सरियों का सपना यद्यपि रहा अधूरा)
उठा शान्ति के हेतु उर्ध्व कर सुर–गुरु बोले,
"आज ईश ने मुक्ति–द्वार सुरपुर के खोले।

[५२]

मूर्त्त अनुग्रह आज ईश का हमने पाया,
शिव का औरस आज स्वर्ग–रक्षक बन आया;
शक्ति–पुत्र अब आज सुरों का है सेनानी,
जिसके शिक्षक परशुराम–से उद्‌भट ज्ञानी।

५१—अर्थ जब विधि पूर्वक स्वागत का शिष्टाचार पूर्ण हो गया, (*किन्तु अप्सरियों का स्वप्न अधूरा ही रह गया*, वे तेजस्वी ब्रह्मचारियों के समक्ष अपना नृत्य-गान अधिक न कर सकीं) तब देवताओं के गुरु बृहस्पति ने शान्ति के लिए ऊँचा हाथ करके कहा— "आज शिव ने स्वर्ग की मुक्ति के द्वार खोले हैं।

५२—अर्थ शिव के अनुग्रह का मूर्त्त रूप कुमार स्कन्द आज हमें प्राप्त हुआ है। शिव का पुत्र आज स्वर्ग का रक्षक बनकर आया है। शक्ति का पुत्र आज देवताओं का सेनानी है, परशुराम के समान परम पराक्रमी ज्ञानी से जिसने शिक्षा पाई है।

[५३]

असुरों का आतक दूर त्रिभुवन से होगा,
देवलोक का विभव पुन: अब उज्ज्वल होगा;
होंगे अब उच्छिन्न विश्व से अनय अभागे,
अब सुजनों के भाग सदा से सोये जागे।"

[५४]

कर मित भाषण मौन हुई गुरुवर की वाणी,
बोला अवसर जान उचित उठकर सेनानी,
"शीलवती वासवी स्वर्ग की शाश्वत रानी!
देवलोक के वीर वज्रधर अधिपति मानी!

५३—अर्थ अब त्रिभुवन से असुरों की अनीतियों का आतंक दूर हो जायेगा और देवलोक का जो वैभव ग्लानि हो गया है, अब फिर उज्ज्वल हो जायेगा अर्थात् चमक उठेगा। अब संसार से दुष्ट अनीतियाँ मिट जायेंगी और सज्जनों के सदा से सोये हुए भाग्य जाग जायेंगे।"

५४—अर्थ देवताओं के गुरु बृहस्पति की वाणी परिमित वचन बोलकर मौन हो गई। तब उचित अवसर जानकर सेनानी उठा और बोला—"हे स्वर्ग की चिरन्तन अधिष्ठात्री, शीलवती इन्द्राणी!, देवलोक के वज्र को धारण करने वाले मानी, वीर सम्राट इन्द्र!,

[५५]

सुरपुर के गम्भीर धीर-मति गुरुवर ज्ञानी !
वरुण, सूर्य, शशि आदि सभी नायक वरदानी !
सबको पहले विनय पूर्ण है वन्दन मेरा,
वाचस्पति का वचन दिव्य अभिनन्दन मेरा।

[५६]

शक्तिमूर्ति माता की करुणा चिर भयहारी,
शिव की शाश्वत कृपा विश्व की मंगलकारी;
गुरु का दीक्षा मन्त्र वज्र-दीपक है मेरा,
हरता दुर्गम तम-पन्थों का सदा अँधेरा।

५५—अर्थ स्वर्ग के गम्भीर और धीर बुद्धि वाले परम ज्ञानी गुरु बृहस्पति, वरुण, सूर्य, चन्द्र आदि सभी वरदानी नायको ! पहले आप सबको मेरा विनयपूर्ण वन्दन स्वीकार हो। वाचस्पति का वचन मेरा दिव्य (स्वर्ग के अनुरूप) अभिनन्दन है।

५६—अर्थ शक्ति मूर्ति माता की करुणा सदा भय को दूर करने वाली है। शिव की चिरन्तन कृपा विश्व का मंगलकारी गुरु परशुराम का कल्याण करने वाली है। दीक्षा-मन्त्र मेरा वज्र-दीपक के समान पथ प्रदर्शक है; वह दुर्गम अन्धकार पूर्ण मार्ग का अँधेरा सदा दूर करता है।

[५७]

सबके मंगलपूर्ण अनुग्रह के सम्बल से,
वीर सखाओं के अमोघ औ दुर्जय बल से;
वाचस्पति की गिरा सत्य ही निश्चय होगी,
रहे स्वर्ग के देव हमारे यदि सहयोगी।

[५८]

रहे पूज्य गुरुवर्य नित्य हमसे यह कहते,
दुर्बलता से रहे पराजय नित सुर सहते;
नर, मुनि अत्याचार सह रहे हैं असुरों के,
कारण वस दौर्बल्य और भय सदा उरों के।

५७—अर्थ इन सबके मंगलपूर्ण अनुग्रह (कृपा) के सम्बल से तथा वीर वटुक सखाओं के अमोघ और दुर्जय बल से गुरु बृहस्पति की वाणी निश्चय ही सत्य होगी, यदि स्वर्ग के देवता हमारे सहयोगी बने रहें।

५८—अर्थ हमारे पूज्य गुरुदेव हमसे सदा यही कहते रहे हैं कि देवता सदैव ही अपनी दुर्बलता से पराजय की ग्लानि सहते रहे हैं। सज्जन मनुष्य असुरों के अत्याचारों को सहते रहे हैं, इसका कारण केवल हृदय की दुर्बलता और हृदय का भय है।

[५६]

मुनि लेकर अध्यात्म बन गये निस्पृह योगी,
पाकर सुर अमरत्व बन गये तन्मय भोगी;
योग भोग के बीच अनिश्चित गति से बहते,
निर्बल नर निश्चेष्ट रहे सब कुछ ही सहते।

[६०]

नही योग ही साध्य हमारे लघु जीवन का,
और नही परमार्थ भोग है तन का, मन का;
योग भोग का असमजस भी केवल भ्रम है,
होता निष्फल दोनो के साधन का श्रम है।

५६—अर्थ ऋषि-मुनि अध्यात्म को ग्रहण कर निस्पृह अर्थात् संसार से विरक्त योगी बन गये और अमरत्व को प्राप्त करके देवता भोग में तन्मय हो गये। योग और भोग के बीच में अनिश्चित गति से बहने वाले निर्बल मनुष्य निश्चेष्ट होकर अनीतियों को सहते ही रहे।

६०—अर्थ हमारे इस छोटे से जीवन का साध्य केवल योग नहीं हो सकता और न भोग ही तन का या मन का परमार्थ हो सकता है। योग और भोग का असमंजस भी केवल भ्रम है, क्योंकि इस असमंजस में दोनों के साधन का परिश्रम निष्फल हो जाता है।

[६१]

केवल साधन योग शक्ति–बल के सचय का,
बनता सयम मन्त्र सनातन प्रकृति–विजय का;
भोग रोग है सदा सचेतन सुर–मानव को,
किन्तु वही है योग प्रकृति में रत दानव को।

[६२]

करके शक्ति प्रदान योग करता निर्भय है,
सुर–मानव का भोग सदा करता बल क्षय है;
होकर निर्बल सदा असुर से सुर–नर हारे,
हैं बल से ही साध्य लोक के इष्ट हमारे।

६१—अर्थ योग जीवन का साधन ही है, वह केवल शक्ति और बल के संचय का साधन है। योग का संयम प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का सनातन मन्त्र है। चेतनशील मनुष्यों और देवताओं के लिए भोग सदा एक (क्षय का कारण) रोग है, किन्तु प्रकृति में लीन असुर के लिए वही (भोग) योग (शक्ति का साधन) बन जाता है।

६२—अर्थ शक्ति प्रदान करके योग मनुष्य को निर्भय बनाता है। किन्तु देवताओं और मनुष्यों का भोग सदा उनके बल का क्षय करके उन्हें निर्बल बनाता है। निर्बल बनकर ही सुर और मनुष्य सदा असुरों से हारते रहे हैं। हमारे सम्पूर्ण भौतिक इष्ट शक्ति से ही प्राप्त होते हैं।

[६३]

है पवित्र अध्यात्म चरम परमार्थ हमारा,
बनते लौकिक स्वार्थ इष्ट उसके ही द्वारा;
देता है अध्यात्म अर्थ निश्चित जीवन को,
सदा साध्य ही मान-मूल्य देता साधन को।

[६४]

पर साधन के बिना साध्य हैं स्वप्न हमारे,
साधन को ही भूल सदा सुर, नर, मुनि हारे;
साधन का ही साध्य बना अपने जीवन का,
दानव कुल ने किया हरण सबके साधन का।

६३—अर्थ पवित्र अध्यात्म हमारे जीवन का चरम लक्ष्य है। उसी अध्यात्म के द्वारा लौकिक स्वार्थ हमारे अभीष्ट बनते हैं। अध्यात्म जीवन को निश्चित अर्थ प्रदान करता है। साधन को मान और महत्त्व सदा साध्य ही देता है।

६४—अर्थ किन्तु साधन के बिना हमारे साध्य स्वप्न के समान असत्य हैं। इसी साधन को भूलकर देवता, मनुष्य तथा मुनि हारते रहे हैं। साधन को ही जीवन का साध्य बनाकर दानव कुल ने सबके साधनों का हरण कर लिया है।

[६५]

निःसाधन अध्यात्म बना भ्रम योगीजन का,
बना भोग अभिशाप पराजित सुर-नर गण का;
रोग और भ्रम दोनों में नर निर्बल भूला,
वातवेग में जीवन उसका बना बबूला।

[६६]

ऋषि, मुनि, योगी, सन्त ज्ञान की देकर हाला,
सदा बनाते रहे उसे मोहित मतवाला;
भ्रान्त धर्म औ ज्ञान-योग के ही साधन में,
रहा पराजित असुरों से मानव जीवन में।

६५—अर्थ योगी जनों का अन्य लौकिक साधनों से रहित केवल (वस्तुतः) अध्यात्म उनका भ्रम ही रहा। हारे हुए देवता और मनुष्यों का भोग उनके लिए अभिशाप बन गया। निर्बल मनुष्य रोग और भ्रम में पड़कर (विजय के लिए अपेक्षित) साधनों को भूला रहा तथा उसका जीवन (इतिहास की) हवाओं के झोंकों में बबूले के समान अस्थिर रहा और नष्ट होता रहा।

६६—अर्थ ऋषि, मुनि, योगी और सन्त लोग सज्जनों को ज्ञान की हाला (शराब) पिलाकर सदा उन्हें मोहित और मतवाला बनाते रहे। भ्रान्तिपूर्ण धर्म, ज्ञान और योग की साधना में लीन मनुष्य जीवन में असुरों से पराजित होता रहा।

[६७]

हो असुरों का दास पराजित जीवन-रण में,
हुआ लीन नर नारी के दुर्बल शासन में;
पर अबलों के शासन में पलती दुर्बलता,
दुर्बल जन का दम्भ सदा ही उसको छलता।

[६८]

दुर्बल मानव बना काम-गति में अतिचारी,
बना विजेता असुर अनय का चिर अधिकारी;
निर्यातित भी नारी ने आंसू से अपने,
मानव को संकल्प किये जीवन के सपने।

६७—अर्थ जीवन के युद्ध में पराजित होकर मनुष्य असुरों का दास बन गया। अपनी पराजय का प्रतिशोध करने के लिए पुरुष नारी के ऊपर दुर्बलतापूर्ण शासन करने में लीन हो गया। बलवान पर शासन करने से तो मनुष्य शक्तिशाली बनता है, किन्तु अबला नारी पर शासन करने से मनुष्य में दुर्बलता ही बढ़ती है। दुर्बल मनुष्यों का अहंकार सदा उन्हें छलता रहा है। (दुर्बलों पर उनका शासन भ्रमपूर्ण है।)

६८—अर्थ दुर्बल मनुष्य स्त्री के ऊपर शासन करने में स्वच्छन्द होकर अतिचारी बन गया तथा उसे विजयी असुरों के समाज में अनीति का आचरण करने का स्थायी अधिकार मिल गया। पुरुष के द्वारा पीड़ित नारी ने भी अपने अश्रु जल से अपने जीवन के सुन्दर सपनों का संकल्प पुरुष को कर दिया अर्थात् वह अपने जीवन के सुन्दर स्वप्न करुणा पूर्वक पुरुष को भेंट कर उसकी सेवा करती रही।

[६९]

वत्सलता से विवश रही सब सहती नारी,
जगा न पाया नर को कोई अत्याचारी;
नारी लुटती रही, दीन नर का क्या खोया,
मर्म वेदना से कब उसका अन्तर रोया।

[७०]

लुटकर लौटी नहीं लाज फिर से जीवन में,
तन का अत्याचार कीट बनता है मन में;
असुर भोग का साधन केवल उसका तन है,
कब असुरों के लिये मूल्य रखता कुछ मन है।

६९—अर्थ बालकों की जननी होने के कारण, उन्हीं के प्रेम के कारण नारी सब अत्याचारों को विवश होकर सहती ही। पुरुष को कोई भी असुर अत्याचारी अपनी अनीतियों से भी नहीं जगा पाया। स्त्रियों की लाज लुटती रही, किन्तु दीन (जीवन के गौरव से हीन) पुरुष की कोई हानि नहीं हुई। स्त्रियों और बालकों के दुःख की मर्मवेदना से उस (पुरुष) का हृदय कभी दुःखी होकर करुणा से द्रवित नहीं हुआ, अतः वह कभी प्रतिकार के लिए विचलित न हो सका।

७०—अर्थ जीवन में स्त्रियों की लाज लुटकर फिर से वापिस नहीं आती। असुरों के अत्याचार तो शरीर पर होते हैं, किन्तु उनकी मानसिक ग्लानि रोगकीट के समान मन में सदा काटती रहती है। असुरों के लिए भोग का साधन केवल नारी का तन रहा है। असुरों के जीवन में मन का कभी कुछ मूल्य नहीं रहा।

[७१]

पूर्ण प्रकृति–सौन्दर्य हुआ नारी के तन मे,
किन्तु हुआ वह व्यर्थ भोग के पशु बन्धन मे,
तन की लज्जा मर्यादा नारी जीवन की,
है नारी को इष्ट मुक्ति निज पावन तन की।

[७२]

होकर तन से मान्य, मुक्त औ मन से नारी,
जब तक बनती नही इष्ट गति की अधिकारी;
नर की सन्तति सदा हीन नर तुल्य रहेगी,
यों ही अत्याचार असुर के विवश सहेगी।

७१—अर्थ नारी के शरीर में प्रकृति का सौन्दर्य पूर्ण हुआ है, किन्तु भोग के पाशविक बन्धन में पड़कर वह (सौन्दर्य व्यर्थ हो गया है। नारी के जीवन की मर्यादा उसके शरीर की लज्जा में ही निहित है। इसलिये अपने पवित्र तन की मुक्ति ही नारी की अभिलाषा रहती है अर्थात् वह अपने शरीर को पवित्र और स्वतन्त्र रखना चाहती है। असुरों के शारीरिक अतिचार में उसके शरीर की स्वतन्त्रता और पवित्रता नष्ट हो जाती है।

७२—अर्थ जब तक समाज में नारी के शरीर को आदर नहीं मिलता तथा मन की स्वतन्त्रता नहीं मिलती तथा इस प्रकार जब तक नारी अपनी अभीष्ट जीवन–गति की अधिकारी नहीं बनती, तब तक पुरुष की सन्तान सदा के समान ही हीन एवं निर्बल रहेगी और निर्बल होने के कारण वह असुरों के अत्याचारों को अपने पूर्वजों के समान ही विवश होकर सहती रहेगी।

[७३]

मुक्त न होगा नर नारी को रख बन्धन में,
अभय न होगा नर रख भय नारी के मन में;
उसको अवला बना रहेगा निर्बल नर भी,
निर्बल को जय मान न देगा शिव का वर भी।

[७४]

है नारी का मान निकष संस्कृति के स्तर की,
नारी का अपमान हीनता निर्बल नर की;
कर नारी को विवश हुआ नर गर्वित मन में,
चूर्ण हुआ पर गर्व असुर से भीषण रण में।

७३—अर्थ नारी को अपने बन्धन में रखकर पुरुष कभी मुक्त नहीं हो सकता और नारी के मन में अपना भय रख कर नर कभी भय से रहित अर्थात् निर्भय नहीं रह सकता। स्त्री को शक्ति से हीन अवला बनाकर मनुष्य स्वयं भी निर्बल बना रहेगा। निर्बलों को शिव का वरदान भी विजय या मान नहीं दे सकता। (विजय, मान, गौरव आदि शक्तिमान को ही मिल सकते हैं।)

७४—अर्थ स्त्री का सम्मान ही मानवीय संस्कृति के विकासस्तर की कसौटी है। कौन संस्कृति कितनी श्रेष्ठ और उच्च है, इसका अनुमान इसी से हो सकता है कि उस समाज में नारी का कितना सम्मान एवं आदर है। नारी का अपमान निर्बल पुरुष की हीनता का द्योतक है। नारी को अपने बन्धन में रखकर उसे विवश करके पुरुष अपने मन में गर्व करता है। किन्तु पुरुष का वह गर्व युद्ध में असुरों के भीषण प्रहारों के सामने चूर्ण (नष्ट) हो जाता है।

[७५]

है असुरों का लक्ष्य सदा ही युवती नारी,
उसको ही करते निर्यातित अत्याचारी;
नारी का अपमान अविचलित जो नर सहले,
वे किन्नर हैं, उन्हें व्यर्थ ही कवि नर कहते।

[७६]

अबलाओं की लाज गई असुरों से लूटी,
शिशुओं पर दनुजों की निर्दय छुरियाँ टूटी;
शोणित से सिन्दूर गया कितनों का धोया,
कितनों का वात्सल्य विलखकर निष्फल रोया।

७५—अर्थ असुरों का लक्ष्य सदैव युवती नारी का अपहरण करना रहा है। उस (युवती नारी) को ही अत्याचारी असुर पीड़ित करते हैं। जो नर अविचलित भाव से नारी के अपमान को सहते हैं, वे नर नहीं किन्नर हैं। कवियों ने उन्हें व्यर्थ ही 'नर' की संज्ञा दी है। (किं+नर, क्या नर है ? उनका पुरुषत्व संदिग्ध है)

७६—अर्थ न जाने कितनी अबला स्त्रियों की लाज को असुरों ने लूट है और न जाने कितने शिशुओं पर असुरों की निर्दय छुरियों ने वार किया। कितनी स्त्रियों की माँग का सिन्दूर उनके पुरुषों के रक्त से धोया गया है अर्थात् पतियों के मारे जाने से कितनी स्त्रियाँ विधवा हुई हैं, और कितनी स्त्रियों का वात्सल्य प्रेम (बच्चों की मृत्यु पर) बिलख-बिलख कर रोया है। किन्तु उनका रोना निष्फल हुआ है, क्योंकि निर्बल पुरुष उनकी पीड़ा के प्रतिकार का कोई उद्योग नहीं कर सके।

[७७]

किन्तु न विचलित हुए धर्म के निष्ठुर नेता,
किसी अनय से कभी ब्रह्म उनका कब चेता;
हारों को ही रहे सदा वे हार सिखाते,
रहे मृतों को सदा मृत्यु का पाठ पढ़ाते।

[७८]

अबलाओं के उत्पीडन से विचलित मन में,
छोड़ प्राण का मोह अल्प मानव जीवन में;
यदि कोई नर वीर असुर से जूझा रण में,
तो उसका बलिदान हुआ बस अमर स्मरण में।

७७—अर्थ किन्तु स्त्री-बच्चों पर हुए अत्याचारों को देखकर भी धर्म के निर्दयी नेताओं के हृदय कभी विचलित नहीं हुए और असुरों की किसी भी अनीति से उनका ब्रह्म (उनकी चेतना) सजग नहीं हुआ। (वे सुरक्षित रहकर शान्ति से सज्जनों को धर्म का आदेश देते रहे और असुरों को क्षमा करते रहे।) वे धर्माचार्य सदैव हारने वालों को ही हार का पाठ पढ़ाते रहे। वे उनको शक्तिहीन धर्म और अध्यात्म का उपदेश देते रहे, जो पराजय का ही कारण बनता है। जो मन से सदा ही मृत रहे हैं, उन्हीं को वे मृत्यु की शिक्षा देते रहे अर्थात् घातक एकाँकी अध्यात्म का उपदेश देते रहे।

७८—अर्थ यदि इस मनुष्य समाज में कोई ऐसा वीर उत्पन्न हो जाता है, जो मन में अबलाओं की पीड़ा से विचलित होकर इस अल्प मनुष्य जीवन के मोह को छोड़कर असुरों से युद्ध में वीरता पूर्वक लड़कर अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देता है, तो उसका बलिदान मनुष्य समाज सदा याद करता रहता है और उसके गीत गाता रहता है। उसके आदर्श का अनुकरण करके अन्य मनुष्य स्वयं उसके समान स्त्रियों के मान की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए उत्साहित नहीं होते।

[७६]
किन्नर-से नर रहे कीर्ति उसकी बस गाते,
दुर्बलता का दीप धर्म पर रहे चढाते,
कीर्ति कथा से कभी शौर्य का जगा सवेरा ?
खद्योतो से कभी अमा का मिटा अँधेरा ?

[८०]
विना शक्ति के धर्म-ज्ञान भ्रम भर रह जाता,
दुर्वलता का धर्म सदैव अधर्म वढाता;
दुर्बल का सन्तोष अहिंसा वन कर आती,
उत्साहित कर हिंसा को ही और वढाती।

७६—अर्थ किन्नरों के समान दुर्बल नर उस वीर पुरुष की कीर्ति गाते रहते है और अज्ञान का अन्धकारमयी अपनी दुर्वलता का दीपक धर्म की देहली पर चढाते रहते हैं। उस वीर की कीर्ति कथा से उनके लिए पराक्रम का प्रभात कभी नहीं जगता अर्थात् वे शक्ति के उपासक नहीं बनते। जिस प्रकार खद्योतों के प्रकाश से अमावस्या की रात्रि का अँधेरा नहीं मिट सकता, उसी प्रकार धर्म के इन दुर्बल दीपकों से अज्ञान और दुर्बलता का अन्धकार नहीं मिट सकता।

८०—अर्थ शक्ति के बिना धर्म और ज्ञान केवल भ्रम बने रहते हैं। (शक्ति के सहयोग के बिना धर्म और ज्ञान सच्चे रूप में विकसित नहीं हो सकते, उनमें छल और भ्रम प्रवेश कर जाते हैं।) दुर्वलता का धर्म सदैव अधर्मों को ही बढ़ाता है। (दुर्बल मनुष्य स्वयं सच्चे धर्म का पालन नहीं कर पाते, उसमें छल एवं भ्रम प्रवेश कर जाते हैं तथा दुर्वलता से प्रोत्साहित होकर असुर अधर्म में प्रवृत्त होते हैं।) अहिंसा दुर्बलों का सन्तोष बन जाती है और वह (अहिंसा) हिंसा को प्रोत्साहित करके उसे बढ़ाती है। (दुर्वलों की अहिंसा से प्रोत्साहित होकर दुष्ट असुर हिंसा में प्रवृत्त होते हैं।

[८१]

नर नश्वर है; अल्प भोग उसका जीवन मे,
किन्तु कामना अमर भोग की रहती मन मे,
अक्षय यौवन और भोग का स्वर्ग तुम्हारा,
है मानव का स्वप्न प्राप्य पुण्यों के द्वारा।

[८२]

पर वे सारे पुण्य पाप बनते हैं नर के,
ग्लानि पराजय आदि अमर ही सदा अमर के,
हुआ चिरन्तन भोग चिरन्तन ही क्षयकारी,
बने असुर की आज दया के देव भिखारी।

८१—अर्थ मनुष्य का जीवन नश्वर होने के कारण उसका भोग का समय अल्प होता है, किन्तु उसके मन मे भोग की कामना अनन्त रहती है। मनुष्य अपने पुण्यकर्मों के द्वारा स्वर्ग के देवताओं के समान अक्षय यौवन और अक्षय भोग प्राप्त करने के स्वप्न देखता रहता है। (अक्षय यौवन और अनन्त भोग का स्वर्ग मनुष्य की कामना का चरम लक्ष्य है।)

८२—अर्थ किन्तु स्वर्ग और देवत्व को प्राप्त करके वे सारे पुण्य मनुष्य के लिए पाप बन जाते हैं। क्योंकि अमर देवताओं की असुरों से सदा हार होती रही है तथा उस पराजय की ग्लानि भी देवताओं का जीवन अमर होने के कारण अमर अर्थात् अनन्त है। उनका (देवताओं) अक्षय भोग ही उनके लिए चिरन्तन नाश करने वाला हुआ है। देवता आज भी असुरों की दया के भिखारी बने हुए हैं।

[८३]

रही अमरता अमर शाप देवों को बनती,
अमर भोग का पाप पराजय अक्षय बनती;
बना नरों का स्वप्न आज अभिशाप तुम्हारा,
होगा बस उद्धार शक्ति साधन के द्वारा।

[८४]

असुरों का आतंक नरों को निर्बल करता,
पर नारी के लाज, मान निर्भय खल हरता;
बन्दी-से इस भीषण भय के तम में पलते,
ज्योति-भीरु नर-शिशु भी सब बल हीन निकलते।

८३—अर्थ देवताओं की अमरता उनके लिए अमर अभिशाप बन गई है। उनका अक्षय पराजय उनके अमर भोग के अमर पाप का परिणाम है। मनुष्यों का स्वर्ग का स्वप्न आज तुम्हारे लिए अभिशाप बन गया है। अब तुम्हारा उद्धार केवल शक्ति की साधना से ही हो सकता है। (शक्ति साधना से तुम विजयी बनकर जीवन का गौरव प्राप्त कर सकते हो।)

८४—अर्थ असुरों के आतंक से पुरुष निर्बल बनता जाता है। (पुरुषों को केवल हीनता का अभिशाप मानना पड़ता है) किन्तु दुष्ट असुर नारी की लाज और मान को निर्भय होकर नष्ट करते हैं। असुरों के इस भीषण भय में बन्दी के समान पलकर मनुष्यों की सन्तान (शक्ति के) प्रकाश से डरे हुए बलहीन ही निकलते हैं। (पराजय और भय के फलस्वरूप दुर्बलता पुरुष जाति की परम्परा बन जाती है।)

[८५]

अन्तर में चिर क्लिष्ट असुर के भय बन्धन में,
पलकर, पूत न होगा नर रोली चन्दन में;
योग व्यर्थ है औ उपासना चिर निष्फल है,
आडम्बर है धर्म, पाठ–पूजा सब छल है।

[८६]

मानव का उद्धार न होगा आराधन से,
होगा उत्तम साध्य सिद्ध केवल साधन से;
श्रेय–शान्ति का मार्ग सर्वदा मुक्ति–अभय है,
ज्ञान–शक्ति से जेय असुर का दुष्ट अनय है।

८५—अर्थ हृदय में असुरों के भय के सदा क्लेश से दुःखी रहने वाला तथा भय के बन्धन में पलने वाला पुरुष रोली-चन्दन से पूजने पर पवित्र नहीं हो सकेगा। ऐसी स्थिति में योग–साधना व्यर्थ है और ईश्वर की उपासना सदा निष्फल है। शक्ति के बिना धर्म एक आडम्बर है और पूजा-पाठ सब धोखा है।

८६—अर्थ मनुष्य का उद्धार भगवान की आराधना (पूजा-पाठ) से नहीं होगा। उत्तम साध्य की सिद्धि केवल साधना से ही प्राप्त हो सकती है। कल्याण और शान्ति का मार्ग सर्वदा स्वच्छन्द निर्भयता है। असुर की दुष्ट अनीति पर विजय ज्ञान और शक्ति के द्वारा ही प्राप्त की जाती है।

[८७]

धर्म बनाकर जड़ देवो के आराधन को,
बना रहे नर कठिन नित्य भय के बन्धन को;
दे पाहन को अर्घ्य जोड़ युग कम्पित कर को,
करुणा दृगो से देख रहे मानव ऊपर को।

[८८]

अवनी के आदर्श स्वर्ग के नित्य निवासी,
पाकर सुख का स्वर्ग देव भी हुये उदासी;
होकर तन्मय मुक्त भोग मे चिर यौवन के,
भू को भूले और ध्येय अपने जीवन के।

८७—अर्थ जड़ (पत्थर के) देवताओं की पूजा को धर्म बनाकर मनुष्य भय के बन्धन को दृढ़ बना रहा है। मानव पत्थर के देवताओं पर अपने काँपते हुए दोनों हाथों को जोड़कर जल चढ़ाता है और अपने करुणा पूर्ण नेत्रों मे ऊपर को देखकर भगवान से अपनी रक्षा की प्रार्थना करता है।

८८—अर्थ जो स्वर्ग पृथिवी का आदर्श है। उस स्वर्ग मे नित्य रहने वाले स्वर्ग के निवासी देवता भी स्वर्ग का सुख पाकर अब उदासीन हो रहे हैं। अनन्त यौवन के स्वच्छन्द भोग में लीन होकर वे देवता पृथिवी को भूल गये और अपने जीवन के लक्ष्य को भी भूल गये।

[८६]

जिनका स्वर्ग निवास नरों ने साध्य बनाया;
कर पूजा व्रत जिन्हें नित्य आराध्य बनाया;
सत्व-रूप वे देव राग के वन अनुरागी,
रति विलास में मग्न हुये पुण्यों के भागी।

[९०]

नर-देवों की उर्ध्वमुखी सात्विक चेतनता,
अतः काम का भोग सदा उनका क्षय बनता;
लास, नृत्य औ रति विलास में तन्मय रहते,
होकर दुर्बल देव पराजय सन्तत सहते।

८६—अर्थ जिन देवताओं के स्वर्ग निवास को मनुष्यों ने अपने जीवन का लक्ष्य तथा पूजा, व्रत, ध्यान आदि करके जिनकी आराधना की, वे सत्व रूप (सतोगुण) देवता राग (रजोगुण) के अनुरागी बनकर पुण्य के भागी देवता रति और विलास में लीन हो गये।

९०—अर्थ मनुष्यों और देवताओं की सात्विक चेतनता उर्ध्वमुखी होती है अर्थात् जिसकी गति सदा ऊपर की ओर होती है। (उन दोनों का) काम का भोग सदा उनके क्षय का कारण बनता है। वे प्रेमलीला, नृत्य तथा रति विलास में लीन रहे। इसलिए देवता दुर्बल होकर सदैव असुरों के सामने पराजय की ग्लानि सहते रहे।

[६१]

ये किन्नर गन्धर्व यक्ष विद्याधर सारे,
नन्दन के रति पथ मे बनकर अनुग तुम्हारे;
बना कला को कामदेव की सुन्दर दासी,
बने तुम्हारे सग हीनता के अभ्यासी।

[६२]

कल्पलता–सी तन्वगी तन्मय लहराती,
भर कर कोकिल कठ राग मधु रति के गाती;
लीला–साधन रम्य तुम्हारी ये अप्सरियाँ,
मनोवृत्ति की मूर्ति तुम्हारी ये किन्नरियाँ।

६१—अर्थ ये किन्नर, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर सब नन्दनवन की प्रेमलीला के मार्ग में तुम्हारे अनुगामी बन गये। इन सबने कला को कामदेव की सुन्दर दासी बना दिया अर्थात् कला को विलास का साधन बना दिया, और वे सब तुम्हारे (देवताओं के) साथ अपने को हीनता के अभ्यासी बन गए अर्थात् हीनता इनका स्वभाव बन गई।

६२—अर्थ कल्पलता के समान सुकुमार अंग वाली और नृत्य, सगीत की लहरों में तन्मय होकर लहराती हुई तथा कोकिल के समान मधुर कण्ठ में भरकर रति–विलास के मधुर राग गाती हुई, तुम्हारे लीला–विलास की साधन ये सुन्दरी अप्सरायें तथा तुम्हारी विलासमयी मनोवृत्ति की साक्षात् प्रतिमा के समान ये किन्नरियाँ आज राक्षसों द्वारा पीड़ित हो रही हैं।

[६३]

आज उन्हें निर्यातित करते अत्याचारी,
दुर्बलता पर आज तुम्हारी ये बलिहारी;
बनी प्रियायें आज तुम्हारी उनकी दासी,
निर्वासित तुम आज स्वर्ग के चिर अधिवासी।

[६४]

देखो उजड़ा आज चतुर्दिक स्वर्ग तुम्हारा,
हुआ असुर का वित्त स्वर्ग का वैभव सारा;
हुआ स्वर्ग का शासक अपने से निस्पृह-सा,
वैजयन्त बन गया शची को कारागृह-सा;

६३—अर्थ आज उन अप्सराओं और किन्नरियों को अत्याचारी राक्षस पीड़ित कर रहे हैं। आज तुम्हारी दुर्बलता पर ये बलिहारी जाती हैं। आज वे तुम्हारी प्रियायें उन राक्षसों की दासी बन रही हैं। स्वर्ग में नित्य निवास करने वाले तुम देवताओं को आज स्वर्ग से निर्वासित कर दिया है।

६४—अर्थ देखो आज तुम्हारा यह स्वर्ग चारों ओर से उजड़ा हुआ है। स्वर्ग का सम्पूर्ण वैभव आज राक्षसों की सम्पत्ति बन गया है। आज स्वर्ग का शासक अपने से ही विरक्त-सा हो गया है और शची का वैजयन्त (महल) उसके लिए कारागार के समान हो गया है (शची उस से बाहर निकल कर विहार नहीं कर सकती।)

[६५]

यह पुण्यों का स्वर्ग पाप बन गया तुम्हारा,
वह सदेह अमरत्व शाप बन गया तुम्हारा;
बना यातना-देह तुल्य यह सात्विक तन भी,
विडम्बना बन गया आज स्वर्गिक जीवन भी।

[६६]

काम तुम्हारा बन्धु शत्रु का चर बन आया,
बनी तुम्हारी हार उसी की मोहन माया;
उसे भस्म कर तुम्हे ईश ने मार्ग दिखाया,
नही योग मे अभी शक्ति को तुमने पाया।

६५—अर्थ यह पुण्यों का प्राप्त स्वर्ग आज तुम्हारा पाप (के समान दुःखपूर्ण) बन गया है, तुम्हारी देह सहित अमरता आज तुम्हारे लिए शाप बन गई है, (क्योंकि तुम्हारे दुःखों का अमर होने के कारण अन्त नहीं।) तुम्हारा यह सात्विक शरीर यातनाओं के शरीर के समान अविनाशी है। आज स्वर्ग का जीवन भी तुम्हारे लिए एक विडम्बना बन गया है।

६६—अर्थ जो कामदेव तुम्हारा बन्धु था, वही शत्रु का दूत बन गया और उसकी मन को विमोहित करने वाली माया में लीन होने से ही तुम्हारी हार हुई। उस कामदेव को शिव ने भस्म कर दिया और तुम्हें विजय का मार्ग दिखाया, किन्तु अभी योग की साधना में तुमने शक्ति को नहीं पाया।

[६७]

कर लेता है काम वास जिनके मृदु मन में,
दुष्कर होता ध्यान योग उनके जीवन में;
क्रिया योग है सफल मार्ग उनका हितकारी,
इसी मार्ग से जयलक्ष्मी आ रही तुम्हारी।

[६८]

हे नर के आदर्श देवता ! अब तुम जागो !!
अवनी के आराध्य ! स्वर्ग के वासी जागो !!
अब तुम जय के हेतु भोग की तन्द्रा त्यागो !
अपने से ही आज विजय का वर तुम माँगो !!

६७—अर्थ जिनके कोमल मन में कामदेव का निवास हो जाता है, उनके लिए जीवन में ध्यान और योग करना कठिन हो जाता है। उनका हितकारी और सफल मार्ग क्रिया योग है। तुम्हारी विजय की लक्ष्मी इसी (क्रियायोग के) मार्ग से आ रही है। (तुम्हारे योग के द्वारा ही विजय प्राप्त होगी।)

६८—अर्थ हे मनुष्यों के आदर्श देवता ! अब तुम जागो !! पृथिवी की आराधना के लक्ष्य ! स्वर्ग में निवास करने वालो अब जागो !! अब तुम विजय के लिए अपनी भोग की खुमारी को छोड़ दो और आज अपने से ही तुम विजय का वरदान माँगो। (अर्थात् स्वावलम्बी बनकर अपनी शक्ति-साधना के बल पर विजय प्राप्त करो।)

[९९]

जगा रही कैलास शिखर की निर्मल द्राभा,
जगा रही है तुम्हें स्वर्ग की उजडी आभा;
जगा रही है नन्दन की उजडी फुलवारी,
जगा रही वह वैजयन्त की भग्न ग्रटारी।

[१००]

ग्रप्सरियों की लाज दे रही तुम्हे चुनौती,
किन्नरियों की मर्यादा कर रही मनौती;
चिर कुमारियाँ नही ग्राज हैं रति की प्यासी,
ग्राज शक्ति के सरक्षण की वे ग्रभिलाषी।

९९—अर्थ कैलाश शिखर की निर्मल संध्या तुम्हें जगा रही है, स्वर्ग की उजड़ी छवि तुम्हें जगा रही है, नन्दनवन की उजड़ी हुई फुलवारी तुम्हें जगा रही है, उस वैजयन्त की खण्डित ग्रटारी तुम्हें जगा रही है। (शिव का शक्ति संदेश और स्वर्ग की दुर्दशा तुम्हें सचेत कर विजय के उद्योग की प्रेरणा दे रही है।

१००—अर्थ स्वर्ग की अप्सराओं की लाज तुम्हें चुनौती दे रही है, किन्नरियों की मर्यादा तुम्हें प्रतिशोध के लिए मना रही है; चिर कुमारी अप्सरायें आज भोग-विलास की प्यासी नहीं हैं, आज तो वे अप्सरायें शक्ति के संरक्षण की कामना कर रही हैं।

[१०१]

आज इन्द्र का वज्र तुम्हारे बल का कामी,
वाचस्पति का ज्ञान शक्ति-सम्बल का कामी;
आज विश्व का धर्म अभय जय का अभिलाषी,
विश्व श्रेय की आज तुम्हारी जय हो आशी।

[१०२]

अमरावती निहार रही पथ देव विजय का,
वैजयन्त कर रहा प्रतीक्षण सदा अभय का;
करने को अनुसरण समुत्सुक सुरपति मानी,
राह देखती विजय तिलक लेकर इन्द्राणी।

१०१—अर्थ इन्द्र का वज्र आज तुम्हारे बल (के सहयोग) की इच्छा रखता है, वाचस्पति गुरु बृहस्पति का ज्ञान आज शक्ति के सहयोग का अभिलाषी है। विश्व का धर्म आज अभयपूर्ण विजय की कामना करता है। आज तुम्हारी विजय विश्व के कल्याण का आशीर्वाद हो।

१०२—अर्थ अमरावती देवताओं की विजय का मार्ग देख रही है और वैजयन्त सदा से अभय की प्रतीक्षा कर रहा है। स्वाभिमानी स्वर्ग के अधिपति इन्द्र आज तुम्हारा अनुसरण करने के लिए उत्सुक खड़े हैं। विजय का तिलक करने के लिए इन्द्राणी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

[१०३]

आज मदन की धूल दिव्य निज तन मे धारो,
शक्ति-स्वरुप त्रिशूल-धनुष पर वीणा वारों;
प्रलयकर टकार त्रिजग के नभ मे बोले,
आज तुम्हारे ताण्डव से यह त्रिभुवन डोले।

[१०४]

यदि तुमने है मुझे चुना अपना सेनानी,
यदि तुम हो सब अभी दिव्यता के अभिमानी;
राजसभा से उठकर सब नन्दन मे आओ,
भोग भूमि को आज योग का क्षेत्र बनाओ।

१०३—अर्थ अपने दिव्य शरीरों पर आज तुम भस्म हुए कामदेव की धूल को लगा लो अर्थात् भोग विलास से विरक्त होकर तथा शक्ति-स्वरुप त्रिशूल और धनुष पर अपनी वीणा को न्योछावर कर दो अर्थात् शक्ति साधना के लिए कला का लीला-विलास छोड़ दो। तीनों लोकों के आकाश मे आज (धनुष की) प्रलयकारी टकार गूंज जाये और तुम्हारे ताण्डव से आज त्रिभुवन कॉपने लग जाये।

१०४—अर्थ यदि तुम लोगों ने मुझे अपना सेनानी चुन लिया है, यदि तुम सबको अभी अपनी दिव्यता का अभिमान है, तो तुम सब राजसभा से उठकर नन्दनवन में आओ और अपनी इस रति विलास की भूमि को आज योग और साधना का क्षेत्र बनाओ।

[१०५]

अस्त्रों का अभ्यास बनेगा नृत्य हमारा,
शक्ति योग ही होगा केवल कृत्य हमारा;
सत्व-ज्ञान से महा शक्ति जब अन्वित होगी,
तब असुरो से आप विजय श्री अर्पित होगी।"

[१०६]

सुन कुमार के वचन देव सपने से जागे,
देखे भूत भविष्य सभी ने अपने आगे;
हो उद्वेलित सभी ओज से निज अन्तर में,
बोल उठे सब एक साथ ऊर्जित प्लुत स्वर मे।

१०५—अर्थ अब अस्त्रों का अभ्यास ही हमारा नृत्य होगा तथा अब केवल शक्ति की साधना ही हमारा मुख्य कर्म होगा। महाशक्ति जब सात्विक ज्ञान से युक्त होगी, तभी असुरों से विजय लक्ष्मी हमें स्वयं प्राप्त हो जायेगी।

१०६—अर्थ कुमार के वचनों को सुनकर देवता मानों स्वप्न में से जाग गये तथा भूत भविष्य सभी अपने सामने दिखाई दिये। (उनको अतीत की पराजय और वर्तमान दुर्दशा के कारण तथा भावी विजय की सम्भावना के साधन स्पष्ट दिखाई देने लगे।) ओज के कारण सभी अपने हृदय में उमड़ पड़े और ऊँचे स्वर मे एक साथ सब बोल उठे-

[१०७]

"धन्य हुये हम आज प्राप्त कर निज सेनानी,
जीवन-जय की आज सरणि हमने पहचानी;
हम जाग्रत हैं आज शक्ति साधन करने को,
हम उद्यत हैं आज अमर हो भी मरने को।

[१०८]

सेनानी के साथ आज अभियान हमारा,
होगा साधन आज विजय वरदान हमारा।"
'सेनानी की जय' के गूँजे घोष गगन में,
उठा ज्वार-सा नव जीवन का सभा भवन में।

१०७—अर्थ "अपना सेनानी प्राप्तकर आज हम कृतार्थ हो ग जीवन में विजय प्राप्त करने का मार्ग आज हमने प चान लिया। आज हम शक्ति की साधना करने के लिए जाग्रत हैं, आज ह अमर होकर भी मरने के लिए उद्यत हैं।

१०८—अर्थ आज सेनानी के साथ हम युद्ध के लिए प्रयाण करेंगे, हमारी साधना ही आज हमारे लिए विजय का वरदान होगी।" आकाश में 'सेनानी की जय' के नारे गूँजने लगे, सभा भवन में नये जीवन का ज्वार-सा उठा।

सर्ग ३

तारक-वध

चिर विलास को त्याग कर देवताओं की शक्ति-साधना,
स्वर्ग के कल्पान्तर, शोणितपुर पर अभियान
तथा तारक के वध का वर्णन ।

[९]

देख प्रलय-परिवर्त्तन सहसा देवों के वे क्रीड़ा कुंज,
पुष्पों के सौरभ से पूरित लता और तरुओं के पुंज;
खड्गों की विद्युत ज्वाला औ अस्त्रों का उल्का-विस्तार,
देख रहे तरु-लता चमत्कृत अयुत पत्रदल-नयन पसार।

[१०]

नन्दन वन की प्रकृति हो रही विस्मित यह कल्पान्तर देख
ज्वाला से हो रहा गगन में अंकित नये सर्ग का लेख,
सजग स्वर्ग के उदयाचल पर नई क्रान्ति का ले सन्देश;
किस नवयुग की दिव्य उषा ने किया प्रभा से पूर्ण प्रवेश,

९—अर्थ देवताओं के वे क्रीड़ा-निकुञ्ज तथा पुष्पों के सौरभ से पूर्ण लताओं और वृक्षों के समूह स्वर्ग में यह अचानक प्रलयंकर परिवर्तन देखकर तलवारों की बिजली की ज्वाला और अस्त्रों की उल्काओं का विस्तार नन्दनवन के चकित वृक्ष और लतायें अपने अनेक पत्रों के नयन पसार कर देख रहे थे।

१०—अर्थ स्वर्ग का यह कल्पान्तर देखकर नन्दनवन की प्रकृति चकित हो रही थी। अस्त्रों की ज्वाला से आकाश में नई सृष्टि का लेख अंकित हो रहा था। जाग्रत स्वर्ग के उदयाचल पर एक नवीन क्रान्ति का सन्देश लेकर किस नवयुग की दिव्य उषा ने प्रभा से पूर्ण प्रवेश किया। (सैनिक शिक्षा में सक्रिय देवताओं के आरक्त मुखमण्डल उषा के समान आभासित हो रहे थे)

[११]

जिसकी आभा में नन्दन में खिलता एक अनोखा दृश्य,
उद्घाटित होता देवों को जीवन का अज्ञात रहस्य;
मानस की लहरों में करते रहे सदा जो वार-विहार,
होता उनको विदित मुक्ति हित अवगाहन का गुरु व्यापार।

[१२]

पदाघात से सुन्दरियों के फूला जिनका हृदय-अशोक,
खिलता उनके ही आनन पर आज अपूर्व तेज-आलोक,
रही नाचती जिन नयनों में लीलामय अप्सरियाँ बाल,
उन्ही मदिर नयनों में जागी आज प्रलय की भीषण ज्वाल।

११—अर्थ उस नवयुग की दिव्य उषा की आभा में नन्दनवन में एक अनोखा दृश्य खिल रहा था। वह उषा की आभा देवताओं को शक्ति-साधना का अज्ञात रहस्य उद्घाटित कर रही थी। हृदयरूपी मानस की लहरों में जो ऊपर ही ऊपर स्वच्छन्द विहार करते रहे, उन देवताओं को अब मुक्ति (स्वतन्त्रता और मोती) के लिए गहरे पैठने के कठिन कर्म का ज्ञान हो रहा था।

१२—अर्थ सुन्दरियों के पदाघात से जिनका हृदयरूपी अशोक (शोक रहित हृदय) फूलता था, उन्हीं देवताओं के मुख पर आज एक अनोखे तेज का प्रकाश खिल रहा था। देवताओं की जिन आँखों में लीलामयी बाल अप्सरायें नाचती थीं, उन्हीं यौवन, विलास और सुरा से मदिर आँखों में आज प्रलय की भीषण ज्वाला जग रही थी।

[१३]

किन्नरियों के मधुर गीत से परिचित रहे सदा जो कान,
करते उनको सजग धनुष के घोष और खण्डित पाषाण;
मंजरियों-सी मृदुल अँगुलियाँ करती कलियों की मनुहार,
खींच रही प्रत्यंचा धनु की करती ध्वनित घोर टंकार।

[१४]

बालाओं के आलिंगन से रहा प्रपीडित कोमल वक्ष,
ज्वार समुद्र सदृश उद्वेलित आज ओज से उठा समक्ष;
क्रीड़ा कुंजों में जाना था जिन चरणों ने रम्य विहार,
आज वही पद सीख रहे ये रण का दृढ़ नियमित आचार।

१३—अर्थ देवताओं के जो कान अब तक किन्नरियों के मधुर गान को ही पहचानते थे, उन कानों को अब धनुष की टंकारें और बाणों से खण्डित होकर गिरते हुए पाषाणों के शब्द सजग करते थे। आम की मंजरियों के समान देवताओं की कोमल अँगुलियाँ, जो कलियों के समान नवोढ़ा अप्सराओं की मनुहार करती थीं, आज धनुष की प्रत्यंचा खींच रहीं थीं और घोर टंकार की ध्वनि कर रही थीं।

१४—अर्थ नवोढ़ा अप्सराओं के आलिंगन से देवताओं का जो कोमल वक्ष पीड़ित रहा था, वह आज ज्वार के समुद्र के समान उमड़कर ओज से सामने उठा। देवताओं के जिन चरणों ने क्रीड़ा-निकुंजों में सुन्दर विहार जाना था, आज देवताओं के वे चरण युद्ध का कठोर और नियमित आचार (गति) सीख रहे थे।

[१५]

जिस जीवन को रहा विनोदित करता मधुर प्रणय का मर्म,
कठिन परुष व्यापार प्रलय का आज बना था उसका धर्म;
गर्वित थी गृह में अप्सरियाँ देख प्रियों का काया कल्प,
उठते उनके भी हृदयों में अविदित नये नये संकल्प।

[१६]

देख पराक्रम कर्म सुरों का रही दिशायें मुक्ता वार,
पुलक उठी प्राची में ऊषा हर्ष गर्व से उसे निहार;
बन्द हुआ अस्त्रों का रव औ वीरों का हुंकृत जयनाद,
प्रतिबिम्बित हो रहा प्रकृति में मौन सुरों का उर-आह्लाद।

१५—अर्थ देवताओं के जिस जीवन को मधुर प्रेम का रहस्य विनोद (हास-परिहास) से भरता रहा था, आज युद्ध रूपी प्रलय का कठोर कार्य उनके उस जीवन का धर्म बन रहा था। स्वर्ग-लोक की अप्सरायें अपने प्रियतमों का यह कायाकल्प देखकर घरों में गर्व का अनुभव कर रहीं थीं। स्वर्ग के इस कल्पान्तर से सम्भव होने वाले नवीन भविष्य की कल्पनायें करके अप्सराओं के मन में नये नये और अज्ञात संकल्प उठते थे।

१६—अर्थ युद्ध की शिक्षा में देवताओं का पराक्रम देखकर दिशायें उन पर नक्षत्रों के मोती न्योछावर कर रही थीं। प्राची दिशा में उषा देवताओं के पराक्रम को देखकर हर्ष और गर्व से पुलकित हो रही थी। उषा का उदय होने पर देवताओं की अस्त्र शिक्षा बन्द हो गई तथा अस्त्रों का घोष और देवताओं का हुँकार बन्द हो गया। नन्दन-वन की प्रातःकालीन प्रकृति के उल्लास में देवताओं के हृदय का आह्लाद प्रतिबिम्बित हो रहा था।

[१७]

सेनानी के संग मकर-से देव सरों में कर शुचि स्नान,
करने लगे निभृत कुंजों में और शिलाओं पर ध्रुव ध्यान;
वह निशान्त की युद्ध भूमि थी बनी योग शाला शुचि प्रात,
वीर देव, सैनिक सेनानी वे ही थे योगी अभिजात।

[१८]

बना तपोवन-सा नन्दन था अकस्मात किस साधन हेतु,
नर मुनियों का साध्य स्वर्ग अब बनता किस द्युलोक का सेतु;
रहे भोग की लीलाओं से गुंजित जो तरु तल औ कुंज,
मौन योग से आज कर रहे संचित कौन पुण्य का पुंज।

१७—अर्थ सेनानी के साथ मकर के समान देवताओं ने नन्दन-वन के सरोवरों में पवित्र स्नान किया, फिर वे गहरी कुंजों में और शिलाओं पर अटल ध्यान करने लगे। नन्दनवन की वही भूमि, जो निशा के अन्तिम पहर में युद्ध-स्थिता की स्थली बनी थी, अब प्रातःकाल में पवित्र योगशाला बन रही थी। वीरता के अभ्यासी देवता, बहुक सैनिक और सेनानी अब अभिजात (श्रेष्ठ और कुलीन) योगी बन रहे थे।

१८—अर्थ नन्दनकानन अकस्मात किस साधना के हेतु तपोवन सा बन गया था। जो स्वर्ग मनुष्यों और मुनियों की साधना का लक्ष्य है, वह अब किस ज्योतिर्लोक का सेतु (मार्ग, साधन) बन रहा था। जो तरु मूल और कुञ्ज भोग की लीलाओं से गुंजित रहे थे, वे मौन योग की साधना से आज किन पुण्यों के समूह का संचय कर रहे थे।

[१९]

सालस तन्द्रिल पलक रहे जो करते मदिर रूप का ध्यान,
आज निमीलित किस अरूप के हुये ध्यान में अन्तर्धान;
जिन कानों में रहा गूँजता नूपुर और गान का नाद,
आज स्तब्ध हो वही सुन रहे कौन अपरिचित अन्तर्नाद।

[२०]

सुरा और चुम्बन के मधु स्वर नाचे जिन पर बन मधुगान,
उन अधरों का मौन मन्त्र जप बनता आज अपूर्व विधान;
रहे प्रणय की परिचर्या में कुशल बाहु अङ्गुलि औ हाथ,
आज योग की मुद्राओं से होते वे निस्पन्द सनाथ !

१९—अर्थ वासना की अलसता से तन्द्रायुक्त देवताओं के जो पलक अप्सराओं के मादक रूप का ध्यान करते रहे, आज वे निमीलित (बन्द होकर) होकर किस अरूप (रूप रहित आत्मतत्त्व) के ध्यान में अन्तर्धान (लीन) हो रहे थे। देवताओं के जिन कानों में नृत्य करती हुई अप्सराओं के नूपुरों का निस्वन और उनके संगीत का स्वर गूँजता रहा था, आज उनके वे कान स्तब्ध (शान्त) होकर कौनसा अपरिचित (अविदित) अन्तर्नाद (आत्मा का आन्तरिक संगीत) सुन रहे थे।

२०—अर्थ सुरापान और प्रेमचुम्बन की मादकता के स्वर जिन अधरों पर मधुरगान बनकर नृत्य करते थे, देवताओं के वे अधर आज मौनरूप से किसी साधना के मन्त्र का जप कर रहे थे। आज उनका यह जप उनके जीवन का एक अपूर्व विधान बन रहा था। देवताओं के जो बाहु, अंगुलियाँ और हाथ प्रणय (प्रेम) की परिचर्या (सेवा, क्रिया-कलाप) में अब तक कुशल रहे थे, आज वे ही बाहु, अंगुलियाँ और हाथ योग की विभिन्न मुद्राओं में निस्पन्द रूप से लगे हुए थे, और इसी में अपने को सनाथ मान रहे थे।

[२१]

सदा वासना से रोमांचित रहता था जो सुन्दर गात,
आज वही पुलकित अपूर्व किस ओज स्फूर्ति आभा मे स्नात,
मधुरति के लीलाभिसार में रहे सदा जो चरण प्रवीण,
किस श्री के साधन निमित्त वे पद्मासन मे दृढ आसीन।

[२२]

आँख मिचौनी में लीला की रहे भटकते आकुल प्राण,
बना आज आयाम उन्ही का किस स्थिति का धारण औ ध्यान;
मधु मरीचिका में यौवन की रहा भ्रमित जो मन कुरंग,
किस समाधि में आज वही दृढ हुआ सहज बन कर निस्संग।

२१—अर्थ देवताओं के जो सुन्दर शरीर सदा काम की वासना से रोमाँचित रहते थे, आज उनके वे ही शरीर किस अपूर्व ओज की स्फूर्ति की आभा में स्नान करके पुलकित और कान्तिमान हो रहे थे। देवताओं के जो चरण सदा मधुर काम विलास के लीलामय अभिसार मे प्रवीण रहे थे, उनके वे चरण आज किस श्री (शक्ति, विभूति तथा तेजोमयी कान्ति) की साधना के लिए दृढ़ता पूर्वक बैठकर पद्मासन लगा रहे थे। (पद्म अर्थात् कमल श्री का आसन है)

२२—अर्थ देवताओं के जो प्राण प्रेमलीला की आँख मिचौनी मे आकुलता पूर्वक भटकते रहे, आज प्राणायाम के द्वारा देवता उन प्राणों का संयम किस आध्यात्मिक स्थिति की धारणा और उसके ध्यान के लिए कर रहे थे। देवताओं का जो मनरूपी मृग यौवन की मधुर मरीचिका में भटकता रहा, आज उनका वही मन सहज भाव से असंग (अनासक्त) बनकर किस योग की समाधि में दृढ़ हो रहा था।

[२३]

उमड़ रहा अन्तर में अविदित कौन शक्ति का अक्षय स्रोत,
रोम रोम हो रहा ओज के आप्लावन से ओतप्रोत;
शक्ति पुत्र वन देव कर रहे सफल योग–पुण्यो का ओघ,
योग–भूमि मे सिद्ध हो रहा विजय मन्त्र अनिवार्य अमोघ।

[२४]

कल्पान्तर हो गया स्वर्ग का सफल हुआ शिव का वरदान,
उत्कंठित हो उठे युद्ध के लिए विजित देवों के प्राण;
भूल गई संभ्रान्त स्वप्न–सा अमरावती अनन्त विलास,
देव कर्म बन गया योग औ अस्त्रों का सन्तत अभ्यास।

२३—अर्थ योग की इस साधना से देवताओं के अन्तर में शक्ति का एक अज्ञात और अक्षय स्रोत उमड़ रहा था। देवताओं का रोम-रोम ओज के प्रभाव से ओत प्रोत हो रहा था। शक्ति के पुत्र बनकर आज देवता योग साधना से प्राप्त पुण्यों के समूह को सफल बना रहे थे। नन्दनवन की योग भूमि में शक्ति और योग की समन्वित साधना में विजय का अनिवार्य और अविफल मन्त्र सिद्ध हो रहा था।

२४—अर्थ शक्ति और योग की समन्वित साधना के द्वारा स्वर्ग का कल्पान्तर हो गया अर्थात् स्वर्ग में एक नवीन कल्प (युग) आरम्भ हो गया। स्वर्ग के इस कल्पान्तर में देवताओं को दिया हुआ शिव का विजय वरदान सफल हो गया। इस कल्पान्तर से प्रेरित होकर अनेक बार पराजित देवताओं के प्राण युद्ध के लिए उत्कण्ठित हो उठे। इन्द्रपुरी अमरावती एक वैभव पूर्ण और भ्रान्तिमय स्वप्न के समान पूर्व के विलास को भूल गई। योग की साधना और अस्त्रों का निरन्तर देवताओं का नित्य कर्म बन गया।

[२५]

मिली स्वर्ग के परिवर्तन से अप्सरियों को नूतन दृष्टि,
चिर यौवन विलास से प्रियतर लगी जयी जीवन की सृष्टि;
सजग हुआ उनके अन्तर में नारी का अन्तर्हित मर्म,
सेनानी का सम्भव उनको विदित हुआ जीवन का धर्म ।

[२६]

अवनी की आकांक्षाओं का सुन्दर स्वप्न-स्वर्ग अविकार,
आज अनन्त क्षितिज पर यौवन के निज अचल छोर पसार;
माँग रहा नत-सिर हो भू से पुनः सृष्टि का चिर वरदान,
आज सृजन के मधुर मर्म में प्रकट हुआ जीवन-विज्ञान ।

२५—अर्थ शक्ति और योग की समन्वित साधना से स्वर्ग में जो परिवर्तन हुआ, उससे अप्सराओं को भी जीवन का एक नया दृष्टिकोण मिला, अब उनको अनन्त यौवन के विलास से विजयी जीवन की सृष्टि अधिक प्रिय प्रतीत होने लगी अर्थात्, सेनानी के समान असुरों को विजय करने वाली सन्तति में उन्हें यौवन की सार्थकता विदित हुई। यौवन के विलास में भूली हुई अप्सराओं के अन्तर में अन्तर्हित (छिपा हुआ) नारी के मातृत्व का मर्म सजग हुआ। कुमार कार्त्तिकेय के समान वीर सेनानी के जन्म में उनको जीवन के धर्म का सार विदित हुआ।

२६—अर्थ जिस स्वर्ग में यौवन का क्षय नहीं होता और जो स्वर्ग पृथिवी की आकाँक्षाओं का सुन्दर स्वप्न है, वह स्वर्ग आज अपने यौवन के अनन्त क्षितिज पर अपने अंचल का छोर पसारकर तथा अपना शीश झुकाकर पृथिवी से सृजन का चिरन्तन वरदान फिर माँग रहा था। आज स्वर्ग के निवासियों को सृजन के मधुर मर्म में जीवन का रहस्य विदित हुआ।

[२७]

आज शची के अभ्यन्तर में उदित हुआ अविदित वात्सल्य,
मिला जयन्त वीर में अक्षय यौवन का अनुपम साकल्य;
बोली ओज भरी करुणा से, "मेरे औरस वीर कुमार !
करो शक्ति साधन से दिव का और धरा का तुम उद्धार।

[२८]

यह यौवन की शक्ति योग से होगी देव-विजय का मंत्र,
अस्त्रों का अभ्यास बनेगा निर्भयता का शाश्वत तंत्र;
ज्योतिष्पीठ बने साधन का वैजयन्त यह वैभव धाम,
बने विजय के पुण्य पर्व में सार्थक पुत्र ! तुम्हारा नाम।"

२७—अर्थ जिन इन्द्राणी ने पुत्रवती होते हुए वात्सल्य का महत्व नहीं समझा था, उन इन्द्राणी के हृदय में आज अविदित वात्सल्य उदित हुआ। आज उनको वीर जयन्त के रूप में अपने अक्षय यौवन की अनुपम सफलता का अनुभव हुआ। वे इन्द्राणी ओजपूर्ण करुणा के स्वर से बोली—"मेरे औरस वीर पुत्र ! तुम शक्ति की साधना के द्वारा स्वर्ग और पृथिवी का उद्धार करो।

२८—अर्थ यह यौवन की शक्ति योग के समन्वय से देवताओं की विजय का मन्त्र बनेगी। अस्त्रों का अभ्यास विश्व की निर्भयता का स्थायी तन्त्र बनेगा। हमारा यह वैभव का धाम वैजयन्त प्रासाद विजय की साधना का ज्योतिष्-पीठ (ज्योतिर्मय तेजस्वी पीठ) बनें। देवताओं की विजय के पुण्य पर्व में तुम्हारा जयन्त (विजयशील) नाम सार्थक हो।

[२९]

मनुहारों से रहा प्रफुल्लित जो अप्सरियों का गुरु मान,
बना प्रियों के वीर दर्प का आज गर्व गर्वित अभिमान;
आलिंगन को रहे सदा जो उत्सुक मुग्ध मनोहर हाथ,
आकुल होते विजय तिलक से वे होने को आज सनाथ।

[३०]

शक्ति योग की निष्ठ साधना, अस्त्रों का सन्तत अभ्यास,
देव कुमारों के पौरुष में सफल हुए बन कर विश्वास,
शक्ति और कौशल की काष्ठा बनी अभय का चिर वरदान,
होने लगे प्राण उत्कण्ठित करने को रण का अभियान।

२९—अर्थ जो अप्सरायें अपने महामान में देवकुमारों की मनुहारों से प्रफुल्लित होती रहीं, वे ही अप्सरायें आज शक्ति-साधना करने वाले अपने प्रियतमों के वीर दर्प पर गर्व से गर्वित होकर अभिमान कर रही थीं। अप्सराओं के जो मुग्ध और सुन्दर हाथ सदा आलिंगन के लिए उत्सुक रहे, उनके वे हाथ आज असुरों को पराजित कर लौटने वाले विजयी देवकुमारों के मस्तक पर विजय-तिलक करके सनाथ होने के लिए आकुल हो रहे थे।

३०—अर्थ निष्ठापूर्वक शक्ति-योग की साधना और अस्त्रों का निरन्तर अभ्यास ये दोनों देवकुमारों के अभिनव पौरुष में नवीन विश्वास बनकर सफल हुए। शक्ति और युद्ध-कौशल की जो पराकाष्ठा (सीमा) देवताओं ने प्राप्त की, वह उनके लिए अभय का स्थायी वरदान बन गई। इस प्रकार नवीन शक्ति-साधना से प्रेरित होकर युद्ध का अभियान करने के लिए देवताओं के प्राण उत्कंठित होने लगे।

[३१]

सेनानी ने अभिमंत्रण कर शक्र और सुर गुरु के संग,
रखा देव वीरों के सन्मुख महा युद्ध का कठिन प्रसंग;
बोल उठे सब एक कण्ठ से तारस्वर में वीर पुकार,
"देवों के बल औ कौशल की यही परीक्षा अन्तिम बार।"

[३२]

असुरों के आतंक त्रास से रहते जो कम्पित औ भीत,
हुए पूर्व-संस्कार आज किस साधन से उनके विपरीत,
उमड उठा कोमल हृदयों में किस पौरुष का नव उत्साह,
फूट पडा निश्चल मानस से किस प्रपात का तूर्ण प्रवाह।

३१—अर्थ देव-सेनानी स्कन्दकुमार ने इन्द्र और गुरु बृहस्पति के साथ मन्त्रणा (सलाह) करके वीर देवकुमारों के सामने महायुद्ध का कठिन प्रसंग रखा, तो सब वीर देव-कुमार एककण्ठ से उच्च स्वर में बोल उठे—"देवताओं की शक्ति और उनके कौशल की इस युद्ध में अन्तिम बार परीक्षा होगी।

३२—अर्थ असुरों के आतंक (भय) और त्रास (उत्पीड़न) से जो देवता काँपते और डरते रहते थे, आज उन देवताओं के वे पूर्व संस्कार किस साधना से विपरीत हो गये अर्थात् बदल गए। देवताओं के कोमल हृदयों में किस पौरुष का नवीन उत्साह उमड़ पड़ा। उनके अचल मानस (हृदय रूपी मानसरोवर) से किस प्रपात का तीव्र प्रवाह फूट पड़ा अर्थात् देवताओं का जो हृदय अब तक निराशा में निष्क्रिय रहा था, उसमें युद्ध की ओजस्वी क्रिया का उत्साह प्रपात के समान फूट पड़ा।

[३३]

फड़के कर्कश बाहु, सिन्धु-सा उमडा उनका उन्नत वक्ष,
अन्तर का आवेश वदन की हुआ लालिमा मे प्रत्यक्ष;
पूर्व शोक जागरित हुए सब बन कर पौरुप के प्रतिशोध,
हुई शक्ति की योग साधना आज पूर्ण बनकर शिव-बोध।

[३४]

जागी वीरों के नयनों में कौन अपूर्व तेज की ज्वाल,
खनक उठी किस उत्कण्ठा से कटि में बद्ध कठिन करवाल;
पुलकित स्कन्धों के निषग में वाण कर रहे गुरु झंकार,
हुई दिगन्तों में प्रतिगुंजित धनुषो की भीषण टंकार।

३३—अर्थ युद्ध के अभियान की घोषणा सुनकर देवताओं के कर्कश बाहु (वे बाहु जो पहले कोमल थे अब अस्त्रों के अभ्यास और धनुष की प्रत्यंचा की रगड से कर्कश हो गये थे) फड़कने लगे। देवताओं का ऊँचा वक्ष आवेश से समुद्र के समान उमडने लगा। उनके हृदय का आवेश उनके मुख मण्डल की लालिमा में प्रत्यक्ष प्रकट हुआ। पिछली पराजय के पूर्व शोक आज सब पौरुषपूर्ण प्रतिशोध के भाव बनकर जागरित हुए। शक्ति से समन्वित योग की साधना आज विश्व के कल्याण की सचेतनता बनकर पूर्ण हुई।

३४—अर्थ आज देववीरों की आँखों में कौनसी अनोखी तेज की ज्वाला चमक उठी थी, उनकी कमर में बँधी हुई कठिन तलवार आज किस उत्कंठा से खनक उठी। देववीरों के पुलकित कंधों पर बँधे हुए निषंगों (तरकसों) में भरे हुए वाण भारी झंकार कर रहे थे। देववीर अपने धनुषों की प्रत्यंचाओं को उत्साह के आवेश में खींच रहे थे। उनके धनुषों की भयंकर टंकार दिगन्तों में प्रतिगुंजित हो रही थी।

[३५]

रुक न सका उत्सुक वीरों के अन्दर का आकुल आवेश,
"मिले विजय वर-सा प्रयाण का आज अभीप्सित प्रत्यादेश,"
गूँज उठा नन्दन कानन में वीर ओज का ऊर्जित घोष,
बना शक्ति से अन्वित विक्रम असुर अनय का गुरुप्रतिरोष।

[३६]

वीर सैनिकों के शासन में बना सुरों के वर्गित व्यूह,
किया व्यवस्थित सेनानी ने देवों का समवेत समूह;
हुआ व्योम के विजय तिलक-सा प्रकट क्षितिज पर जब नवसूर्य,
सेनानी के साथ बजाया वीर सैनिकों ने जय तूर्य।

३५—अर्थ युद्ध के लिए उत्सुक देववीरों के हृदय का आकुल आवेश रुक न सका। आवेश से विवश होकर वे सब एक साथ उच्च स्वर से बोल उठे— "आज हमें विजय के वर के समान युद्ध के प्रयाण का अभीष्ट आदेश मिले।" उनके वीरतापूर्ण ओज का ऊँचा उठता हुआ घोष नन्दनवन में गूँज उठा। शक्ति से समन्वित पराक्रम आज असुरों की अनीति के विरुद्ध भारी रोष के रूप में प्रकट हो रहा था।

३६—अर्थ *अपने साथी वीर सैनिकों के नियंत्रण में देवताओं के* वर्गीकृत व्यूह बनाकर सेनानी कुमार कार्तिकेय ने देवताओं के एकत्र समूह को व्यवस्थित किया। आकाश (स्वर्ग) के विजय तिलक के समान जब प्रभात का अभिनव सूर्य क्षितिज पर दिखाई दिया, तभी सेनानी कुमार-स्कन्द ने अभियान का तूर्य बजाया और उनके साथ वीर सैनिकों ने भी विजय तूर्य बजाया।

[३७]

नन्दनवन से राज मार्ग की ओर किया दल ने अभियान,
जागी अमरावती प्राप्त कर मानों सहसा नूतन प्राण;
विस्मित हो गन्धर्व, यक्ष औ किन्नर देख रहे दृग खोल,
आज अपूर्व गर्व से चमके अप्सरियों के लोचन लोल।

[३८]

अधरों में मुसकान, दृगों में अभय गर्व का उज्ज्वल हर्ष,
अंचल में उल्लास-प्रेम का ले आकुल उत्सुक उत्कर्ष;
पुलकित हाथों में अक्षत औ रोली से ले सज्जित थाल,
मौन दर्प से किये प्रियों के विजय तिलक से अंकित भाल।

३७—अर्थ देवताओं के समूह ने नन्दनवन से राजमार्ग की ओर प्रयाण किया, (पराजय से निर्जीव सी) अमरावती आज मानो नवीन प्राण प्राप्त कर जाग उठी। गन्धर्व, यक्ष और किन्नर आश्चर्य से चकित होकर आँखें खोलकर देख रहे थे। आज अप्सराओं के विलास से चंचल नेत्र एक नवीन और अनोखे गर्व से चमक रहे थे।

३८—अर्थ (अप्सराओं के) अधरों में हर्ष की मुसकान खिल रही थी। उनके नेत्रों में अभय के गर्व का उज्ज्वल हर्ष चमक रहा था, उल्लास एवं प्रेम के आकुल और उत्सुक उत्कर्ष से उनका हृदय उमड़ रहा था। (प्रसन्नता से) पुलकित हाथों में रोली और चावल से सजा हुआ थाल लेकर उन्होंने मौन गर्व से अपने प्रियतमों के भाल पर विजय का तिलक अंकित किया।

[३६]

वीरों के प्लुत विजय घोष से गूँज उठा वासव प्रासाद,
राज गर्व प्रस्फुटित हुआ बन आज इन्द्र का नव आह्लाद,
आकर स्वयं शची ने श्री–सी वैजयन्त के तोरण द्वार,
विजय तिलक से सेनानी का किया गर्व पूर्वक सत्कार।

[४०]

आकर सेनानी के पीछे जब जयन्त ने हो अनुकूल,
विनय सहित करके प्रणाम ली माँ के श्रीचरणो की धूल;
बना विजय-लिपि पुत्र भाल पर माँ के अन्तर का आह्लाद,
गद्‌गद् स्वर से निर्भरणी-सा फूट पड़ा बन आशीर्वाद—

३६—अर्थ इन्द्र का वह (वैजयन्त) प्रासाद (महल) वीरों के ऊँचे और गम्भीर विजय घोष के जय जयकारों से गूँज उठा। आज इन्द्र का राज-गर्व नवीन आह्लाद बनकर प्रकट हुआ। शची ने साक्षात् लक्ष्मी के समान प्रासाद के तोरण द्वार पर विजय-तिलक से सेनानी कुमार स्कन्द का गर्व पूर्वक सत्कार किया।

४०—अर्थ सेनानी के पीछे आकर जयन्त ने अनुकूल (सम्मुख) होकर विनय सहित प्रणाम करके माता के चरणों की धूल मस्तक पर धारण की। पुत्र के मस्तक पर विजय का तिलक अंकित कर माँ के हृदय का आह्लाद गद्‌गद् स्वर से आशीर्वाद बनकर निर्भरणी के समान फूट पड़ा—

[४१]

"शक्ति पुत्र प्रिय सेनानी में मिला तुम्हें शिव का वरदान,
मंगल मार्ग विश्व का होगा अमर तुम्हारा यह अभियान;
शक्ति योग हो सफल तुम्हारा बनकर असुर अनय का अन्त,
सुर-कुमार प्रत्येक गर्व हो मेरा, सार्थक नाम जयन्त।"

[४२]

लेकर सूर्य कमल से अंकित उन्नत समर पताका पीत,
आगे चला वीर सेनानी कर अम्बा का स्मरण पुनीत;
विजय तिलक के सहित शची का लेकर पुलकित आशीर्वाद,
चले वरुण यम आदि उच्च स्वर से करते उसका जयनाद।

४१—अर्थ "शक्ति पुत्र प्रिय सेनानी के रूप में तुम्हें शिव का वरदान साक्षात् रूप में प्राप्त हुआ है। आज का यह तुम्हारा अमर अभियान विश्व के कल्याण का मार्ग बनेगा। तुम्हारा शक्ति योग असुरों की अनीति का अन्त बनकर सफल हो। प्रत्येक देवकुमार सार्थक नाम (विजय शील) जयन्त बनकर मेरे गर्व का कारण बने।"

४२—अर्थ सूर्य और कमल से अंकित ऊँची पीतवर्ण की युद्ध पताका लेकर वीर सेनानी माता का पवित्र स्मरण करके आगे आगे चला। विजय तिलक के सहित इन्द्राणी की प्रसन्नता युक्त आशीर्वाद लेकर वरुण, यम आदि देवनायक उच्च स्वर से सेनानी का जय जयकार करते हुए उसके पीछे चले।

[४३]

शौर्य सिन्धु–का कौन अचानक आज स्वर्ग से अपरम्पार
उमड़ रहा था शोणितपुर की ओर प्रबल उद्वेलित ज्वार;
उठकर नन्दन के अन्तर से कौन प्रभजन भीषण तूर्ण,
बढ़ता आज अलक्षित गति से करने असुर–दर्प–तरु चूर्ण।

[४४]

वायु वेग से सुर सेना ने किया पन्थ को अविदित पार,
गूँज उठा हो कम्पित रव से शोणितपुर का रोधित द्वार;
भमक उठी जब राज मार्ग में प्रबल युद्ध की भीषण आग,
अन्त.पुर के कोलाहल से उठा तारकासुर तब जाग।

४३—अर्थ स्वर्ग से आज अचानक पराक्रम के अपार समुद्र का कौन प्रबल तथा वेला का अतिक्रमण करने वाला ज्वार शोणितपुर की ओर उमड़ रहा था; नन्दनवन के अन्तर से कौनसी भीषण और तीव्र आँधी उठकर आज अलक्षित गति से असुरों के दर्प रूपी वृक्ष को नष्ट करने बढ़ रही है।

४४—अर्थ वायु के वेग के समान तीव्र गति से देवसेना ने मार्ग को अनजाने ही पार कर लिया, देवसेना के घोष से कम्पित होकर शोणितपुर का बन्द द्वार गूँज उठा। राजमार्ग में जब प्रबल युद्ध की भीषण अग्नि भमक उठी, तब अन्तःपुर में कोलाहल होने लगा, उस कोलाहल से तारकासुर जाग उठा।

[४५]

खीच कृपाण हाथ में बोला, वीर क्रोध से होकर लाल—
"किस को आज निमन्त्रित करके लाया शोणितपुर में काल?"
किया मेघ-गर्जन से उसने पुत्रों का तत्क्षण आह्वान,
और संग ले उन्हें युद्ध के हेतु किया अविलम्ब प्रयाण।

[४६]

कृष्ण पताका में शोणित का चमका उलटा अर्ध मयंक,
गरज उठा उन्मत्त रोष से वह त्रिलोक का पूर्ण कलंक;
सेनापति ने तूर्यनाद से किया सैनिकों का संबोध,
ले विशाल सेना, देवों का किया मार्ग में ही गतिरोध।

४५—अर्थ वह वीर तारकासुर हाथ में तलवार खींचकर क्रोध से लालवर्ण का होकर बोला, "आज काल किसको निमंत्रित करके शोणितपुर में लाया है अर्थात् आज शोणितपुर में आकर कौन मरना चाहता है।" उसी क्षण उसने मेघ के समान गर्जन करके अपने पुत्रों को बुलाया और तत्काल उनको साथ लेकर उसने युद्ध के लिए प्रस्थान कर दिया।

४६—अर्थ तारकासुर की सेना की पताका कृष्णवर्ण की थी उसमें रक्त वर्ण का उलटा अर्ध चन्द्र चमक रहा था। वह तीनों लोकों का पूर्ण कलंक (तारकासुर) क्रोध से उन्मत्त होकर गरज उठा। उसके सेनापति ने तूर्य बजाकर (अपने) सैनिकों को सम्बोधित (सचेत) किया; विशाल सेना लेकर उन्होंने देवताओं का मार्ग रोक दिया।

[४७]

क्षीर सिंधु के उद्वेलन का मानो ऊर्जित भीषण ज्वार,
रक्त–कृष्ण–सागर प्लावन से टकराता था वारम्बार;
उठती पर्वत तुल्य तरंगें करती प्रलयंकर हुंकार,
डोल रही तरणी त्रिलोक की, कम्पित थे नय के पतवार।

[४८]

लगे गरजने वीर क्रोध से कर निज अस्त्रों का संचार,
होने लगे उभय पक्षों से क्रुद्ध काल के भीषण वार;
गिरने लगे भूमि पर खण्डित हो होकर असुरों के मुण्ड,
चला रहे थे शस्त्र अनर्गल उनके नर्तित रंजित रुण्ड।

४७—अर्थ शुभ्रवर्ण देवताओं की सेना की जब कृष्णवर्ण के असुरों की सेना से मुठभेड़ हुई, तो ऐसा प्रतीत होता था मानों क्षीर सागर का भयङ्कर रूप से उठता हुआ ज्वार उमड़ कर तथा वेला (मर्यादा) को लाँघकर उमड़ते हुए रक्त-सागर और कृष्ण सागर से बार-बार टकराता था। प्रलयकारी गर्जन करती हुई तरंगें पर्वत शिखरों के तुल्य ऊँची उठ जाती थीं अर्थात् सेनाओं के दल ऊँचे बुर्जों पर हुंकार करते हुए चढ़ जाते थे। सेनाओं के इस उद्वेलन में तीनों लोकों की नाव डग-मगा रही थी और नीति के पतवार काँप रहे थे अर्थात् त्रिभुवन का भविष्य अनिश्चित था तथा नीति का निर्देश भी अस्थिर हो रहा था।

४८—अर्थ अपने अस्त्रों का संचार करते हुए वीर क्रोध से गरजने लगे। दोनों पक्षों में क्रुद्ध काल के भयंकर वार होने लगे। असुरों के सिर खण्डित हो होकर पृथिवी पर गिरने लगे, रक्त से रंगे हुए उन असुरों के रुण्ड नृत्य करते हुए अनियन्त्रित गति से शस्त्र चला रहे थे।

[४९]

देवों की छाती पर होते दण्डों के खर अस्त्राघात,
होता था मानों रण थल में शैलों का प्रलयंकर पात;
नक्षत्रों-से टूट टूट कर मुण्ड कर रहे हा हा कार,
रुण्डों से आहत वीरों का उठता था नभ में चीत्कार।

[५०]

गरज रहे थे वीर वज्र से कर अरि दल पर अस्त्राघात,
बरस रहे थे बाण प्रलय के मेघों का धारा-सम्पात;
चमक रही चंचल बिजली-सी प्रलय नागिनी-सी करवाल,
कर शोणित में स्नान हो रही पल पल काल-जीभ-सी लाल।

४९—अर्थ देवों की छाती पर दण्डों के भीषण अस्त्रों के आघात होते थे। यह आघात ऐसा प्रतीत होता था, मानों रण-क्षेत्र में पर्वतों का प्रलयंकर पात हो रहा हो। आकाश में जिस प्रकार से नक्षत्र टूट टूटकर गिरते हैं, उसी प्रकार युद्ध में सिर कट कटकर गिर रहे थे और हाहाकार कर रहे थे। मुण्डों के कटकर गिर जाने पर भी रुण्ड अनवरत शस्त्र चलाते थे, उनके आघात से हताहत वीरों का चीत्कार आकाश में उठता था।

५०—अर्थ शत्रुओं के समूह पर शस्त्रों का आघात करके वीर वज्र के समान गर्जन कर रहे थे, प्रलय के मेघों की धारा के प्रपातों की भाँति उनके बाण बरस रहे थे तथा प्रलय की नागिनी के समान लहराती हुईं उनकी तलवारें चंचल बिजली के समान चमक रही थीं, (शत्रुओं के) रक्त में स्नान करके (तलवार) काल की जीभ के समान पल-पल में लाल सुर्ख हो रही थी।

[५१]

काल नाग-से बाण पक्षधर करते थे भीषण फुंकार,
गुहालीन सिंहो-से करते वीर उभयदल के हुंकार;
करती थी विदीर्ण नभपट को धनुषो की कर्कश टकार,
कम्पित करता था धरणी को वीरो का गर्वित पदचार।

[५२]

उल्का-सी उठ गदा व्योम मे वेगवती प्रलयकर तूर्ण,
अद्रिशिखर-सी गिर करती थी रक्त भाण्ड-सा अरि-सिर चूर्ण;
ज्वाला-सा उठ परशु वेग से गिरता दारुण वज्र समान,
करता त्वरित विदीर्ण शत्रु की देह अद्रि के सानु समान।

५१—अर्थ कालनाग के समान पर वाले बाण भीषण फुंकार कर रहे थे, दोनों दलों के वीर गुफा में बैठे सिंहों के समान घोर हुंकार कर रहे थे; धनुषों की कठोर टंकार आकाश के पर्दों को चीर रही थी, वीरों का गर्वित पद संचालन पृथिवी को कम्पित कर रहा था।

५२—अर्थ प्रलयंकर गदा उल्का के समान तीव्र गति से आकाश में उठकर पर्वत शिखर के समान गिरती थी और रक्त से भरे हुए घड़े के समान शत्रुओं के सिरों का चूर्ण कर रही थी; अग्नि की ज्वाला के समान वेग से उठकर परशु भयंकर वज्र के समान (शत्रुओं पर) गिरता था और पर्वत के शिखर के समान शत्रु के शरीर को तीव्रता से चीर देता था।

[५५]

मंडराते थे यम दूतों-से नभ में गृद्ध, काक औ चील,
करते पारण-पर्व हतों के अंगों से वे सभी सलील;
भरा शवों से युद्ध क्षेत्र था, फिर भी कर निज प्रकट स्वभाव,
लपक छीनते एक अपर का भाग, भागते सहित दुराव।

[५६]

काल दूत से घूम रहे थे निर्भय रण में श्वान शृगाल,
एक असुर के भूपर गिरते पहुँच कई जाते तत्काल,
एक अंग पर एक वीर के साथ टूटते होकर क्रुद्ध,
होता था आरम्भ शवों पर एक नया पशुओं का युद्ध।

५५—अर्थ आकाश में गृद्ध, काक और चील यम के दूतों के समान मँडरा रहे थे, वे सभी लीला पूर्वक मरे हुए असुरों के अंगों से अपना पारण पर्व मना रहे थे (अर्थात् अन्न का पारण कर रहे थे।) युद्ध का क्षेत्र शवों से भरा हुआ था, फिर भी अपने स्वभाव के अनुसार वे सब एक दूसरे के भाग को छीनते, लपकते थे तथा छिपाकर भागते थे।

५६—अर्थ रण में कुत्ते और गीदड़ निर्भय होकर काल के दूत के समान घूम रहे थे। पृथिवी पर एक असुर के गिरते ही वे कई कुत्ते और गीदड़ तुरन्त पहुँच जाते थे; वे सब एक वीर के एक अंग पर क्रुद्ध होकर एक साथ टूटते थे। इस प्रकार शवों के ऊपर पशुओं का एक नया युद्ध आरम्भ हो जाता था।

[५७]

घायल असुर मुमूर्ष शवों के बीच पड़े आकुल असहाय,
देख रहे थे दीन दृगों से जीवन की दुर्गति निरुपाय;
आहत अंगों की पीड़ा में कर उठता अन्तर चीत्कार,
कर देता था काल अन्त में जीवन का अन्तिम उपचार।

[५८]

अंग अंग से विकल निशाचरवीर भूल बल का अभिमान,
मर्म दृष्टि से देख अनय के जीवन का यह पर्यवसान;
हो जाते जीवन की गति के चिन्तन में ही अन्तर्धान,
करते प्रायश्चित्त चित्त में अन्त काल में आकुल प्राण।

५७—अर्थ घायल और मरणासन्न असुर आकुल और असहाय होकर शवों के बीच में पड़े थे; निरुपाय होकर वे (असुर) दीन नेत्रों से जीवन की दुर्गति को देख रहे थे; चोट लगे हुए अंगों की पीड़ा से उनका हृदय चीत्कार करने लगता था, उनके जीवन का अन्त में अन्तिम उपचार मृत्यु कर देती थी।

५८—अर्थ अंगों के कट जाने से व्याकुल वीर निशाचर अपना बल और अभिमान भूल गये। अनीतियों से पूर्ण अपना यह करुण अन्त मर्मभरी दृष्टि से देखकर, वे जीवन की गति की चिन्ता में लीन हो जाते थे। उनके आकुल प्राण अन्तराल में अपने मन में अपने कर्मों पर प्रायश्चित्त करते थे।

[५६]

देख बन्धुओं को आहत हो गिरते खण्डित शृंग समान,
क्रोध सहित जाग्रत होता था दनुजो का द्विगुणित अभिमान;
भर दूना उत्साह हृदय में आगे बढते असुर प्रवीर,
द्विगुण पराक्रम से करते थे उनसे रण सुरगण हो धीर।

[६०]

देवों को था मिला पुण्य से दिव्य अमरता का वरदान,
सहे अमरता के ही कारण देवो ने कितने अपमान;
कर सकते थे अस्त्र न कोई देवो के प्राणों का घात,
फिर भी करते थे शरीर में व्रण अस्त्रों के क्रूर निपात।

५६—अर्थ पर्वत-शिखर के समान खण्डित होकर अपने बन्धुओं को आहत होकर गिरते देख, दनुजों का अभिमान दून तथा क्रोध से जाग्रत हो रहा था; हृदय में दूना उत्साह भरकर युद्ध में कुशल असुर वीर आगे बढते थे, देवों के समूह धैर्य के साथ तथा दूने पराक्रम से उन असुरों से युद्ध करते थे।

६०—अर्थ देवा को अपने पुण्यों से दिव्य अमरता का वरदान मिला हुआ था, इसी अमरता के कारण देवताओं ने अनेक अपमान सहे थे। देवों के प्राणों का नाश कोई भी अस्त्र नहीं कर सकते थे, फिर भी अस्त्रों की भयकर मार उनके शरीर मे घाव कर देती थी

[६१]

देख रक्त को हो जाते थे जो करुणा से पहले दीन,
शस्त्रों की पीडा से जिनका हो जाता था पौरुष क्षीण;
दया और दुर्बलता जिनकी बनी शत्रुओं का उत्साह,
अश्रुधार से धोया करते जो रण मे भी रक्त प्रवाह;

[६२]

देव कुमार आज वे हो बन पौरुष के प्रलयंकर ज्वाल,
युद्ध भूमि मे गरज रहे थे बनकर निज अरियों के काल,
देख शत्रु के भग्न कण्ठ से बहते नूतन रक्त-प्रपात,
बढ़ता मन मे ओज सौगुना शुभ प्रतिशोध पर्व मे स्नात।

६१—अर्थ जो देवता पहले रक्त को देखकर करुणा से दीन हो जाते थे, शस्त्रों की पीड़ा से जिनका पुरुषत्व क्षीण हो जाता था, जिनकी दया और दुर्बलता शत्रुओं का उत्साह बनी थी, जो (देवता) युद्ध में रक्त की धारा को आँसुओं से धोया करते थे अर्थात् जो रक्त को देखकर आँसू बहाते थे;

६२—अर्थ आज वे ही देवकुमार पौरुष की प्रलयंकर ज्वाला बनकर युद्ध भूमि में गरज रहे थे तथा अपने शत्रुओं के काल बन रहे थे; शत्रु के कटे हुये कंठ से नूतन रक्त का प्रपात (झरना) देखकर तथा प्रतिशोध (बदले) के पर्व में पुण्य स्नान करके उनके मन में सौगुना उत्साह बढ़ता था।

[६३]

देख बन्धुओ के अगों के व्रण बढता था दूना क्रोध,
अस्त्रो के बाधित कौशल मे परिवर्द्धित होता प्रतिशोध;
अपने अगो के घावों की पीडा तो रहती अज्ञात,
किन्तु रक्त चढता आँखो से बन विक्रम की नूतन प्रात ।

[६४]

रण मे भी आती थी जिनको नन्दन के विलास की याद,
मधुर राग से परिचित जिनके कर्ण चीरता रण का नाद;
आज उन्ही को अप्सरियो का विजय तिलक बन ध्रुव अभिराम,
भीषण रण हुकार जगाता उर मे नव पौरुष उद्दाम ।

६३—अर्थ अपने बन्धुओ के अगों के घावो को देखकर देवताओ का क्रोध दूना बढ जाता था और वे क्रोध पूर्वक अधिक उत्साह से युद्ध करते थे, राक्षस भी उनके आक्रमण का प्रतिकार बड़ी कुशलता से करते थे और देवताओं के अस्त्र कौशल को चुनौती देते थे, अपने अस्त्र कौशल में राक्षसों के द्वारा बाधा उत्पन्न होने पर देवताओ की प्रतिशोध की भावना और अधिक बढती थी। देवता अपने अगो के घावो की पीडा को तो ध्यान नही देते थे, किन्तु उनके घावो का रक्त उनकी आँखों में पराक्रम का नवीन प्रभात बनकर चढता था अर्थात् अपने घावो के रक्त-प्रवाह से उत्साहित होकर वे दूने पराक्रम से युद्ध करते थे।

६४—अर्थ जिनको युद्ध में भी नन्दनवन के विलास की याद आती थी, युद्ध का घोर शब्द मधुर राग के अभ्यासी जिनके कानो को चीरता था, आज उन्हीं (देवताओ) के लिए अप्सराओ का विजय तिलक पथप्रदर्शक सुन्दर ध्रुवतारा बनकर उनमे युद्ध की भीषण हुकार जगाता था तथा उनके हृदय मे नवीन और अदम्य पौरुष को जगाता था।

[६५]

आज काम के चिर रथियों का युद्ध बना था भीषण धर्म,
आज सोम के पान-प्रियों ने जाना रक्त समर का मर्म,
कोमलता के पारखियों को हुआ परुष पौरुष का भान,
अमरों को भी हुआ मरण के गूढ़ मर्म का कुछ अनुमान।

[६६]

हुआ विदित, दानव के बल का है बल ही केवल प्रतिकार,
असुरों के उन्माद दर्प का एक मृत्यु ही चिर उपचार,
अनय-प्रियों से विनय व्यर्थ है ज्यों पागल का मूढ़ प्रलाप,
आत्मीयों का अन्त मात्र है एक दानवों का अनुताप।

६५—अर्थ जो देवता सदा कामकला के मधुर युद्ध के महारथी रहे थे, आज यह शस्त्रों का युद्ध उनका भयङ्कर धर्म बन गया था। सोमरस का पान जिन्हें सदा प्रिय था, उन्होंने रक्त के युद्ध का मर्म पहचाना है। जो अब तक अप्सराओं की कोमलता के पारखी रहे थे, उन देवों को अब कठोर पुरुषत्व का ज्ञान हुआ है। अमर देवताओं को भी मृत्यु के गूढ़ रहस्य का कुछ अनुमान हुआ है।

६६—अर्थ अब उन्हें यह विदित हुआ कि दानवों के बल का प्रतिकार (बदला) केवल बल ही है, असुरों के उन्मत्त अहंकार का एक मात्र स्थायी उपचार मृत्यु ही है। जिन्हें अनीति प्रिय है, उनसे विनय करना, पागल के प्रलाप के समान व्यर्थ है। दानवों को दूसरों की मृत्यु से दुःख नहीं होता, इसीलिए वे अत्याचार करते हैं, उन्हें केवल अपने आत्मीय जनों की मृत्यु से ही दुःख होता है, तभी वे अपने अत्याचार पर पश्चाताप करते हैं।

[६७]

जाना जय के हेतु शक्ति का साधन है यौवन का धर्म,
शक्ति साधना मे गौरव की रक्षा का है शाश्वत मर्म;
असुरो के आतंक युद्ध मे शक्ति और कौशल की ढाल,
करती मार्ग प्रशस्त विजय का, बढ़ा वीरता की करवाल।

[६८]

युद्ध क्षेत्र के कठिन पलों के अनुभव से उज्ज्वल विज्ञान,
साधन, बल, शिक्षण, कौशल को करता शतगुण तेज प्रदान,
अन्तर्निहित तेज से प्रस्फुट दीप्त हुए देवो के भाल,
छूटे अस्त्र प्रदीप्त तेज की बन भीषण प्रलयंकर ज्वाल।

६७—अर्थ देवताओं ने अब यह जाना कि विजय प्राप्त करने के लिए शक्ति का साधन यौवन का धर्म है, गौरव की रक्षा का सनातन मर्म शक्ति की साधना में ही है। असुरों के आतंक पूर्ण युद्ध में शक्ति और युद्ध कौशल की ढाल ही वीरता की तलवार को बढ़ाकर विजय का मार्ग प्रशस्त करती है (खोलती है)।

६८—अर्थ युद्ध क्षेत्र के कठिन क्षणों के अनुभव से जो उज्ज्वल ज्ञान प्राप्त होता था, वह देवताओं की साधना, उनकी शक्ति, शिक्षा और कुशलता को सौगुना तेज प्रदान करता था। शक्ति साधना से देवताओं को जो तेज प्राप्त हुआ था, वह उनमें अन्तर्निहित था। युद्ध क्षेत्र में वह तेज प्रकट हुआ, उस प्रकट तेज से देवताओं के मस्तक दीप्त हो रहे थे। युद्ध क्षेत्र में देवताओं के अस्त्र उस प्रदीप्त तेज की भीषण और प्रलयंकर ज्वाला बनकर छूट रहे थे।

[६९]

वाम पाणि में झेल ढाल पर असुरों के भीषण तम वार,
अगों के आघात-व्रणों की चिन्ताएँ सुकुमार बिसार,
प्रलय प्रभंजन-से गर्जन कर बढ़े वेग से देव कुमार,
उन्मूलित तरुओं-से गिरते असुर मचाकर हा हा कार।

[७०]

बनी पराजय की पीड़ा में जो अनन्त अक्षय अपमान,
वही अमरता आज सुरों के हेतु बनी अन्तिम वरदान;
अमृत पुत्र वे आज शक्ति के साधन से होकर अभिपूत,
बने समर में असुर अनय के हित यमपुर के उज्ज्वल दूत।

६९—अर्थ अपने बायें हाथ में ढाल पर असुरों के अत्यन्त भीषण वारों को झेलकर, अपने अंगों की चोटों और उनके घावों की कोमल चिन्तायें त्याग कर, प्रलयकालीन आँधी के समान गर्जन करते हुए देवकुमार तेजी से आगे बढ़ रहे थे, असुर हाहाकार मचाकर उखड़े हुए वृक्षों की भाँति गिर रहे थे।

७०—अर्थ जो अमरता पराजय की पीड़ा में देवताओं के लिए अनन्त और अक्षय अपमान बनी थी, वही अमरता आज देवताओं के लिए अन्तिम वरदान बन रही है। वे ही अमृत-पुत्र देवता आज शक्ति की साधना से पवित्र होकर, युद्ध में असुरों की अनीति के लिए यमपुर के उज्ज्वल दूत बन रहे हैं अर्थात् असुरों का संहार कर रहे हैं। (देवता शुभकर्म होते हैं।)

[७१]

लख देवों का दर्प, युद्ध में कौशल, साहस, शौर्य अपूर्व,
करके स्मरण समर क्रीडा के विजय पर्व कौतुक मय पूर्व;
क्षुब्ध हुआ अतिशय अन्तर में तारक अपने अस्त्र सँभाल,
बोला गर्जन अट्टहास कर तथा क्रोध से होकर लाल—

[७२]

"विद्युन्माली ! तारकाक्ष ! ओ हे कमलाक्ष ! हमारे वीर !
देख रहे क्या नृत्य सुरों का धरे स्कन्ध पर निज धनु-तीर,
किन्नर और अप्सराओं का पुन: देखना सुन्दर नृत्य,
अभी उचित है तुम्हें युद्ध मे करना सफल उपस्थित कृत्य।

७१—अर्थ देवताओं का दर्प, युद्ध-कौशल, साहस और अपूर्व पराक्रम देखकर तथा पूर्वकाल की युद्ध क्रीडा के कौतुकमय विजय पर्वों का स्मरण करके तारकासुर अपने हृदय में बहुत क्षुब्ध हुआ। अपने अस्त्र सँभाल कर गर्जन के साथ अट्टहास करता हुआ तथा क्रोध से लाल होकर वह बोला—

७२—अर्थ "हे हमारे वीर ! विद्युन्माली ! तारकाक्ष ! कमलाक्ष ! तुम अपने कन्धे पर धनुष-तीर रखकर क्या देवताओं का नृत्य देख रहे हो। किन्नर और अप्सराओं का सुन्दर नृत्य तुम फिर देखना, इस समय तो तुमको युद्ध में सामने उपस्थित विजय के मार्ग को सफल बनाना है।

[७३]

भाज किन्नरों में भी प्रकटित पौरुष हुआ अपूर्व नवीन,
नर्तक भी हो गये कदाचित् युद्ध कला मे आज प्रवीण;
आज किम्पुरुष भी करते हैं अस्त्रों का भीषण सचार,
आज धृष्टता का इनकी है उचित तुम्हे करना उपचार।

[७४]

असुर वंश की कीर्ति समुज्ज्वल वत्स ! तुम्हारे ही है हाथ,
विजय गर्व से करना तुमको उन्नत अपने कुल का माथ,
कर परास्त इन किम्पुरुषो को अस्त्र शस्त्र सब इनके छीन,
वन्दी करके इन असुरो को करो वीर अपने आधीन।

७३—अर्थ आज किन्नरों मे भी अद्भुत और नवीन पौरुष प्रकट हो रहा है, कदाचित् आज नृत्य करने वाले नर्तक भी युद्ध की कला मे प्रवीण हो गये हैं, आज किंनर भ अस्त्रों का भयकर संचार कर रहे हैं, आज उनकी धृष्टता का तुम्हें उचित उपचार करना है।

७४—अर्थ हे वत्स ! असुर वंश की उज्ज्वल कीर्ति तुम्हारे ही हाथ मे है, तुमको अपने कुल का मस्तक विजय के गर्व से ही ऊँचा करना है। इन किन्नरों को हराकर तथा इनके सब अस्त्र-शस्त्र छीनकर, इन देवताओं को बन्दी बनाकर तुम अपने आधीन करो।

[७५]

पौरुष यह इन किम्पुरुषों का अथवा अपना युद्ध प्रमाद,
आज बन रही प्रगति युद्ध की सब इतिहासों का अपवाद;
आज बालकों को कर आगे ये कायर किन्नर गन्धर्व,
दिखा रहे परिचित वीरों को नये शौर्य कौशल का गर्व ।

[७६]

बन कर इन भोले शिशुओं के तुम अकाल ही आगत काल,
करो कृतार्थ कला को अपनी पहना मुकुलों की जयमाल;
तब तक मैं इन किम्पुरुषों का देख नया कौशल पुरुषार्थ,
किंचित कर्म आज विक्रम के जीवन को रणमध्य कृतार्थ ।"

७५—अर्थ (आज युद्ध में देखना अपूर्व पराक्रम दिखा रहे हैं) यह इन किन्नरों का पुरुषार्थ है अथवा यह हमारा युद्ध प्रमाद है अर्थात् हम लोग युद्ध लापरवाही से कर रहे हैं, इसलिए यह किन्नर तक पुरुषार्थ दिखा रहे हैं। युद्ध की प्रगति आज युद्ध के समस्त प्राचीन इतिहासों का अपवाद बन रही है। ये कायर किन्नर और गन्धर्व आज बालकों को आगे करके उन राक्षस वीरों को, जिनके पराक्रम से ये परिचित हैं, नये पराक्रम के कौशल का गर्व दिखा रहे हैं।

७६—अर्थ इन भोले बालकों के लिए तुम असमय में आगत काल बनकर, अपनी युद्ध कला को इन मुकुलों (देव कुमारों तथा लड़कों) की जयमाला पहनाकर कृतार्थ करो, तब तक मैं इन किन्नरों का नया युद्ध कौशल तथा पुरुषार्थ देखकर आज अपने पराक्रम से पूर्ण जीवन को युद्ध के बीच में थोड़ा-सा कृतार्थ कर लूँ।"

[७७]

कह कर पुत्रों से तारक ने भर कर एक विकट हुंकार,
सेनापतियों को गर्जन के सहित लगाई फिर ललकार;
और गरज कर बोला, "आओ मेरे सम्मुख हे सुरराज !
आज वज्र का वैभव अपना करो परीक्षित फिर निर्व्याज।

[७८]

शिशुओं के बल पर आये क्या करने वीरों से संग्राम,
इससे तो ललनाओं की ही सेना सज्जित कर अभिराम;
कर सकते थे हमें पराजित चला रूप यौवन के बाण,
किम्पुरुषों का कामिनियाँ ही करती रहीं सर्वदा त्राण।

७७—अर्थ पुत्रों से ऐसा कहकर तारक ने एक भयङ्कर हुँकार की, गर्जन के सहित सेनापतियों को तारक ने फिर ललकारा तथा गरज कर कहा— "हे देवराज इन्द्र ! आज मेरे सामने आओ, आप अपने वज्र के ऐश्वर्य की परीक्षा फिर निश्छल भाव से करो।" (यद्यपि वज्र की परीक्षा तुम पिछले युद्धों में कर चुके हो)।

७८—अर्थ तुम क्या इन बालकों के बल पर हम जैसे वीरों से युद्ध करने आये हो। इससे तो सुन्दरियों की सुन्दर सेना सजाकर लाते तो अच्छा था, उनके रूप और यौवन के बाण चलाकर हमें पराजित कर सकते थे। किन्नर पुरुषों की रक्षा सदा स्त्रियाँ ही करती रही हैं।

[७६]

अभी नही सूखी भी होगी इन्द्राणी की आँसू धार,
भूल गये क्या हृदय तुम्हारे वह कम्पनकारी हुंकार;
भूल गये सुकुमार अंग क्या असुरो के भीषण आघात,
विस्मृत सहसा हुई कदाचित् तुम्हे पूर्व युद्धों की बात।

[८०]

सचमुच होते सरल देवता, है मुनियों का कथन यथार्थ,
कामिनियो की अनुकम्पा से होकर कितनी बार कृतार्थ;
अब अबोध शिशुओ को लेकर समझ बाल क्रीड़ा सग्राम,
आये सिंहो के गह्वर मे छोड़ रम्य नन्दन आराम।

७६—अर्थ पिछले युद्ध में तुम्हारी दुर्गति और स्वर्ग की पराजय के कारण रुदन करने वाली इन्द्राणी की आँसू की धारा अभी तक सूखी भी न होगी, क्या तुम्हारे हृदय उस कंपा देने वाली हमारी हुंकार को भूल गये ! तुम्हारे सुकुमार अंग असुरों के भयङ्कर आघातों को भूल गये क्या ? शायद तुम्हें पहले युद्धों की बात अचानक भूल गई है। (इसीलिए भ्रमवश पुनः युद्ध करने आये हो।)

८०—अर्थ मुनियों का यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि देवता सचमुच सरल स्वभाव के होते हैं। पहले कई बार पराजित होकर भी स्त्रियों की कृपा से तुम्हारी रक्षा हो चुकी है। अब इन अबोध बालकों को लेकर संग्राम को बाल क्रीड़ा समझकर, सुन्दर नन्दनवन के विहार-उद्यान को छोड़कर सिंहों की गुफा में (मरने) आये हैं।

[८१]

अपमानों का शाप तुम्हारा बना अमरता का वरदान,
इन शिशुओं का क्यों अकाल ही चाह रहे तुम स्वर्ग प्रयाण;
हो कर अमर पूर्व देवों के तुल्य बनेंगे ये भी दीन,
पौरुष के अभिमान दर्प की मर्यादा है मृत्यु प्रवीण।

[८२]

जाओ क्षमा माँग कर लौटो करो स्वर्ग में सदा प्रमोद,
अपयश लो न शून्य शिशुओं से माताओं की करके गोद;
भव्य बालकों के यौवन में करने लीलामय परिचार,
अप्सरियों को भेज भूमि पर कर देना प्रकटित उपकार।"

८१—अर्थ तुम्हारी अमरता का वरदान ही तुम्हारे लिए अपमानों का शाप बना है। (अमर होने के कारण ही तुम बार बार पराजय से अपमानित होते रहे। मर्त्य होते तो एक बार ही युद्ध में मारे जाते।) तुम असमय में ही इन बालकों का स्वर्ग-प्रस्थान क्यों चाह रहे हो: युद्ध में वीर गति पाने के कारण अमर बनकर प्राचीन देवों के समान ये बालक भी दीन बन जायेंगे। पौरुष के अभिमान और दर्प की मर्यादा मृत्यु है, जो अपने कार्य में अत्यन्त कुशल है, जो प्राणों का उत्सर्ग कर सकता है, उसी का पुरुषार्थ का अभिमान उचित है।

८२—अर्थ अब तुम क्षमा माँगकर लौट जाओ और स्वर्ग में सदा प्रमोद मनाओ। तुम माताओं की गोद को इन शिशुओं से सूनी करके अपयश मत लो। इन सुन्दर बालकों के यौवन में विलासमय सेवा करने के लिए अप्सराओं को पृथिवी पर भेजकर उनके प्रति अपने उपकार प्रकट कर देना।"

[८३]

सुन तारक के वचन हो उठे देवराज सहसा सक्रुद्ध,
"न्यायालय यह नही वाग्भट ! यह अन्तिम देवासुर युद्ध;
तर्क-व्यंग से नही भाग्य का निर्णय होगा दानवराज !
अस्त्र और बल एक मार्ग है शेष विजय का सम्भव आज।

[८४]

आज नवीन शक्ति देवों की जागी बन असुरो का अन्त,
होगे आज न विफल हमारे वही पूर्व के अस्त्र दुरन्त,
अस्त्र यंत्र है, सजग शक्ति ही करती है उनका सचार,
अस्त्रो का वैफल्य वस्तुत प्राण-शक्ति की केवल हार।

८३—अर्थ तारकासुर के वचन सुनकर देवराज इन्द्र सहासा क्रुद्ध होकर बाले,—"हे वाग्भट ! यह न्यायालय नहीं है, यह देवताओं और असुरों का अन्तिम युद्ध है। हे दानवराज ! इसका फैसला तर्क से या व्यंग से नहीं होगा, आज तो भाग्य का फैसला युद्ध से ही होगा, आज केवल अस्त्र और बल ही विजय का शेष मार्ग है।

८४—अर्थ आज देवो की नवीन शक्ति असुरों का अन्त करने के लिए जाग गई है। आज हमारे वेही प्राचीन भयकर अस्त्र निष्फल नहीं होंगे अर्थात् हमें सफलता मिलेगी। अस्त्र तो केवल यन्त्र हैं, उनका संचार सजग शक्ति ही करती है। अस्त्रों की असफलता का कारण अस्त्रों का दोष नहीं वरन् उनका संचालन करने वाली प्राणशक्ति की पराजय है।

[८५]

आज उन्हीं परिचित अस्त्रों के आघातों का देखो स्वाद,
अस्त्र संभालो शीघ्र बन्द कर मुख का व्यर्थ अनर्गल वाद;
और रोष से पूर्ण इन्द्र ने किया असुर पर वज्र प्रहार,
दानव महावीर ने उसका किया शक्ति बल से प्रतिकार !

[८६]

अवसर देख वरुण ने रोकी महागदा से भीषण शक्ति,
की आपत् में पूर्ण प्रमाणित स्वामी की सेवा से भक्ति;
देख असुर का वेग इन्द्र पर घिर आये सारे दिग्पाल,
दियां दिखाई निकट असुर को आगत अपना अन्तिम काल ।

८५—अर्थ तुम आज उन्हीं प्राचीन परिचित अस्त्रों के आघातों का स्वाद देखो, मुख के व्यर्थ अनर्गल विवाद को बन्द करके शीघ्र ही अस्त्र संभाल लो। इतना कहकर रोष सहित इन्द्र ने असुर पर वज्र का प्रहार कर दिया, दानवों में वीर तारक ने शक्ति नामक अस्त्र के बल से इन्द्र के वज्र के प्रहार को रोक लिया।

८६—अर्थ अवसर देखकर वरुण ने उस असुर की भयंकर शक्ति को अपनी महागदा से रोक लिया, आपत्काल में इस कार्य को करके वरुण ने स्वामी के प्रति अपनी भक्ति और सेवा को प्रमाणित कर दिया। इन्द्र पर असुर का कोप देखकर सारे दिग्पाल इकट्ठे हो गये। उस समय असुर को अपना अन्तिम समय अर्थात् मृत्यु निकट ही दिखाई देने लगी।

[८७]

हो उन्मत्त प्रचण्ड वेग से करने लगा अस्त्र सचार,
देवो को हो गया असभव करना भी उनका प्रतिकार,
अट्टहास, हुकार, गर्जना करके रहा दिशायें चीर,
करता था दुर्जेय समर वह देव-गणो से दानव वीर।

[८८]

सेनानी के खर अस्त्रो से देख किन्तु दल का सहार,
तारक तनयो के हृदयों का धीर रहा था साहस हार,
जान प्राण-सकट की वेला होकर वे क्षत विक्षत गात,
करने लगे पलायन पीछे, सह न स्कन्द के अस्त्राघात।

८७—अर्थ उस असुर ने उन्मत्त होकर बड़ी तेजी से अस्त्रों का संचालन आरम्भ कर दिया; उस समय देवताओं को उन अस्त्रों का सामना करना असंभव हो गया। वह राक्षस अपनी हुंकार, गर्जना तथा अट्टहास से दिशाओं को चीर रहा था। वह दानव वीर तारक देवताओं के समूह से दुर्जेय युद्ध कर रहा था अर्थात् उससे जीतना उस समय असम्भव प्रतीत हो रहा था।

८८—अर्थ सेनानी के तीव्र अस्त्रों से अपने दल का सहार होते देखकर तारक के पुत्रों के हृदय का धैर्य खो रहा था और हिम्मत हार रहा था अर्थात् विजय में निराश हो रहा था। अपने प्राणों के संकट का समय जानकर तथा शरीर से क्षत विक्षत होकर वे तारक पुत्र स्कन्द के अस्त्रों की चोटों को न सह सकने के कारण पीछे भागने लगे।

[८६]

देवराज की ओर, जान कर अवसर, आया स्कन्द कुमार,
किये दूर से ही दानव पर उसने भीषण वाण प्रहार;
निज अदृष्ट का कोप जानकर दानव हुआ हृदय मे व्यग्र,
लड़ने लगा प्रचड वेग से, कर साहस एकत्र समग्र।

[९०]

लख कुमार को सम्मुख आया - बोला कु ठित दानव राज,
"आज बालकों के कौशल से रक्षित इन्द्रलोक की लाज;
इन्द्रादिक के समर-शौर्य का देख लिया मैंने वस अन्त,
अब शिशुओं का शौर्य देखना शेष रहा मुझको हा ! हन्त !"

८६—अर्थ तारक पुत्रो के पलायन के कारण अवसर देखकर सेनानी स्कन्द देवराज इन्द्र के निकट आने लगा, उसने दूर से ही दानव तारक पर वाणों के भीषण प्रहार किये। अपने भाग्य का कोप जानकर दानव हृदय में बड़ा व्याकुल हुआ तथा फिर समस्त साहस इकट्ठा करके प्रचण्ड और तीव्र वेग से लड़ने लगा।

९०—अर्थ कुमार स्कन्द को सामने आया देखकर दानवराज तारकासुर कुण्ठित होकर बोला—"आज बालकों के युद्ध कौशल से इन्द्रलोक की लाज की रक्षा हो रही है। इन्द्र आदि देवताओं का युद्ध में पराक्रम का अन्त तो मैंने देख लिया था, अब हे भगवान ! मुझको बालकों का पराक्रम देखना शेष रहा था।"

[६१]

भीषण अट्टहास से करते उद्घोषित फिर चतुर्दिगन्त,
बोला "हुआ वीरता का क्या निश्चय अब त्रिलोक में अन्त !"
सम्बोधित करके कुमार को बोला "हे योगीन्द्र कुमार !
क्यों समाधि को छोड़ हुआ प्रिय तुम्हें युद्ध का यह व्यापार !

[६२]

देख तुम्हारे कोमल वय को होता उर में दया-विकार,
कुसुमों से अंगों पर करते बनता नहीं प्रचण्ड प्रहार;
दर्शन के भी हेतु तुम्हारे करना पड़ता अवनत शीष,
क्षमा किया तुमको, घर जाओ, ले मेरा निर्भय आशीष।

६१—अर्थ उस दानवराज ने भयंकर अट्टहास किया। उसके अट्टहास से चारों दिशाओं में घोष हुआ, फिर वह बोला, "क्या त्रिलोक में अब वीरता का अन्त हो गया है अर्थात् वीर पुरुष नहीं रहे हैं, जो ये बालक युद्ध करने आये हैं।" फिर कुमार को सम्बोधित करके वह तारक बोला, "हे योगीन्द्रकुमार ! तुम्हें समाधि को छोड़कर यह युद्ध का कार्य क्यों प्रिय हो गया है ! (तुम्हारे माता-पिता दोनों समाधि लगाकर योग साधन करते रहे हैं। वह समाधि साधना ही तुम्हारा पैतृक धर्म है।)

६२—अर्थ तुम्हारी सुकुमार अवस्था (उम्र) को देखकर मेरे हृदय में दया का विकार होता है; तुम्हारे कुसुम के समान कोमल अंगों को देखकर उन पर तीव्र तथा भयंकर प्रहार करते नहीं बनता। तुम्हारे दर्शन के लिए भी मुझे अपना सिर तुम्हारे सामने झुकाना पड़ता है (क्योंकि तुम इतने लघु आकार हो।) युद्ध में आने की धृष्टता के लिए मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया, इसलिए अब तुम मेरा निर्भय आशीर्वाद लेकर घर जाओ।

[६३]

करो न सूनी स्नेह-मयी तुम वत्स ! अभी माता की गोद,
अभी इष्ट है तुम्हे बहुत दिन शैशव का आमोद प्रमोद,
कठिन तपस्या से पाया है मातु–पिता ने एक कुमार,
सादर सेवा–शुश्रूषा से करो अभी उनका उपकार।

[६४]

यह भीषण संग्राम, भूल कर आये इसे समझ कर खेल,
अस्त्रों के आघात तुम्हारे कोमल अग सकेंगे झेल ?
ले आये किम्पुरुष तुम्हें यदि देकर छल से कुछ विश्वास,
आओ तो निर्भय पहुँचा दूँ तुम्हें पिता–माता के पास।"

६३—अर्थ हे वत्स ! तुम प्रेम से भरी अपनी माता की गोद को अभी सूना मत करो। अभी तुमको बहुत दिन तक बचपन के आमोद-प्रमोद की क्रीड़ा करना वाञ्छनीय है। तुम्हारे माता पिता ने कठोर तपस्या करके एक पुत्र पाया है, इसलिए आदर पूर्वक सेवा और शुश्रूषा करके तुम उनका उपकार करो।

६४—अर्थ यह युद्ध तो बड़ा भयंकर है, तुम भूल से इसे खेल समझकर यहाँ आ गये हो। क्या तुम्हारे कोमल अग अस्त्रों का आघात सहन कर सकेंगे ? यदि ये किन्नर तुम्हें छल से कुछ विश्वास देकर ले आये हैं, तो मैं तुम्हें निर्भयता पूर्वक तुम्हारे माता-पिता के पास पहुचा दूँ।"

[६५]

सुन तारक के वचन गर्व से बोला बढ़कर स्कन्द कुमार,
"दानवेन्द्र ! कर चुके बहुत तुम जग में करुणा का विस्तार,
शिशुओं का चीत्कार करुण औ अबलाओं का हा हा कार,
गूँज रहा शाश्वत दिगन्त में बन तव करुणा का जयकार।

[६६]

ऋषि मुनियो की नि.स्पृहता औ अमरों का स्वच्छन्द विलास,
तथा नरो की निष्क्रियता में छिपा मनुजता का उपहास;
बना अतीत युगों में ही था असुरो का निर्भय उन्माद,
अब भविष्य बन रहा भूत के नियमो का निर्मम अपवाद।

९५—अर्थ तारक के वचन सुनकर गर्व सहित आगे बढ़कर *स्कन्द कुमार बोला, "हे दानवराज ! तुम ससार मे* करुणा का विस्तार बहुत कर चुके हो। शिशुओं का करुण चीत्कार तथा अबला स्त्रिया का हाहाकार चिरकाल से चारो दिशाओ में तुम्हारी उस करुणा का जयकार बनकर गूँज रहा है।

९६—अर्थ ऋषि मुनियों का वैराग्य और देवताओं का स्वच्छन्द *विलास तथा मनुष्यों की निश्चेष्टता मे छिपा हुआ* मनुष्यता का उपहास इन सबने ही प्राचीन युगो मे असुरो के लिए निर्भर उन्माद का अवसर दिया था। अब भविष्य भूतकाल के नियमो का कठोर अपवाद बन रहा है। (भूतकाल की दुर्बल स्थिति बदल गई। शक्ति साधना करके देवता नवीन विजय का इतिहास रच रहे हैं।)

[६७]

सजग हो चुकी है मानवता हुआ जागरित देव समाज,
शक्ति पीठ बन रहा काम का क्रीडावन वह नन्दन आज;
वही अस्त्र है, किन्तु कर रही नई शक्ति उनका सचार,
इसी शक्ति से निर्मित होगा असुर रहित नूतन ससार।

[६८]

परशुराम कर रहे योग मे महाशक्ति का योग अखण्ड,
दीन अस्त सुर और नरों का पौरुष अब हो रहा प्रचण्ड;
नित्य तुम्हारा काल ले रहा शिशुओं के तन में अवतार,
खोल रहा प्रति नयन तुम्हारे लिये मृत्यु के नूतन द्वार।

६७—अर्थ अब मानवता सजग हो चुकी है, की और देव समाज भी जागरित हो गया है। वह काम क्रीडा का नन्दन-वन आज शक्ति का पीठ बन रहा है, अस्त्र तो वही प्राचीन हैं, किन्तु उनका संचार अब नवीन शक्ति कर रही है। अब इसी शक्ति से असुरों का नाश होगा और असुर रहित एक नवीन संचार का निर्माण होगा।

६८—अर्थ परशुराम योग में महाशक्ति का अखण्ड समन्वय कर रहे हैं। दीन और दुःखी देवताओं तथा मनुष्यों का पौरुष अब प्रचण्ड हो रहा है। शिशुओं के तन में नित्य तुम्हारा काल जन्म ले रहा है, प्रत्येक नव-जात शिशु के नयन तुम्हारी मृत्यु का नवीन द्वार खोल रहे हैं। (अब भूलोक अथवा स्वर्लोक में जन्म लेने वाला प्रत्येक बालक तुम्हारे लिए काल के रूप में जन्म ले रहा है।)

[९९]

होता है कैशोर शक्ति औ चेतनता से पूर्ण प्रवुद्ध,
शक्ति-सिद्ध योगी-कुमार ही कर सकते असुरों से युद्ध,
व्यर्थ प्रलाप बन्द कर साधो अस्त्र क्रूरतम दानवराज !
पूर्ण तुम्हारे सब पापो का प्रयश्चित्त हो रहा आज।"

[१००]

कह इतना तत्क्षण कुमार ने किया अस्त्र वर्षण आरम्भ,
भूल गया विभ्रान्त असुर को विगत वीरता का सब दम्भ;
हो उन्मत्त प्रचण्ड वेग से करने लगा अस्त्र सचार,
देख अपरिचित रूप असुर का विस्मित होते देव-कुमार।

९९—अर्थ किशोरावस्था शक्ति और चेतनता से युक्त होने के कारण पूर्ण सजग होती है। शक्ति की सिद्धि को प्राप्त करके योगीकुमार ही असुरों से युद्ध कर सकते हैं; हे दानवराज, व्यर्थ की बातें बन्द करके कठोरतम अस्त्रों को सँभालो, आज तुम्हारे सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित हो रहा है।"

१००—अर्थ इतना कहकर कुमार ने उसी क्षण अस्त्रों की वर्षा आरम्भ कर दी। कुमार की अस्त्र वर्षा अमित दानव को अपनी प्राचीन वीरता का समस्त दम्भ भूल गया और वह उन्मत्त होकर प्रचण्ड वेग से अस्त्रों का संचार करने लगा। उस राक्षस का अपरिचित (जो पहले कभी नहीं देखा था) रूप देखकर देव-कुमार आश्चर्य कर रहे थे।

[१०१]

उत्तेजित उसकी हुंकृति से घिर आये वहु दानव वीर,
लगे बरसने वज्र वेग से कुन्त, कृपाण, शक्ति औ तीर;
अद्भुत हुआ देव-दनुजों का वह भीषण अन्तिम संग्राम,
हो उन्मत्त वीरता ने था किया नग्न नर्तन उद्दाम।

[१०२]

सेनानी के सैनिक वटु भी बना अभेद्य अटल प्राचीर,
लगे छोड़ने वायु वेग से दानव दल पर भीषण तीर;
देवों ने भी उत्साहित हो किये आयुधों के द्रुत वार,
होने लगा प्रचण्ड वेग से असुरों का अन्तिम संहार।

१०१—अर्थ उसकी हुंकार से उत्तेजित होकर बहुत से राक्षस वीर इकट्ठे हो गये और युद्ध में वज्र के समान वेग से कुन्त, कृपाण, शक्ति और बाण बरसने; देवताओं और असुरों का वह भयंकर और अन्तिम युद्ध अद्भुत था। उस युद्ध में मानो उद्दाम और उन्मत्त होकर वीरता ने नग्न नृत्य किया था।

१०२—अर्थ सेनानी के सैनिक बटुक भी अभेद्य और अटल प्राचीर बनाकर, दानव दलों पर वायु के वेग से भयंकर तीर छोड़ रहे थे। देवताओं ने भी उत्साहित होकर तीव्र गति से अपने अस्त्रों के प्रहार किये। इस प्रकार प्रचण्ड वेग से असुरों का अन्तिम नाश होने लगा।

[१०३]

वाणो के सर्पण से उठती फणियो की तीखी फुंकार,
करती थी कम्पित दिगन्त को वीरों की प्रचण्ड हुंकार;
अवनी को आकम्पित करती शक्ति हरण, कर कितने प्राण,
करती कितने शीष गदायें चूर्ण दानवों के निस्त्राण।

[१०४]

कितने घायल असुर भूमि पर पडे, रहे थे विवश कराह,
अस्त्रों का संघर्ष मार्ग में करता था मानों नवदाह,
प्रलय-घनों सी टकरा नभ मे चण्ड शक्तियाँ कर रव घोर,
करती थी विच्छुरित व्योम मे विद्युत ज्वालायें चहुँ ओर।

१०३—अर्थ बाण की तीव्र गति से फणधर सर्प की सी तीखी फुंकार उठती थी, वीरों की प्रचण्ड हुंकार दिशाओं को कम्पित कर रही थी। कितने प्राणों का हरण करके शक्ति नामक अस्त्र पृथिवी को कम्पित कर रहे थे, गदायें दानवों के अनेक शीषों को चूर्ण कर रहीं थीं, उनके प्रहार से त्राण होना असम्भव हो रहा था।

१०४—अर्थ विवश होकर अनेको घायल असुर भूमि पर पड़े हुए कराह (चिल्ला) रहे थे। अस्त्रों के संघर्ष से अग्नि निकल रही थी जो ऐसी प्रतीत होती थी मानों पड़े हुए शवो का दाह संस्कार हो रहा हो। आकाश में प्रचण्ड शक्तियाँ टकराकर प्रलयकालीन मेघों के समान भयंकर शब्द कर रही थी और आकाश में चारों ओर बिजली की ज्वालायें विकीर्ण कर रही थीं।

[१०७]

कम्पित हुई दिशायें, थर थर डोली मानों धरा श्रधीर,
कठ–वेध के लिये स्कन्द ने छोड़ा अन्तिम अद्भुत तीर,
गिरा भूमि पर कट कर उसका शीष उसी क्षण राहु समान,
गिरा हिमालय-सा खण्डित हो रुण्ड धरित्री पर निष्प्राण।

[१०८]

मचा असुर सेना में उसके गिरते भीषण हाहाकार,
दानव करने लगे पलायन अस्त्र, शस्त्र औ युद्ध विसार,
समाचार सुन शोणितपुर में फैल गया अद्भुत आतंक,
अस्त हो गया आज युद्ध मे दानव कुल का पूर्ण मयंक।

१०७—अर्थ (उस राक्षस के गर्जन से) दिशायें काँपने लगीं तथा ऐसा प्रतीत होने लगा मानो धैर्यशीला धरा भी अधीर होकर थर–थर काँप रही है। उस तारक के कठ को अलग करने के लिए सेनानी स्कन्द ने अन्तिम एक अद्भुत तीर छोड़ा। (उस तीर से) उस राक्षस राज का शीष राहु के समान कटकर भूमि पर उसी क्षण गिर पड़ा और उसका रुण्ड (धड़) निष्प्राण और खण्डित होकर पृथिवी पर हिमालय के समान गिरा।

१०८—अर्थ उस तारक के गिरते ही असुरों की सेना में भीषण हाहाकार मच गया। अस्त्र-शस्त्र और युद्ध को छोड़कर दानव भागने लगे। उसकी मृत्यु के समाचार से उसकी राजधानी शोणितपुर में एक अद्भुत आतंक छा गया। आज युद्ध में तारकासुर के मरण से मानो दानव कुल के पूर्ण चन्द्र का अस्त हो गया।

सर्ग ४

जयन्त अभिषेक

शोणितपुर में जयन्त के अभिषेक, जयन्त के विवाह,
स्वर्ग में जयन्त और सेनानी के स्वागत
तथा विजयोत्सव का वर्णन ।

[१]

सुनकर तारक का निधन भयकर रण में,
हो उठे हर्ष के पर्व अखिल त्रिभुवन में;
छा रहा शोक का तम पर शोणितपुर में,
जल रही चिताये वहाँ सभी के उर में।

[२]

थे युवक अनेकों गये युद्ध में मारे,
कितने जीवन के टूटे सुदृढ सहारे !
रो रही प्रियायें याद प्रियों की करके,
चीत्कार कर रही धूल द्वार की भरके।

१—अर्थ भयंकर युद्ध क्षेत्र में तारक का निधन (मृत्यु) सुनकर सम्पूर्ण त्रिभुवन में हर्ष के पर्व मनाये जाने लगे। किन्तु शोणितपुर में शोक का अन्धकार छा रहा था और सबके हृदयों में वहाँ पर शोक की चितायें जल रहीं थीं।

२—अर्थ राक्षसों के अनेकों युवक युद्ध में मारे गये थे, उनके मरने से (उनके माता-पिता तथा स्त्रियों के) जीवन के सुदृढ सहारे टूट गये थे। उनकी स्त्रियाँ अपने प्रियतमों की याद कर करके रो रहीं थीं तथा घर के दरवाजों की धूल हाथों में भर कर जोर-जोर से रो रहीं थीं।

[३]

हो रहे धूल से वस्त्र स्रस्त–से मैले,
धूसरित केश थे अस्त व्यस्त हो फैले,
भूली थी उनको सुध–बुध अपने तन की,
था कौन जानता पीड़ा उनके मन की !

[४]

था कौन नियति का वज्र अचानक टूटा,
किसने उनका सर्वस्व सदा को लूटा !
हो गया युद्ध में कैसे वाम विधाता,
सन्तप्त चित्त था उनका समझ न पाता।

३—अर्थ उन युवतियों के अस्त व्यस्त-से वस्त्र धूल से धूसरित अथवा मैले हो रहे थे, धूल से भरे हुए उनके केश (सिर के बाल) अस्त-व्यस्त होकर बिखरे हुए थे। (प्रियतमों के शोक में) उनको अपने तन की सुध-बुध भूली हुई थी। उनके मन की पीड़ा को कोई नहीं जान सकता था।

४—अर्थ भाग्य का कौनसा वज्र आज अचानक टूट पड़ा था, उन युवतियों का सर्वस्व सदा के लिए किसने लूट लिया ! युद्ध में न जाने आज विधाता कैसे विपरीत हो गया। उनका दुःख से सन्तप्त मन इस बात को समझ नहीं पा रहा था।

[५]

जिनका सब जीवन–काल युद्ध में बीता,
बहु बार जिन्होंने सुर–नर सबको जीता,
किस छल–बल से वे गये युद्ध में मारे !
किस ज्वाला में जल गये स्वयं अगारे !!

[६]

उजड़ी–सी लगती थी असुरों की नगरी,
सूनी–सी लगती उसकी डगरी डगरी;
घर घर से उठती करुण हूक पल पल में,
छाया था भय औ विस्मय राज महल में।

५—अर्थ जिनका सारा जीवन युद्ध ही में बीता था, तथा जिन्होंने अनेकों बार देवताओं और मनुष्यों पर विजय प्राप्त की थी, न जाने आज किस छल और बल से वे युद्ध में मारे गये ! जो स्वयं अगारे के समान तेज से जलते हुये थे और सबको युद्ध में भस्म करते रहे थे, आज वे स्वयं किसके तेज की अग्नि में जलकर भस्म हो गये।

६—अर्थ (तारक की मृत्यु के बाद) असुरों की नगरी उजडी सी लगती थी, तथा उस नगरी की डगरी डगरी सूनी-सी लगती थी, राक्षसों के युद्ध में मारे जाने से शोणितपुर के नगर और उसके मार्गों में अब चहल-पहल दिखाई नहीं देती थी। वहाँ के प्रत्येक घर में से पल-पल पर करुण रुदन की हूक उठती थी, राजमहल में भय और आश्चर्य छाया हुआ था।

[७]

वे वीर रमणियाँ स्वय जिन्होंने कर से,
पतियों को सज्जित करके अपने घर से;
उत्साह सहित था युद्ध-भूमि में भेजा,
करने को पौरुष वारम्वार सहेजा,

[८]

रण में पतियों के विक्रम सुनकर फूली,
आनन्द-दोल में विजय गर्व से झूली;
गा गा कर जय के गीत गर्व के स्वर से,
जय-तिलक किया वीरों का पुलकित कर से,

७—अर्थ जिन वीर रमणियों ने अपने हाथों से अपने पतियों को सजाकर अपने घर से उत्साह पूर्वक युद्ध भूमि के लिए भेजा था और जिन्हाने अपने पतियों को युद्ध भूमि में अपना पुरुषार्थ दिखाने के लिए बार बार उत्साहित किया था।

८—अर्थ जो युवतियाँ युद्ध में अपने पतियों के पराक्रम को सुन कर मनमें प्रसन्न होती थीं तथा विजय के गर्व से आनन्द के हिंडोले में झूलती थीं। गर्व के स्वर से जय के गीत गा-गाकर जिन्होंने अपने पुलकित कर से वीरों के विजय का तिलक किया था।

[९]

वे आज पीटकर शीष विकल हो रोती,
मिट रहे धूल में आंखों के मृदु मोती;
कुररी-सी करती क्रन्दन आर्त्त विपिन में,
वन कर करुणा की मूर्ति आज दुर्दिन मे।

[१०]

लख माताओं को अपनी आकुल रोते,
मन में विस्मित बालक आतंकित होते;
रचते अनर्थ के धूमिल चित्र हृदय में,
सकुचित किन्तु वे रहते अस्फुट भय में।

९—अर्थ वे रमणियाँ आज व्याकुल होकर सिर पीट-पीट कर रो रही हैं। आँखों के आँसू के कोमल मोती धूल में गिर गिरकर मिट रहे थे। वे युवतियाँ दुःखी मन से जोर-जोर से चिल्लाकर कुररी पक्षी की भाँति अरण्य-रोदन कर रहीं थीं। आज के दुर्दिन में वे करुणा मूर्ति-सी बन रहीं थीं।

१०—अर्थ अपनी माताओं को आकुल होकर रोते देखकर बालक मन में विस्मय से दुःखी होते थे। वे बालक अपने मन में भूत और भावी अनर्थ के धूमिल चित्र रचते थे अर्थात् उस अनर्थ की अस्पष्ट कल्पना करते थे। किन्तु वे अस्पष्ट भय में संकोच करते थे तथा बिना कुछ कहे सुने शान्त रहते थे अर्थात् उस दुःखी वातावरण में वे किसी से कुछ पूछ नहीं पाते थे।

[११]

वृद्धायें उनको हाथ पकड़ ले जाती,
नाना प्रकार से थी उनको समझाती;
वचनों से वधुओं का आश्वासन करती,
कहते कहते ही किन्तु स्वयं रो पड़ती।

[१२]

लेकर शिशुओं को गोद लगाकर छाती,
करुणा से विह्वल हो होकर दुलराती;
मृदु हाथ फेर कर मृदु अंगो पर उनके,
करती वर्णन निज वीर सुतो के गुण के—

११—अर्थ उनको रोता देखकर वृद्धायें उन्हें हाथ पकड़ कर अन्दर ले जाती थीं तथा अनेक प्रकार से उन्हें सान्त्वना देकर समझाती थीं। अपनी वधुओं को धीरज बँधाने के वचन कहकर उन्हें सान्त्वना देती थीं, किन्तु उन्हें समझाते समझाते वे स्वयं भी रोने लग जाती थीं।

१२—अर्थ शिशुओं को गोद में उठाकर उन्हें छाती से लगा लेती थीं, उन बच्चों की दीन दशा को देखकर करुणा से विह्वल होकर उन्हें प्रेम से पुचकारतीं थीं। उन बालकों के कोमल अंगों पर अपने कोमल हाथ फेरकर वृद्धायें अपने वीर पुत्रों के गुणों का वर्णन करती थीं।

[१३]

"हा वीर वत्स ! सबकी आँखो के तारे,
वृद्धा माता की वय के एक सहारे;
वधुओ के सुख-सौभाग्य, माँग के मोती,
शिशुओ की आशा तुम में स्वप्न सँजोती !

[१४]

क्या झूठे ही हैं जग के सारे नाते !
तो आसू किसका मोल अमोल चुकाते !!
क्या मरण एक है दर्पण इस जीवन का !
जय, कीर्ति, भूति क्या मोह मात्र है मन का !!

१३—अर्थ "हे वीरपुत्र ! तुम सबकी आँखो के तारे थे। तुम वृद्धा माता के जीवन के एक सहारे थे, वधुओं के सुख और सौभाग्य थे तथा उनकी माँग के मोती थे अर्थात् स्त्रियों की माँग का सुहाग पुरुषों के जीवन के साथ ही रहता है। इन बालकों की आशा तुम्हारे ऊपर पलकर ही अपने भविष्य के स्वप्नो को सँजो रही थी।

१४—अर्थ क्या इस संसार के सारे नाते झूठे ही हैं। क्या उनमें कोई सत्य अथवा स्थायित्व नहीं है। तो फिर हमारे आँसू किस सम्बन्ध का मोल चुकाते हैं। हम किसके लिये रोते हैं ? सम्बन्धों की सत्यता और स्थिरता ही करुणा का मूल्य है। वस्तुतः सम्बन्ध अमूल्य हैं। क्या मृत्यु ही जीवन का एक दर्पण है, जिसमें जीवन की वास्तविकता दिखाई देती है, क्या विजय, यश ऐश्वर्य आदि केवल मन के मोह है ? इनमें कोई सत्यता अथवा सार नहीं ?

[१५]

था बचपन से ही युद्ध तुम्हारी खेला,
किसने त्रिभुवन में वार तुम्हारा झेला !
तुम हँसते हँसते समर भूमि को जाते,
आकर चरणों में शीष सहर्ष झुकाते !

[१६]

जय तिलक सदा कर धन्य हुई यह माता,
पर हाय ! आज क्यों उलटा हुआ विधाता !
हो गये पुण्य क्या आज हमारे रीते !
होते अनर्थ जो अब अनेक अनचीते !!

१५—अर्थ बचपन से ही युद्ध तुम्हारे लिए खेल रहा था। इस त्रिभुवन में कोई ऐसा वीर नहीं था, जिसने तुम्हारे प्रहार को झेला हो अर्थात् तीनों लोकों में तुम्हारे वार को सहन करने वाला कोई वीर नहीं था। तुम युद्ध भूमि को हँसते-हँसते जाया करते थे और विजय प्राप्त करके जब आते थे तब हर्ष सहित आकर चरणों में अपना सिर झुकाते थे।

१६—अर्थ ये तुम्हारी मातायें सदा तुम्हारे मस्तक पर जय का तिलक धन्य हुआ करती थीं, हाय ! आज न जाने क्यों हमारे विधाता उलटा हो गया है ! क्या आज हमारे सब पुण्य समाप्त हो गये ! जो अब अनेक ऐसे अनर्थ हो रहे हैं जिनकी हमने कल्पना भी नहीं की थी।

[१७]

देकर आशीष न कितनी बार पठाये,
धन औ बन्दी ले सदा समर से आये;
त्रिभुवन की श्री संचित कर शोणितपुर में,
भर दिया अमित ऐश्वर्य, हर्ष उर उर में।

[१८]

कितने सुर, नर, किन्नर, गन्धर्व बिचारे,
तुमसे बल, विक्रम औ कौशल में हारे;
आ क्रीतदास-से सेवा सविनय करते,
थे रहे तुम्हारी दृष्टि-मात्र से डरते।

१७—अर्थ हमने न जाने कितनी बार आशीर्वाद देकर तुम्हें युद्ध को भेजा था और वहाँ से विजय के साथ-साथ धन लेकर तथा बहुत से सैनिकों को बन्दी बनाकर तुम सदा घर लौटते थे। इस शोणितपुर की राजधानी में तीनों लोकों की लक्ष्मी (धन) को इकट्ठा करके यहाँ के प्रत्येक मनुष्य के हृदय में अत्यन्त हर्ष और ऐश्वर्य भर दिया था।

१८—अर्थ न जाने कितने देवता, मनुष्य, किन्नर तथा गन्धर्व बिचारे तुमसे बल, विक्रम तथा युद्ध-कौशल में हारे थे। वे सब हारकर बन्दी बनकर तुम्हारे खरीदे हुए दास से बनकर विनय सहित तुम्हारी सेवा करते थे तथा वे तुम्हारी दृष्टि-मात्र से डरते रहते थे।

[१६]

कितनी अबलायें भर आखों में मोती,
कितनी कुमारियाँ सौ सौ आसू रोती;
कितनी अप्सरियाँ-किन्नरियाँ सुकुमारी,
करती परिचर्या वीर ! सभीत तुम्हारी ।

[२०]

उन आखो के पानी से चढी दुधारी,
किस सुर-नर की बन आई मृत्यु तुम्हारी,
क्या जन्मा कोई वीर नया त्रिभुवन मे,
जिसने तुमको कर दिया पराजित रण मे।

१६—अर्थ तुम्हारे अत्याचारों से पीडित न जाने कितनी अबला स्त्रियाँ अपनी आँखो मे मोती के समान आँसुओं को बहाती रहती थीं और कितनी कुमारियाँ सौ सौ आँसू से हर समय रोती रहती थीं। हा वीर ! न जाने कितनी सुकुमार अप्सरायें तथा किन्नरियाँ भय से युक्त होकर तुम्हारी दासी बनकर तुम्हारी सेवा किया करती थीं।

२०—अर्थ (उन अबला तथा सुकुमारी युवतियों के) आँसू के पानी से चढी हुई किस मनुष्य अथवा देवता की तलवार आज तुम्हारी मृत्यु बनकर आ गई। क्या इस त्रिभुवन मे किसी नवीन वीर ने जन्म ले लिया है, जिसने युद्ध में तुम्हें हरा दिया। (अब तक तो त्रिलोक मे कोई वीर मनुष्य अथवा देवता तुम्हें युद्ध मे हरा नहीं सका था।)

[२१]

तुमने न किसी का जीवन जीवन माना,
मद में न हृदय का मर्म तनिक पहचाना;
बल से आत्मा के अंकुर निर्दय दलते,
तुम रहे धरा के सुमन नृशंस कुचलते।

[२२]

उसका ही प्रायश्चित हुआ क्या रण में!
तुमने क्या क्या देखा निज अन्तिम क्षण में!!
तुम हुये मृत्यु में मुक्त सभी बन्धन से,
ऋण हमें चुकाना अभी शेष जीवन से।

२१—अर्थ तुमने अपने मद के सामने किसी के जीवन को जीवन नहीं माना था और अपने पराक्रम के मद में तुमने हृदय का मर्म तनिक भी नहीं जाना था। अपने बल से तुमने आत्मा के अंकुरों को निर्दय होकर कुचला था अर्थात् तुमने अपने बल दर्प से आत्मा के भाव प्रसूनों को सदा कुचला था। तुम सदा इस पृथिवी के भाव-प्रसूनों को नृशंस होकर कुचलते रहे थे अर्थात् पृथिवी के सुन्दर मन वाले कोमल जनों को निर्दयता से मारते रहे थे।

२२—अर्थ क्या आज उन्हीं पूर्व पापों का प्रायश्चित युद्ध में हुआ है। न जाने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में तुमने क्या क्या दुःख देखे होंगे। मृत्यु ने तुम्हें तो संसार के सब बन्धनों से मुक्त कर दिया, किन्तु हमें तो अभी अपने शेष जीवन में पापों के ऋण चुकाने हैं।

[२३]

अब है देवों की दया हमारी आशा,
होगी जीवन की क्या नूतन परिभाषा !
यदि उनसे हमको जीवन दान मिलेगा,
तो शोणिनपुर नव स्वर्ग समान खिलेगा !"

[२४]

कहते कहते निज हत जीवन की गाथा,
वृद्धायें रोती पकड़ करों मे माथा;
सुन वृद्ध क्रुद्ध हो हो कर भीतर आते,
वृद्धाओं को आवेश सहित समझाते ।

२३—अर्थ देवों की दया पर ही अब हमारी आशा अवलम्बित है। न जाने अब हमारे जीवन की नवीन क्या परिभाषा होगी अर्थात् न जाने अब हमारे जीवन का कैसा रूप होगा। यदि उनसे (देवताओं से) हमें जीवन का दान मिल जायेगा, तो यह शोणितपुर एक नवीन स्वर्ग की भाँति फले फूलेगा।

२४—अर्थ वृद्धायें अपने अभागे जीवन की गाथायें सुनाकर हाथों से अपना मस्तक पकड़ कर रोती थीं। उनका रोना सुनकर वृद्ध पुरुष क्रोध कर करके अन्दर आते थे और आवेश पूर्वक उन वृद्धाओं को समझाते थे।

[२५]

"चुप रहो, हो गया सब जो कुछ था होना,
अब करो शान्ति, है व्यर्थ तुम्हारा रोना;
है उचित बड़ों को धीरज ही दुर्दिन में,
आश्वासन दो वधुओं को समय कठिन में।

[२६]

मर गये युवक, पर वृद्ध अभी हैं जीते,
क्या बाहु-कोष हो गये हमारे रीते !
हो गईं काल से यद्यपि आज पुरानी,
है शेष अभी इन तलवारों पर पानी।

२५—अर्थ "जो कुछ होना था वह हो गया अब तुम चुप रहो, अब तुम शान्ति रखो, तुम्हारा रोना व्यर्थ है। दुर्दिनों में बड़ों को धैर्य रखना ही उचित है और ऐसे कठिन समय में तुमको अपनी वधुओं को धैर्य देना चाहिए अर्थात् तुम अब धैर्य रखो तथा वधुओं को धीरज बँधाओ।

२६—अर्थ युवक तो सब मर चुके हैं, किन्तु वृद्ध अभी जीवित हैं, क्या हमारे बाहुओं के कोष खाली हो गये हैं, क्या हमारे पराक्रम समाप्त हो गये हैं अर्थात् हमारा पराक्रम अभी समाप्त नहीं हुआ है, अवसर आने पर हम अपना पराक्रम दिखावेंगे। ये हमारी पराक्रम की तलवारें यद्यपि समय की गति से वृद्ध होने के कारण पुरानी हो गई हैं, किन्तु अभी भी उन तलवारों पर पानी अर्थात् धार शेष है। (हम वृद्ध हो गये हैं फिर भी हमारे बाहुओं में पराक्रम शेष है। अतः तुम्हें निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

[२७]

हमसे बढकर ये बालक वीर तुम्हारे,
सबके जीवन के दृढ औ दीर्घ सहारे;
हो शान्त, स्नेह से, इन्हे यत्न से पालो,
इनके जीवन मे धूल न सहसा डालो।

[२८]

आंसू से इनकी आग न अभी बुझाओ,
कातर रोदन से इन्हे न दीन बनाओ;
ये वीरो की सन्तान, पूर्ण यौवन में,
बन वीर, करेंगे बहु विक्रम जीवन में।"

२७—अर्थ हमसे भी बढ़कर ये तुम्हारे वीर बालक हैं, जो कि सबके जीवन के दृढ और दीर्घ सहारे हैं। तुम सब शान्त होकर प्रेम से यत्न पूर्वक इन बच्चों का पालन करो, इन बच्चों के जीवन में अचानक धूल मत डालो अर्थात् इनके उत्साह को निराशा की धूल से मन्द न करो।

२८—अर्थ इनके हृदय के पराक्रम की अग्नि को अपने आँसुओं से मत बुझाओ, अपनी करुणा से इनके तेज को मन्द मत करो। अपने इस दुःखी रोदन से इन बच्चों को दीन मत बनाओ। ये वीरों की सन्तान हैं; अपने पूर्ण यौवन में, ये वीर बनकर अपने बाहुओं का पराक्रम जीवन मे दिखायेंगे।"

[२९]

"भू-लोक, स्वर्ग अथवा इस शोणितपुर में,
क्या सभी योषिताओं के अविदित उर में
रहती अन्तःस्थित सदा एक ही नारी,
आँसू से भीगी, करुणा से सुकुमारी !"

[३०]

यह सोच रहे निज चिन्तित भी दृढ़ मन में,
आ गये वृद्ध ले बालों को प्रांगण में;
ज्यों बढ़े द्वार की ओर तनिक चल आगे,
गम्भीर नाद से पन्थ नगर के जागे।

२९—अर्थ पृथिवी लोक में, स्वर्ग लोक में अथवा शोणितपुर में, क्या सभी स्त्रियों के (पुरुषों के लिए अज्ञात) हृदय में सदा एक ही नारी स्वरूप भीतर निवास करता है, जो अश्रुमय करुणा से आर्द्र एवं कोमल है।"

३०—अर्थ शोणितपुर के वृद्ध जनों का मन पराजय से चिन्तित होने पर भी अपने सहज पौरुष के कारण दृढ़ था। वे अपने दृढ़ मनमें इस प्रकार सोचते हुए, बालकों को लेकर आँगन में आ गये। थोड़ा सा आगे चलकर जैसे ही वे द्वार की ओर बढ़े, तभी नगर के मार्ग गम्भीर नाद से जाग गये अर्थात् गम्भीर शब्द को सुनकर सारा नगर सचेत हो गया था।

[३१]

उठ चतुर्दिशाओं से समवेत गगन में,
पथ में, प्रांगण में, पुर के भवन भवन मे;
जिसकी प्रतिध्वनि का घोष भयकर गूँजा;
आक्रमण हुआ क्या यह देवों का दूजा!

[३२]

शंकित भी सब अपने द्वारों पर आये,
सबने ध्वनि पर निज कान सतर्क लगाये;
दी किन्तु दिखाई सहसा देव-पताका,
उड़ रही गगन मे जैसे दूर वलाका।

३१—अर्थ वह शब्द चारों दिशाओं से उठकर आकाश में इकट्ठा हो गया, नगर के मार्गों में, आँगनों में तथा नगर के घर घर में उस भयकर घोष की प्रतिध्वनि गूँज रही थी, उसको सुनकर असुरों के मन शंकित हो उठे और उन्होंने सोचा कि क्या यह देवताओं का दूसरा आक्रमण नगर पर हो रहा है।

३२—अर्थ शंकित हृदय से सब असुरों के वृद्ध पिता अपने द्वारों पर आये और उस ध्वनि को सुनने के लिए सबने अपने कानों को सतर्क कर लिया। किन्तु तभी उनको देवताओं की शुभ पताका (ध्वजा) सहसा दिखाई दी, और वह आकाश में उड़ती हुई ऐसी लग रही थी मानो बगुलों की पंक्ति हो। (शुभ्र वर्ण की वह पताका शान्ति का संकेत कर रही थी)।

[३३]

या आगे वीर कुमार देव-सेनानी,
अनुगत थे सैनिक सुर-कुमार अभिमानी;
करते वे जय जयकार घोर पल पल में,
पुर क्षुब्ध हो रहा बार बार हलचल में।

[३४]

देवों की सेना जब पुर-पथ में आई,
निस्तब्ध शान्ति सर्वत्र नगर में छाई;
हो गया मन्द अन्तःपुर का भी रोना,
स्तम्भित-सा भय से लगता कोना कोना।

३३—अर्थ देव-सेनानी वीर कुमार कार्तिकेय सबसे आगे थे, उनके पीछे-पीछे अभिमानी सैनिक देव कुमार आ रहे थे। वे सब पल-पल में उच्च स्वर से सेनानी का जय जयकार कर रहे थे, उनकी हलचल से शोणितपुर का वातावरण बार-बार क्षुब्ध हो रहा था।

३४—अर्थ जब देवताओं की सेना नगर के मार्ग में आई, तो नगर में चारों ओर निस्तब्ध शान्ति छा गई। अन्तःपुर का रोना भी अब बहुत मन्द हो गया था, वहाँ का कोना कोना भय से स्तम्भित सा दिखाई दे रहा था।

[३५]

आशंकाओं की मौन कल्पना करते,
थे वृद्ध द्वार पर देख रहे सब डरते;
बालों को अंक सशंक लगाते अपने,
लखते आशा के आशंका में सपने ।

[३६]

कर भ्रमण पथों में पुर आतंकित करती,
असुरों के मन में भय औ विस्मय भरती,
देवों की सेना राजमहल पर आई,
पर्वत पर मानों प्रलय-घटा थी छाई ।

३५—अर्थ अनेक आशंकाओं की मन में मौन भाव से कल्पना करते हुए सब वृद्ध मन में डरे हुए से द्वार पर खड़े होकर (देव-सेना को) देख रहे थे। वे बालकों को डर के कारण गोदी में समेट रहे थे (किन्तु देवताओं की सेना की शान्तिपूर्ण स्थिति के कारण वे वृद्ध जन) आशंका (भय) में भी भविष्य की सुन्दर आशाओं के स्वप्न देख रहे थे।

३६—अर्थ देव सेना नगर के मार्गों में भ्रमण करके तथा नगर को आतंकित (भयभीत) करती हुई, असुरों के मन में भय और आश्चर्य भरती हुई, देवताओं की सेना राजमहल पर आ गई, राजमहल पर जब देवसेना इकट्ठी हुई तब ऐसा प्रतीत होता था मानों पर्वत पर प्रलय की घटा छा गई हो।

[३७]

कर दुर्ग द्वार को भंग वेग से क्षण में,
समवेत हुई सब सुर सेना प्रागण में,
रुक गये सभी भट आकर सभा-भवन में,
हो गये सभा के तत्पर आयोजन में।

[३८]

भयभीत प्रथम हो भीषण कोलाहल से,
रोईं प्रमदायें ढांप वदन अंचल से;
कोई विलोक उत्पात न अन्त.पुर में,
निर्भय-सी फिर हो रहीं सशंकित उर में।

३७—अर्थ किले के द्वार को वेग के साथ क्षण भर में ही तोड़ कर सब सुर-सेना राजमहल के प्रॉगण में एकत्र हो गई। सभा-भवन में आकर सभी वीर रुक गये और सभी सभा के आयोजन की तैय्यारी में लग गये।

३८—अर्थ राजमहल की प्रमदायें (महिलायें) पहले तो भीषण कोलाहल से भयभीत हुईं और अंचल से अपना मुख ढककर रोने लगीं। किन्तु देवसेना के आने के बाद अन्तःपुर में किसी प्रकार का कोई उत्पात न देखकर, वे हृदय में फिर निर्भय सी हो गईं, अर्थात् उनको देवताओं से सद्व्यवहार की आशा हुई, यद्यपि फिर भी उनके हृदय में अनिश्चित आशंकायें बनी रहीं।

[३९]

सेनानी ने निज दूत भेज कर नय से,
करके आश्वासित उनको पूर्ण अभय से,
पुर के वृद्धों को आदर सहित बुलाया।
जन-वर्ग समुत्सुक संग सकल घिर आया।

[४०]

तब देख सभा का कुछ आयोजन-क्रम-सा,
अन्तपुर का मिट चला भयंकर भ्रम-सा,
वधुओं को वर्जित करती तीक्ष्ण नयन से,
वृद्धायें लगीं निरखने वातायन से।

३९—अर्थ सेनानी ने नय (शील) सहित अपना दूत भेजकर, उन सबको पूर्ण अभय का आश्वासन दिया, फिर उन्होंने नगर के वृद्धों को आदर सहित बुलाया। उन (वृद्धों) के साथ नगर का जन-समाज भी उत्सुकता के कारण घिर कर आ गया।

४०—अर्थ तब सभा के आयोजन का कुछ क्रम (सिलसिला) देख कर, अन्तःपुर का भयंकर भ्रम मिटने लगा। राज-महल की वृद्ध स्त्रियाँ युवती वधुओं को तेज आँखें दिखाकर सभा देखने से वर्जित करने लगीं, किन्तु उनको वर्जित कर वे स्वयं वातायन से सभा का उपक्रम देखने लगीं।

[४१]

जब पूर्ण जनों से सभा यथोचित जानी,
अवसर विलोक कर उठा वीर सेनानी;
औ सिंह-कण्ठ से विजय दर्प भर बोला,
(पुर के लोगों ने अपना हृदय टटोला)-

[४२]

"शोणितपुर के सब वर्तमान अधिवासी,
निःशंक आज हों देवों के विश्वासी,
हम नहीं ऋणों का ब्याज चुकाने आये,
हम नहीं युद्ध की आग जगाने आये ।

४१—अर्थ जब सभा में सब असुर जन उपस्थित हो गये और सभा भवन असुर जनों से यथोचित रूप से पूर्ण हो गया, तब अवसर देखकर वीर सेनानी उठा और अपने सिंह के समान कण्ठ से विजय के दर्प से युत उच्च गम्भीर स्वर से बोला— (तब पुर के लोगों ने अपना हृदय टटोला अर्थात् अपने मन में सोचने लगे कि अब ये क्या कहेंगे । आशंकित पुरजनों का हृदय आकुल और उत्सुक हो रहा था । वे आशंका से सोच रहे थे कि अब क्या होगा ?)

४२—अर्थ "अब शोणितपुर के सब वर्तमान निवासियो, आज तुम निर्भय होकर देवताओं का विश्वास करो । हम तुम्हारे पिछले ऋणों (अत्याचारों) का ब्याज (बदला) चुकाने नहीं आये हैं और न हम युद्ध की आग जलाने नहीं आये हैं अर्थात् हम तुम लोगों पर अत्याचार करने या युद्ध करने नहीं आये हैं ।

[४३]

हो गया स्वय ही अन्त भयंकर रण का,
है शोक हमें तारक के वीर मरण का;
त्रिभुवन में था वह अद्भुत वीर अकेला,
रण में कब उसका वार किसी ने झेला !

[४४]

त्रिभुवन उसके बल विक्रम से परिचित है,
पद पद पर उसकी कीर्ति-कथा अंकित है;
शोणितपुर का यह सार्थक नाम निराला,
होगा युग-युग उसकी स्मृति की जयमाला !

४३—अर्थ भयंकर युद्ध का अन्त अब अपने आप हो गया है, हमें तारक के वीरता पूर्वक मरने का दुःख है। तीनों लोकों में वह अकेला अद्भुत वीर था। त्रिभुवन में उसके समान अद्भुत और पराक्रमी कोई दूसरा वीर न था। युद्ध में उसका वार कभी कोई नहीं सह सका।

४४—अर्थ उसके बल और पराक्रम से तीनों लोक परिचित हैं। (तीनों लोकों में उसने इतने युद्ध और अत्याचार किये थे कि सभी उसके पराक्रम से भली भाँति परिचित हैं।) तीनों लोकों में पद-पद पर (स्थान-स्थान पर) उसकी कीर्ति की कथा लिखी हुई है। (तीनों लोकों के स्थान-स्थान पर उसने कोई न कोई अनोखा पराक्रम दिखाया था और अनोखा अत्याचार किया था, जिसके कारण स्थान स्थान पर उसके यश का इतिहास लिखा हुआ है।) शोणितपुर का यह सार्थक और निराला नाम ही युग युग तक उसकी याद को विजय की माला पहनाता रहेगा। (शोणितपुर में पराजित और वन्दीजनों का वध होने के कारण उसका नाम सार्थक है और उसकी विजयों की परम्परा का प्रतीक है।

[४५]

इस राजभवन औ पुर के प्रति घर घर में,
आँसू की अञ्जलि औ करुणा के स्वर में;
कितने ऋषि, मुनि औ नर नय के अधिकारी,
वर चुके प्राण से उसकी कीर्ति कुमारी !

[४६]

कितनी अवलाओं के आँसू की धारा,
बन चुकी कीर्ति का अर्घ्य वीर के न्यारा;
कितनी सतियों की आत्म ज्योति से जागी,
बन चुकी चितायें शुचि आरती अभागी !

४५—अर्थ इस राजभवन में तथा नगर के प्रत्येक घर-घर में आँसू भरे नेत्रों की अँजलि से तथा करुणा के स्वर में, न जाने कितने ऋषि, मुनि और सदाचार के अधिकारी कितने मनुष्य अपने प्राणों को देकर उसकी कीर्ति रूपी कुमारी का वरण कर चुके हैं अर्थात् अपने प्राणों की बलि देकर उसकी कीर्ति को अमर बना चुके हैं।

४६—अर्थ न जाने कितनी अबला स्त्रियों के आँसुओं की धारा उस अद्भुत वीर की कीर्ति को अनोखा अर्घ्य दे चुकी हैं। कितनी विधवायें अपनी अश्रु धारा से उसकी कीर्ति को अमर बना चुकी हैं। न जाने कितनी सती स्त्रियों की आत्म-ज्योति से जलने वाली चितायें तारकासुर की कीर्ति की पवित्र आरती बन चुकी हैं। (कितनी ही सती स्त्रियाँ अपने हाथ से आग जलाकर अपने सतीत्व की रक्षा के लिये प्राण देकर उसकी कीर्ति का अभिनन्दन कर चुकी हैं।)

[४७]

कितनी कुमारियों-वधुओं के रोदन को,
कितने शिशुओं के करुणामय क्रन्दन की;
प्रतिध्वनि मे गुंजित है उसकी जयगाथा,
सुन जिसे आज भी विनत हमारा माथा!

[४८]

कितनी सतियों के तप- पूत यौवन की,
बलि चढ़ी, वीर के बनकर धूलि चरण की;
कितनी कुमारियों के अज्ञात प्रणय का,
उत्सर्ग बना वरदान वीर के भय का!

४७—अर्थ न जाने कितनी कुमारियों और वधुओं के रोदन की तथा न जाने कितने शिशुओं के करुणापूर्ण क्रन्दन की ध्वनि में उस तारक की विजय गाथा गूँज रही है, उसको सुनकर हमारा शीश आज भी लज्जा से झुक जाता है। (तारकासुर ने कितनी कुमारियों और वधुओं तथा कितने शिशुओं का वध किया था। उनके करुण क्रन्दन की प्रतिध्वनि आज भी अन्तरिक्ष में गूंज रही है और उस प्रतिध्वनि में उसकी विजय-गाथा गूँज रही है।)

४८—अर्थ कितनी सती स्त्रियों के तप से पवित्र यौवन उस वीर के चरणों की धूल बनकर बलि हो गये। (कितनी सतियों को विवश होकर अपना तप से पवित्र यौवन उसके चरणों में अर्पित करना पड़ा।) कितनी कुमारियों को तारकासुर के भय के कारण अपने अज्ञात प्रणय (प्रेम) का उत्सर्ग करना पड़ा (प्रेम को भुलाकर अपने कुल-मान की रक्षा के लिये अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ा) और इसी को वरदान के समान ग्रहण करना पड़ा।

[४६]

इस राजभवन के कक्ष आज अनबोले,
कह रहे द्वार-दृग भय-विस्मय से खोले;
उसके पौरुष की अमर कथायें कितनी,
बन्दी प्राणों की मर्म व्यथायें कितनी !

[५०]

भीतों पर अंकित चित्र विचित्र प्रणय के,
रस-भरे रूप की लाज-भरी अनुनय के;
कर रहे मौन वर्णों के रंजित स्वर में,
घोषित उसकी रस-कला-कीर्ति भव भर में !

४६—अर्थ इस राजमहल के कक्ष (कमरे) बिना बोले ही (मौन रहते हुये भी) अपने द्वार रूपी दृगों को भय और आश्चर्य से खोलकर उसके पौरुष की कितनी अमर कथायें कह रहे हैं, तथा इनमें बन्दी प्राणों के हृदय की अनन्त व्यथायें कह रहे हैं। (इन कक्षों में कितने प्राणियों और बन्दियों पर न जाने कितने अत्याचार हुये हैं। इन अत्याचारों से इन कक्षों के द्वार रूपी दृग भय और आश्चर्य के कारण खुले हुये हैं तथा ये उन अत्याचारों की गाथा मौनरूप से कहते हैं।)

५०—अर्थ इस राजमहल की दीवारों पर बने हुये अद्भुत और अश्लील प्रणय (प्रेम लीला) के वे चित्र जिनमें रस से भरी हुई युवतियाँ असुरों से अपनी लाज की रक्षा की लज्जित भाव से विनय कर रहीं हैं, वे चित्र मौन रंगों के रंगीन स्वर में तारकासुर के रस और कला के प्रति अनुराग के यश को समस्त विश्व में घोषित कर रहे हैं।

[५१]

हो गया धर्म भी पाप भीति से जिसकी,
वन गया सत्य भी शाप नीति से जिसकी;
जिसने शिशुओं को भी बलिदान सिखाया,
जीवन से जिसने मरण मनोज्ञ बनाया !

[५२]

जिसने कृपाण की धारा पर पलभर में,
ली भेंट धर्म की लाज सहित घर घर में;
जड़ पूजा का भ्रम भंग किया चेतन का,
अभिमान जगाया धर्म और जीवन का !

५१—अर्थ वह तारकासुर विश्व का अद्भुत वीर था। उसके भय के कारण धर्म का पालन भी पाप अर्थात् मरण के प्रायश्चित का कारण बन गया। उसकी नीति से सत्य का आचरण भी शाप के समान दुःखपूर्ण बन गया। उसने बालकों पर भी अत्याचार किया और उनको भी प्राणों का बलिदान सिखाया। उसने जीवन की अपेक्षा मरण को अधिक सुन्दर बना दिया। (उसके अत्याचारों के कारण सदाचारी और स्वाभिमानी मनुष्य जीवन की अपेक्षा मरण को प्रिय मानते थे।)

५२—अर्थ उस तारकासुर ने तलवार का भय दिखाकर घर घर में जाकर पल भर में स्त्रियों की लज्जा के सहित धर्म की भेंट ली। (अर्थात् तलवार के बल पर उसने स्त्रियों की लाज और पुरुषों के धर्म का हरण किया।) उसने ऋषियों के यज्ञों तथा मनुष्यों के मन्दिरों का ध्वंस करके अग्नि और मूर्ति जैसे जड़ देवताओं की पूजा करने वाले चेतन मनुष्यों का धार्मिक भ्रम भंग कर दिया तथा उनमें धर्म और जीवन के प्रति स्वाभिमान जागरित किया।

[५३]

जिसने विलास में भूल रहे अमरों को,
औ शान्ति साधना में तल्लीन नरों को,
जागरित किया दे बहु आमन्त्रण रण के,
मुक्तों को कितने पाठ दिये बन्धन के !

[५४]

देवों को जिसने शक्ति–मार्ग दिखलाया,
अमरों को जिसने अभय विधान बताया;
मुनियों को जिसने युद्ध पन्थ पर भेजा,
सिहों का जिसने नर को दिया कलेजा !

५३—अर्थ उस तारकासुर ने विलास में भूले हुए देवताओं को तथा शान्ति की साधना में लीन रहने वाले मनुष्यों को युद्ध के लिए अनेक आमन्त्रण देकर जागरित किया था। जो अध्यात्म की साधना में निरत होने के कारण अपने को मुक्त पुरुष मानते थे उन्हें तारकासुर ने बन्दी बनाकर और पीड़ित कर अनेक बन्धनों के द्वारा शिक्षा दी।

५४—अर्थ उस तारकासुर ने देवताओं को शक्ति का मार्ग दिखलाया, उसी ने अमरों को अभय का विधान बताया, उसी ने ध्यान में लगे हुए मुनियों को युद्ध के मार्ग में भेजा, उसी ने युद्ध करने के लिये मनुष्यों में सिंह के समान साहस जगाया है। उसने युद्धों और अत्याचारों के द्वारा देवताओं, मुनियों और मनुष्यों में शक्ति और साहस का उत्साह जगाया।

[५५]
तारक तारक ही था सुर औ मानव का,
सन्ताप धरा के बना नवीन प्रसव का;
इतिहास रहेगी उसकी अमर कहानी,
गायेंगे उसकी कीर्ति विश्व के प्राणी !

[५६]
कर दिये प्रमाणित उसने सत्य अनोखे,
खण्डित कितने कर दिये हमारे धोखे;
हमने हृदयगम कर उससे शर तीखे,
जीवन के कितने सत्य कठोर न सीखे !

५५—अर्थ तारकासुर की अनीति से ही देवता और मनुष्यों में चेतना जागरित हुई थी, इसलिए वह तारक सबका उद्धारक ही था, (उसी तारक ने) पृथ्वी पर अत्याचार करके नई पीढ़ी के उत्साह को जन्म दिया। उसके अत्याचारों की पीड़ायें नवीन विश्व को जन्म देने के पूर्व होने वाली पृथ्वी की प्रसव-वेदना के समान थीं। अतः उस तारक की कहानी इतिहास में अमर रहेगी और विश्व के सब प्राणी उस असुर का यश गायेंगे।

५६—अर्थ उस असुर ने हमारे सामने अनेक अद्भुत सत्यों को प्रमाणित किया था अर्थात् जिन कठोर सत्यों को हम भूले हुए थे, वे सब सत्य हमारी चेतना में प्रकट हो गये। हम लोग बहुत से विश्वासों के धोखे में सोये हुए थे, वे सब उसने खण्डित कर दिये अर्थात् उन सबको समाप्त करके उसने हमारी चेतना जागरित की। उसने तीक्ष्ण बाणों को हमारे हृदय में वेधकर न जाने जीवन के कितने कठोर सत्य हमें सिखाये। हमने उसके तीक्ष्ण बाणों को हृदयंगम करके उन कठोर सत्यों को भी हृदयंगम किया।

[५७]

बल नहीं किसी का अजय विश्व में होता,
है बली गर्व में बीज नाश के बोता;
बल से उद्‌बोधित होता सोया बल है,
होता विनाश ही बल का अन्तिम फल है।

[५८]

बल को विवेक का यदि सम्बल मिल जाता,
तो अग्नि–शिखा में मंगल–सा खिल जाता;
बल है विवेक के बिना अन्ध अतिचारी,
पद तले कुचलता जीवन की फुलवारी !

५७—अर्थ संसार में किसी भी प्राणी का बल अजय नहीं होता है क्योंकि उसके बल को जीतने वाला कोई दूसरा प्राणी उत्पन्न हो जाता है, बली मनुष्य अपने बल के अहंकार में भरकर संसार को चुनौती देता है तथा सब पर अत्याचार करता है, उस बल के अहंकार से वह अपने नाश के बीज बोता है अर्थात् सब उसके अत्याचार से दुःखी होकर शक्ति का संगठन करते हैं और उसे स्वर्ग का रास्ता दिखाते हैं। बलशाली के अत्याचारों से सबका सोया हुआ बल जाग्रत होता है और उस अहंकारी बल का अन्त नाश में ही होता है और यही उसका अन्तिम परिणाम होता है।

५८—अर्थ बलशाली मनुष्य में यदि ज्ञान जागरित हो जाता है तो वह बल अग्नि की शिखा में मंगल के समान खिल उठता है अर्थात् बल की विनाशकारी रक्त ज्वाला एक कल्याण मय नवीन जीवन (मंगल ग्रह में जीवन है) को जन्म देती है। विवेक से युक्त होकर बल मंगलमय और सृजनात्मक बन जाता है। ज्ञान (विवेक) के बिना

[५६]

केवल वल का मद जब विवेक हर लेता,
अभिमानी मे वह अनाचार भर देता,
सन्ताप विश्व का बनकर उसकी क्रीड़ा,
दलितो का देती कितनी दुसह पीड़ा।

[६०]

वल का भोजन है अपरो की दुर्बलता,
कायरता पर ही वल का मद नित पलता;
यदि कभी सचेतन होकर जीवन जगता,
तो फिर वल–मद का अन्त निकट ही लगता।

केवल वल अन्धा और अतिचारी होता है तथा वह अन्धा वल जीवन की फुलवारी अर्थात् छोटे बच्चों, स्त्रियों और कोमल मनुष्यों को अपने पैरों से कुचलता है।

५६—अर्थ जिस वलशाली को वल का अहङ्कार हो जाता है, तब उसका विवेक नष्ट हो जाता है। विवेक के नष्ट हो जाने पर वह वल का अभिमान अत्याचारी बन जाता है। उसकी अत्याचार की क्रीड़ा विश्व का सन्ताप बन जाती है और वह दीन हीन मनुष्यों को असह्य पीड़ा देती है।

६०—अर्थ दूसरों की निर्बलता पर पोषित होकर ही अतिचारियों का वल बढ़ता है, तथा वल का अभिमान सदैव दूसरों की कायरता पर ही पलता है अर्थात् पनपता है। यदि कभी सचेतन होकर दुर्बलों का जीवन जग जाता है तो फिर वलवानों के मद (अहङ्कार) का नाश निकट ही दिखाई देता है अर्थात् दुर्बलों के जागरण पर वल का अहङ्कार टिक नहीं सकता, शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

[६१]

जब तक विलास में रहे देवता खोये,
जब तक नर अपनी दुर्बलता मे सोये;
तारक ने अपने बल से त्रिभुवन जीते,
औ किये अनर्गल सब अपने मन चीते।

[६२]

जब हुआ नरों में एक अनोखा ज्ञानी,
तप-योग-ज्ञान का व्रती, शक्ति का मानी,
सब शास्त्रों में निष्णात, शान्ति का नेता,
शस्त्रों में अद्भुत, बल-से विश्व-विजेता।

६१—अर्थ देवता जब तक विलास में लीन रहे तथा जब तक मनुष्य अपनी दुर्बलता के कारण सोते रहे, तभी तारकासुर ने अपने बल से तीनों लोकों को जीता और अपनी स्वच्छन्द इच्छा के अनुसार मन चाहे अत्याचार उच्छृंखलता पूर्वक किये।

६२—अर्थ जब उन मनुष्यों में एक अद्भुत ज्ञानी उत्पन्न हो गया, जो तप, योग तथा ज्ञान का व्रती है तथा जो शक्ति का अभिमानी है। जो सब शास्त्रों में कुशल है, तथा शान्ति का नेता है; शस्त्रों के चलाने में भी वह अद्भुत ही है तथा बल से विश्व को जीतने वाला है।

[६३]

निज चेतनता से उसने विश्व जगाया,
दृढ ज्ञान–भूमि पर बल का वृक्ष लगाया;
उसकी छाया में आज विश्व निर्भय है;
उसका ही वर यह आज हमारी जय है।

[६४]

है आज अन्धबल ज्ञानशक्ति से हारा,
मद हुआ पराजित आज तेज के द्वारा;
होता रण मे बस निर्णय केवल बल का,
जीवन ही बनता निकष शेष सम्बल का।

६३—अर्थ उस ज्ञानी पुरुष (परशुराम) ने अपनी चेतनता से विश्व को जगा दिया और ज्ञान की दृढ भूमि पर (शक्ति) बल का वृक्ष लगा दिया अर्थात् अकेले ज्ञान में अब तक ऋषि मुनि लीन रहे थे किन्तु अब ज्ञान के साथ शक्ति का समन्वय करके परशुराम ने उनको विजय का मार्ग दिखाया है। आज सम्पूर्ण संसार उस वृक्ष की छाया में निर्भय हो गया है और आज हमारी विजय भी उसी वीर की महिमा का मंगलमय वरदान है।

६४—अर्थ आज (ज्ञानशून्य) अन्धा बल ज्ञान से समन्वित शक्ति से हार गया है, आज बल का अहंकार तेज के द्वारा पराजित हुआ है। किन्तु युद्ध में केवल बल का ही निर्णय होता है अर्थात् युद्ध में बलवान ही विजयी होता है। युद्ध केवल इस बात का निर्णय करता है कि कौन अधिक बलवान् है। किन्तु बल के अतिरिक्त जीवन की अन्य विभूतियों का कितना सम्बल किसके पास है इसका निर्णय शेष जीवन के सृजनात्मक क्षेत्र में होता है, वही इस सम्बल की वास्तविक कसौटी है।

[६५]

यदि शेष वीर हो कोई शोणितपुर में,
बल दर्प अभी हो जिसके गर्वित उर में;
वह बना सभा को समर शौर्य दिखलाये,
बल की सीमा का परिचय त्रिभुवन पाये।

[६६]

यदि हुआ शून्य बल तो फिर बल-मद त्यागो,
हे निशाचरो ! अब आत्म-ज्योति में जागो;
शोणित की धारा शोणितपुर में बहती,
अत्याचारों की कथा तुम्हारे कहती।

६५—अर्थ यदि शोणितपुर में अभी कोई वीर और बचा हो तथा जिसके अभिमानी हृदय में अभी बल का दर्प शेष हो, तो वह अभी इस सभा को युद्ध भूमि बनाकर अपना पराक्रम दिखलाये और इस युद्ध में तीनों लोकों को बल की चरम सीमा का परिचय मिले।

६६—अर्थ यदि अब सबका बल समाप्त हो चुका है तो बल के अहंकार को छोड़ दो। हे निशाचरो! अब तुम आत्मा की ज्योति को जगाओ अर्थात् बल का अहंकार छोड़कर मनुष्यता को अपनाओ। इस शोणितपुर में शोणित (रक्त) की धारा बह रही है। उस धारा के प्रवाह का नाद तुम्हारे अत्याचारों की कथा सुनाता है।

[६७]

शोणित ने ही यह शोणित आज बहाया,
बल-मद ने ही यह नाशक युद्ध जगाया;
अपनी वधुओं के आँसू आज निहारो,
अब कुछ आँसू का मन में मोल विचारो !

[६८]

देखो अनाथ इन शिशुओं के जीवन को,
क्या लगा कुलिश आघात आज पाहन को !
कुछ लाज-शील का मान आपने जाना,
कुछ मर्म दुःख औ करुणा का पहचाना !

६७—अर्थ तुमने पहले इस नगर में बहुत (रक्त) शोणित बहाया था। इसी से इसका नाम शोणितपुर पड़ा था। उसी शोणित के बदले में आज तुम्हारा शोणित बहा है, तुम्हारे बल के अहंकार ने ही इस नाशक युद्ध का आह्वान किया था। आज तुम अपनी विधवा वधुओं के आँसुओं को देखो और अपने मन में आज आँसुओं का मोल पहचानो अर्थात् पहले तुमने अत्याचारों से कितनी ऐसी वधुओं के पतियों को निर्दयता से मारा है तथा कभी भी उनकी वधुओं के दुःख के बारे में विचार नहीं किया। किन्तु आज अपनी वधुओं के आँसुओं को देखकर विचारो, कि वैधव्य की करुणा और वेदना कैसी होती है !

६८—अर्थ अपने इन (बिना पिता के) अनाथ शिशुओं के जीवन को देखो, आज पत्थर के समान हृदय वाले असुरों पर वज्र का आघात लगा है क्या ? अर्थात् पत्थर के समान जड़ निर्दयी असुरों के हृदय में भी आज अपने प्रियजनों के दुःख को देखकर पीड़ा हो रही है,

[६९]

समवेदना से विह्वलित हमारे उर हैं,
हम सैनिक भी हैं, किन्तु मूलतः सुर हैं;
बन गया युद्ध तो आपद्धर्म हमारा,
है प्रेम प्रकृति औ नय शिवकर्म हमारा।

[७०]

यह नहीं असुर की किन्तु सुरों की जय है,
जित होकर भी सब दानव-दल निर्भय है;
विश्वास करें शोणितपुर के नरनारी,
प्रतिशोध न होगी विजय कदापि हमारी।

जिनके हृदय में पहले कभी भी दुखियों के आँसू से तथा निरपराध बच्चों की चीखों से दुःख नहीं हुआ। आज आप लोगों ने स्त्रियों की लाज और शील तथा मान-मर्यादा के महत्व को जाना है, तथा दुःख और करुणा का यहाँ आज तुमने मूल्य पहचाना है। दूसरों पर अत्याचार करने वाले असुरों को आज अपने बन्धुओं के दुःख और उनकी करुणा से युक्त इतना मूल्य विदित हुआ है।

६९—अर्थ हमने विवश होकर युद्ध किया है और उस युद्ध में तुम्हारा विनाश हुआ है, किन्तु हमारी प्रतिक्रिया असुरों के समान निर्दय नहीं है। आज तुम्हारी वेदना से हमारे हृदय करुणा से द्रवित हो रहे हैं। हम सैनिक भी हैं किन्तु मूलतः तो हम देवता हैं अर्थात् युद्ध में हमने अपने पराक्रम से तुम्हारे सब सम्बन्धियों को मृत्यु के घाट उतार दिया, किन्तु फिर भी हमारे हृदय दया से पूर्ण हैं क्योंकि हम जन्म से असुर नहीं हैं अर्थात् देवता हैं। हम कभी किसी से युद्ध नहीं करते, किन्तु तुम्हारी अनीतियों ने तथा अत्याचारों ने हमको युद्ध करने के लिए विवश कर दिया, तब हमने अपनी रक्षा के लिए युद्ध किया है, नहीं तो प्रेम हमारा स्वभाव है और न्यायपरायणता हमारी कर्म की नीति है।

[७१]
यदि शेष शान्ति का मार्ग अन्यतर होता,
तो कभी न, निश्चित है, यह समर होता;
अत्याचारों की सीमा ही दुखदायी,
बन चरम विवशता हन्त ! हमारी आई।

[७२]
है शोक हमें विधवा वधुओं का मन में,
बुझ गया भाग्य का दीप नये जीवन में;
अवलम्ब छिन गया शिशुओं, वृद्ध जनों का,
आतंक मिट गया किन्तु अखिल भुवनों का।

७०—अर्थ यह आज की विजय असुरों की नहीं, देवताओं की विजय है, अतः पराजित होकर भी सब दानव दल निर्भय हैं, अर्थात् असुर विजय प्राप्त करके देवताओं तथा मनुष्यों को बन्दी बना लेते थे तथा उन पर अत्याचार करते थे, किन्तु देवता आज विजय प्राप्त करके असुरों के साथ किसी प्रकार का भी अनुचित व्यवहार नहीं करेंगे। शोणितपुर के नर-नारी सब हम पर विश्वास करें कि हमारी विजय कभी भी प्रतिशोध (बदला) नहीं बनेगी। हम विजयी बन तुम्हारे अत्याचारों का बदला नहीं लेंगे।

७१—अर्थ यदि शान्ति का कोई अन्य मार्ग शेष होता कि जिससे असुर अपनी अनीति को छोड़ देते, तो यह निश्चित था कि यह युद्ध कभी न होता। तुम्हारे अत्याचारों की दुःखदायी सीमा ही, हमारी चरम विवशता बन गई अर्थात् तुम्हारे अत्याचारों की जब कोई सीमा न रही, तब विवश होकर हमें युद्ध करना पड़ा।

७२—अर्थ हमें अपने मन में तुम्हारी विधवा वधुओं के दुर्भाग्य का दुःख है, उनके नये जीवन में भाग्य का दीपक

[७३]

सन्तोष यही कर शान्ति सभी जन धारो,
निज दुख में भी हित जग का तनिक विचारो;
यह अन्त आज जगती के अन्तिम रण का,
आरम्भ विश्व में बने नये जीवन का।

[७४]

आलोकित हो नव आत्मा शोणितपुर में,
हों भाव नये समुदित जन जन के उर में;
हो शान्ति श्रेय की अभयंकर सहकारी,
आनन्दपूर्ण हो संस्कृति नई हमारी।

(सर्वेश का) छूट गया अर्थात् स्त्रियों का जीवन पतियों के साथ ही समाप्त हो गया। शिशुओं का और वृद्ध जनों का सहारा नष्ट हो गया। किन्तु दूसरी ओर सब लोगों का आतंक आज मिट गया।

७३—अर्थ सभी लोगों को यही सन्तोष करके शान्ति को अपनाना चाहिए। अपने दुःख में भी संसार के व्यापक हित को देखना चाहिए। आज इस युद्ध का अन्त विश्व के अन्तिम युद्ध का अन्त है। यह विश्व के नवीन शान्तिमय और आनन्दमय जीवन का आरम्भ बने।

७४—अर्थ शोणितपुर में नवीन आत्मा का प्रकाश हो, प्रत्येक जन के हृदय में नये-नये भावों का उदय हो। 'शान्ति' कल्याण की अभयदायक सहयोगिनी हो और हमारी नई संस्कृति आनन्दपूर्ण हो। (शोणितपुर के निवासियों का ध्यान अनीति को छोड़कर आत्म-भान की ओर हो तथा विश्व में शक्ति से सुरक्षित अभय और आनन्दपूर्ण नवीन संस्कृति का विकास हो।)

[७५]

होगा जयन्त अब नया तुम्हारा नेता,
संरक्षक सबका, नहीं नृशंस विजेता;
सविनय अर्पित इन वज्र करों के द्वारा
यह रत्नमुकुट हो ध्रुव-आलोक तुम्हारा।"

[७६]

वह ओज और करुणा के मिश्रित स्वर से,
सेनानी ने अपने पुलकित युग कर से,
सिर पर जयन्त के रत्नमुकुट पहनाया,
आलोक हर्ष का सभा-भवन में छाया।

७५—अर्थ अब स्वर्ग का युवराज जयन्त तुम्हारा नया नेता होगा। वह सबका संरक्षक होगा, वह निर्दय विजेता नहीं है। अर्थात् तुम्हारी रक्षा करेगा, वह विजय प्राप्त करके तुम्हारे साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। मेरे इन वज्र के समान कठोर हाथों से विनयपूर्वक अर्पित जयन्त का यह रत्नमुकुट तुम्हारे लिये पथ-प्रदर्शक ध्रुव के प्रकाश के समान हो अर्थात् जयन्त का उज्ज्वल शासन तुम्हारे लिए कल्याण के मार्ग का प्रदर्शन करता रहे।

७६—अर्थ ओज और करुणा से मिले हुए स्वर से यह कहकर, सेनानी ने अपने दोनों पुलकित हाथों से, जयन्त के सिर पर रत्नमुकुट पहनाया। सभा-भवन में हर्ष का आलोक (प्रकाश) छा गया। (जयन्त के राज्याभिषेक से देवताओं को विजय का तथा असुरों को अमर का हर्ष हुआ।)

[७७]

कर उठे जयध्वनि एक साथ नरनारी,
प्रकटी सहसा वह कौन अपूर्व कुमारी !
मन्थर गति से चल सिंहासन तक आई,
सहसा जयन्त को जयमाला पहनाई ।

[७८]

जग उठा हर्ष औ विस्मय सबके उर में,
हो उठे गीत मंगल के अन्तःपुर में;
शोणितपुर के सब आनन्दित नर नारी,
बोले "जयलक्ष्मी यह अभिषिक्त हमारी"।

७७—अर्थ सब नर नारी एक साथ जयध्वनि करने लगे, अर्थात् जयन्त और सेनानी का जय जयकार बोलने लगे जयन्त के अभिषेक के बाद उस जय जयकार के बीच अचानक अपूर्व कुमारी वहाँ आई। वह (कुमारी कन्या) मन्द चाल से चलकर सिंहासन तक आई और उसने जयन्त को सहसा जयमाला पहना दी। (देवसेना के शान्तिमय आगमन तथा सभा में सेनानी के उदार सन्देश के बीच में राज महल के कुछ जनों तथा प्रजाओं ने तारक की पुत्री को शोणितपुर की युवरानी बनाकर देवताओं के साथ सद्भाव का सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय किया था।)

७८—अर्थ सबके हृदयों में हर्ष और आश्चर्य जग उठा। अन्तःपुर में मंगल के गीत होने लगे। शोणितपुर के सब स्त्री और पुरुष आनन्द मनाने लगे और बोले—"यह युवरानी हमारी जयलक्ष्मी है। जयन्त का अभिषेक हमारी जयलक्ष्मी का ही अभिषेक है।"

[७९]

पहना जयन्त ने रत्नों की जयमाला,
की वाम पार्श्व में आदृत तारक-बाला;
सम्बन्ध स्वर्ग और नूतन शोणितपुर का,
सन्तोष और उल्लास बना प्रति उर का।

[८०]

जयलक्ष्मी-सी ले पुत्रवधू सुकुमारी,
चल दिये इन्द्र कर संचित सेना सारी,
अन्तपुर ने अर्पित की रुचिर बधाई,
पुर के वृद्धों ने दी नय-पूर्ण विदाई।

७९—अर्थ जयन्त ने उस तारक कन्या को रत्नों की जयमाला पहनाकर उसको आदर सहित अपने बायीं ओर पास बिठाया। यह स्वर्ग और नवीन शोणितपुर का सम्बन्ध प्रत्येक जन के हृदय का सन्तोष और उल्लास बन गया।

८०—अर्थ जयलक्ष्मी सी सुकुमारी पुत्रवधु को लेकर अपनी सारी सेना को एकत्रित करके इन्द्र स्वर्ग की ओर चल दिये, शोणितपुर के राजमहल के अन्तःपुर की स्त्रियों ने उनको सुन्दर बधाई दी तथा नगर के वृद्ध जनों ने नय पूर्ण (नीति पूर्ण, समुचित शिष्टाचार सहित) उनको विदा दी।

[८१]

सब समाचार सुन दूतों से इन्द्राणी,
हो उठी समुत्सुक करने को अगवानी;
आनन्द अपरिमित स्वर्ग-लोक मे छाया,
खोया-सा निज सर्वस्व सभी ने पाया।

[८२]

नूतन जीवन-श्री सुर वधुओं ने पाई,
उर की विभूति स्वर की सुषमा बन आई;
अप्सरियों के पद थिरक उठे किस लय में,
किन्नरियों के स्वर उज्ज्वल हुये अभय में।

८१—अर्थ इन्द्राणी ने जब दूतों से सब समाचार सुने, तो उनकी अगवानी करने के लिए उत्सुक होकर प्रतीक्षा करने लगी। स्वर्ग-लोक में अपरिमित आनन्द छा गया, सभी स्वर्ग-वासियों ने अपना सब कुछ (मान, गौरव, आशा, हर्ष, अभय आदि) जो पहले खो चुका था आज फिर पा लिया।

८२—अर्थ देवताओं की स्त्रियों ने जीवन की नवीन शोभा प्राप्त की, उनके हृदय की हर्ष-विभूति उनके दिव्य सगीत के सुन्दर स्वर में मुखरित हो रही थी। अप्सरियों के पद न जाने किस लय में थिरकने लगे। अर्थात् वे जीवन की एक नवीन लय प्राप्त कर पुनः नृत्य करने लगीं और किन्नरियों के स्वर अभय में उज्ज्वल हो गये अर्थात् वे अभय से दीप्त नवीन कान्तिमय स्वरों में गायन करने लगीं।

[८३]

दर्पण–से हर्षित सुर–वधुओं के उर के,
खिल उठे सुसज्जित भवन–द्वार पुर पुर के;
नन्दन के पुष्पित पन्थों तुल्य रंगीले,
खिले उठे स्वर्ग के मार्ग समस्त सजीले।

[८४]

उत्सव का नव आमोद चतुर्दिक छाया,
फैली थी कौन अपूर्व पर्व की माया,
थी कल्पलतायें फूल रही घर घर में,
खिल उठे कल्पतरु पद पद दिव्य नगर में।

८३—अर्थ अमरावती के प्रत्येक पुर के सुसज्जित देव भवनों के द्वार सुर-वधुओं के हर्ष से दीप्त हृदय के दर्पण के समान खिल रहे थे। स्वर्ग के समस्त सजे हुए मार्ग नन्दन वन के पुष्पों युक्त रंगीन मार्गों के समान खिल रहे थे।

८४—अर्थ चारों ओर उत्सव का नवीन आमोद छा रहा था। स्वर्गलोक में न जाने किस अपूर्व पर्व की माया अर्थात् मनोहारिणी अनिर्वचनीय शोभा फैल रही थी। घर घर में कल्पलताओं के समान अप्सरायें फूल रही थीं, अर्थात् प्रसन्न हो रहीं थी। (प्रत्येक देव भवन में अप्सरायें कल्पलताओं के समान मनोवाँछित भाव प्रदान कर रहीं थीं)। स्वर्ग की नगरी अमरावती में स्थान स्थान पर कल्पतरु खिल रहे थे अर्थात् मनोवांछित फल प्रदान करने वाले उपक्रम बन रहे थे।

[८५]

दिन में खिलती थी नन्दन की फुलवारी,
जगती रजनी में दीपों की उजियारी;
थे राह देखते उत्सुक नयन सुमन–से,
थे स्नेह चाहते दृग–दीपक दर्शन से।

[८६]

ऐरावत पर चढ इन्द्र और सेनानी,
लेकर जयन्त की विजय–वधू कल्याणी,
सुर नगर द्वार पर जब जय ध्वनि से आये,
वज उठे नगर मे स्वागत–पूर्ण वधाये।

८५—अर्थ दिन में तो (हर्ष से) नन्दनवन की फुलवारी खिलती थी तथा रात्रि मे दीपकों का प्रकाश जगमगाता था। अर्थात् दीपावली होती थी। स्वर्ग निवासियों के नेत्र उत्सुक होकर (विजय प्राप्त करके आने वालों की) प्रतीक्षा मे सुमनों के समान खुले रहते थे। उनके दृग-रूपी दीपक दर्शन का स्नेह (तेल) चाहते थे।

८६—अर्थ इन्द्र और सेनानी ऐरावत पर चढ़कर और जयन्त की कल्याणी विजय-वधू को साथ लेकर, जब जय-ध्वनि करते हुए स्वर्ग की नगरी अमरावती के द्वार पर आये, तब नगर में स्वागतपूर्ण वधाये बजने लगे।

[८७]

स्वागत की सज्जा सज्जित कर निज कर से,
दृग-द्वार खोल कर आलोकित अन्तर-से;
दृग-द्युति से ज्योतित पन्थ प्रियों का करती,
स्वर-निधि से सूने पल आकुल-से भरती,

[८८]

लक्ष्मी सी शोभित, आज वधू-सी भोली,
सोने के थालो में ले अक्षत-रोली;
कर में लेकर नव-कुसुमों की मालायें,
द्वारों पर उत्सुक खड़ी देव-बालायें ।

८७—अर्थ स्वयं अपने हाथों से स्वागत की सज्जा को सजाकर, अपने आलोकमय हृदय के समान दृगों के द्वारों को खोलकर, अपने प्रियतमों के मार्ग को अपने नेत्रों की ज्योति से प्रकाशित करती हुई तथा प्रतीक्षा के आकुल से सूने पलों को अपने स्वर की निधि से अर्थात् गायन से भरती हुई;

८८—अर्थ लक्ष्मी के समान शोभित तथा नवीन वधुओं के समान भोली देव बालायें सोने के थालों में रोली-चावल लेकर तथा हाथों में नवीन फूलों की मालायें लेकर द्वारों पर उत्सुकता पूर्वक खड़ी विजयी देवों के स्वागत की प्रतीक्षा कर रहीं थीं ।

[८९]

'जय जय' ध्वनि औ बाजों के कोलाहल में,
आनन्द हर्ष की अनियन्त्रित हलचल में,
ऐरावत से सुरवर्ग पुरस्कृत आये,
दर्शन में ही प्रिय; सुर-वधुओं ने पाये।

[९०]

सज्जित द्वारों पर आकर अपने अपने,
देवों ने मन में सफल किये चिर सपने,
शुचि सत्व-स्नेह की सुषमा मे कल्याणी,
हो गई दृष्टि के सगम में लय वाणी !

८९—अर्थ जय-जयकारों की ध्वनि में तथा बाजों के कोलाहल और आनन्द के हर्ष की अनियन्त्रित हलचल के बीच देवताओं के समूह अमरावती में आये। सेनानी और जयन्त के सहित ऐरावत पर बैठे हुये इन्द्र उस देव-समूह के आगे आगे आरहे थे। देवताओं की स्त्रियों ने दर्शन में ही अपने प्रियतमों को पा लिया अर्थात् उनके दर्शन मात्र से ही उन्हें मिलन का सा सन्तोष मिला।

९०—अर्थ अपने-अपने सजे हुए द्वारों पर आकर, देवताओं ने अपने मन में चिरन्तन सपनों को सफल किया, आज विजयी होकर घर आने की उनकी कल्पनायें सफल हुईं। पवित्र सात्विक स्नेह के मगलमय सौन्दर्य में दृष्टि के सगम में उनकी वाणी लय होगई अर्थात् सात्विक प्रेम के दर्शन में वे मौन रहे।

[६१]

जय के पुष्पों की वृष्टि हो रही मग मे,
मानों प्रफुल्ल हो नन्दन आया पग मे;
बिछ रहे पन्थ मे इन्दीवर के दल-से,
सुर-वधुओं के दृग चचल हुये अचल-से।

[६२]

लख ऐरावत पर बैठी अद्‌भुत बाला,
होता कौतूहल विस्मय पूर्ण निराला;
सुर-वधुयें कहती आपस मे औ मन में,
जय लक्ष्मी अद्‌भुत मिली सुरों को रण मे।

६१—अर्थ देवताओं के मार्ग में विजय की पुष्प वर्षा हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों देवताओं के विलास से परिचित नन्दनवन आज उनकी विजय से प्रफुल्लित होकर उनकी चरण-वन्दना कर रहा हो। सुर-वधुओं के स्वभाव से चचल नयन अचल प्राय होकर विजयी देवताओं के मार्ग में इन्दीवर (नील-कमल) के दलों के समान बिछे हुए थे अर्थात् एकटक देखने में लगे हुए थे।

६२—अर्थ जयन्त के साथ ऐरावत पर बैठी हुई एक अद्‌भुत बाला को देखकर स्वर्ग की अप्सराओं के मन में आश्चर्य से पूर्ण अनोखा कौतूहल हो रहा था। देवागनायें आपस में और मन मे कह रहीं थीं कि देवताओं को युद्ध में यह अद्‌भुत जय-लक्ष्मी प्राप्त हुई है।

[६३]

द्वारों पर आ निज शीश स-प्रेम झुकाते,
माथे पर अंकित विजय-तिलक सुर पाते;
उत्सुक हाथों से पहना कर जयमाला,
प्रिय के चरणों में पडती प्रति सुर बाला।

[६४]

गल गई युगों की ग्लानि विजय के क्षण में,
नव भाव जागरित हुये नये जीवन में;
भूली अतीत की वह उच्छृंखल माया,
मन का आनन्द न तन में आज समाया।

६३—अर्थ (युद्ध से लौटे हुए देवता) प्रेम पूर्वक अपने-अपने घर के द्वारों पर अपना शीश झुकाते जाते। उन देवताओं के मस्तकों पर उनकी स्त्रियों ने विजय तिलक किया। उत्सुक हाथों से जयमाला पहनाकर प्रत्येक सुरबाला अपने प्रियतमों के चरणों का स्पर्श करती थी।

६४—अर्थ इन विजय के क्षणों में युगों की पराजय की ग्लानि मिट गई; नये जीवन में नवीन भाव जाग्रत हुए। अतीत के लीला-विलास की उच्छृंखल माया भूल गई। अप्सराओं के मन का आनन्द आज उनके तन में नहीं समा रहा था। (उनका हर्ष और उल्लास मन में उमड़ रहा था।)

[९५]

पा वैजयन्त के दीर्घ द्वार की वेला,
रुक गया हर्ष का ज्वार सहज अलवेला,
उतरे जयन्त युत इन्द्र और सेनानी,
ऐरावत से, ले जय–लक्ष्मी कल्याणी ।

[९६]

कर सेनानी का तिलक प्रथम निज कर से,
सिर पर विखेर कर सुमन विजय के वर–से,
जय वधू सहित पा सुत को नत चरणों में,
हो गया शची का जीवन धन्य क्षणों में ।

९५—अर्थ देवताओं की एकत्रित हुई सेना वैजयन्त प्रासाद के दीर्घ द्वार को अपना सीमा जानकर रुक गई, तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो हर्ष का सहज अलबेला ज्वार वेला पर रुक गया हो। मंगलमयी जय-लक्ष्मी सी वधू को लेकर इन्द्र और सेनानी जयन्त के सहित ऐरावत से उतरे।

९६—अर्थ इन्द्राणी ने पहले अपने हाथ से सेनानी का तिलक किया तथा उसके सिर पर विजय के वरदान के समान पुष्पों की वर्षा की। तब तक विजय-वधू सहित जयन्त ने माँ के चरणों का वन्दन किया। दोनों को चरणों में नत पाकर आज के क्षण भर के अनुभव में इन्द्राणी का जीवन धन्य हो गया।

[९७]

दोनों का करके तिलक हर्ष से फूली,
खिल उठी रोहिणीयुत शशि से गोधूली;
अन्तःपुर में ले गई अंक में भर के,
बोली कर में मुख विनत वधू का धर के—

[९८]

"मेरे जयन्त की जय लक्ष्मी यह आई,
इस वैजयन्त ने आज स्वामिनी पाई;
सौभाग्यवती है अमरावती हमारी,
हैं सफल स्वर्ग की आज भूतियाँ सारी।"

९७—अर्थ दोनों (पुत्र और वधू) को तिलक करके इन्द्राणी हर्ष से प्रफुल्लित हुईं। उस समय इन्द्राणी इसी प्रकार शोभित हो रहीं थीं जिस प्रकार रोहिणी से युक्त चन्द्रमा से गोधूलि सुशोभित होती है। इन्द्राणी उन दोनों को गोद में भरकर अन्तःपुर में ले गईं। वधू का मुख लज्जा से विनत हो रहा था। वे वधू के उस मुख को हाथ से उठाकर बोलीं—

९८—अर्थ "मेरे इस जयन्त की यह जय लक्ष्मी आज आई है, आज इस वैजयन्त प्रासाद (महल) ने अपनी स्वामिनी पाई है। हमारी अमरावती आज सौभाग्यवती है तथा आज स्वर्ग की सब विभूतियाँ सफल हैं।"

[९९]

हो उठे गीत मंगल के राजभवन में,
कर उठे नृत्य हर्षित मयूर नन्दन में;
नक्षत्र विश्व के देख रहे दृग खोले,
जय-पर्व स्वर्ग के आज स्वप्न से तोले।

[१००]

सुर पुर में जय की प्रथम उषा अब जागी,
बोली जयन्त से शची स्नेह-अनुरागी;
"हम यहाँ विजय के हर्ष-पर्व में फूले,
उस पुत्रवती का स्मरण मोद में भूले,

९९—अर्थ राजभवन में मंगल के गीत होने लगे। नन्दनवन में मयूर हर्षित होकर नृत्य करने लगे। विश्व के नक्षत्र आज अपने दृग खोलकर स्वप्न के समान तोले हुये स्वर्ग के विजय-पर्व का उत्सव देख रहे थे। (स्वर्ग का यह विजय-पर्व त्रिभुवन का चिरन्तन स्वप्न था।)

१००—अर्थ स्वर्ग में जब विजय की प्रथम उषा जागरित हुई, तब स्नेह के अनुराग सहित शची जयन्त से बोली—"हम लोग यहाँ विजय के हर्ष पर्व में प्रसन्न हो रहे हैं तथा उस पुत्रवती पार्वती का स्मरण हर्ष के कारण भूल रहे हैं,

[१०१]

जिसने कर उर से पृथक पुत्र सेनानी,
अर्पित की हमको जय लक्ष्मी कल्याणी"।
माँ को जयन्त ने सादर शीष नवाया,
तत्क्षण प्रयाण का साज समस्त सजाया।

[१०२]

अभिनन्दन सबका कर सादर सेनानी,
चलने को उद्यत हुआ वीर वरदानी;
गूँजा कुमार का जय जयकार गगन में,
थे जागे अद्भुत भाव सभी के मन में।

१०१—अर्थ जिसने अपने पुत्र सेनानी को अपने हृदय से अलग कर, हमको यह मंगलमयी जयलक्ष्मी प्रदान की है।" जयन्त ने आदर सहित माता को शीष नवाया और उसी क्षण सेनानी के कैलास-प्रयाण की सारी तैयारियाँ कीं।

१०२—अर्थ सबका आदर-पूर्वक अभिनन्दन कर वह वीर वरदानी स्कन्द कुमार चलने के लिए उद्यत (तैयार) हो गया। आकाश में कुमार कार्तिकेय के जय-जयकार की ध्वनि गूँज रही थी, तथा सबके मनमें अद्भुत भाव जागरित हो रहे थे।

[१०३]

आशीष सहित दे अभिनन्दन इन्द्राणी,
बोली कुमार से प्रेम भरी मधु वाणी—
"करके गिरिजा से प्रणति निवेदित मेरी,
कहना युग युग तक शची तुम्हारी चेरी।

[१०४]

प्रति पुत्रवती त्रिभुवन की पावन नारी,
है आज उमा से गौरव की अधिकारी।"
बोले सुरेन्द्र "हे वीर! तुम्हारी जय हो!
तुम नव सस्कृति के उज्ज्वल सूर्योदय हो;

१०३—अर्थ आशीर्वाद के सहित स्कन्द कुमार का अभिनन्दन करके इन्द्राणी कुमार से प्रेम भरी मधुर वाणी में बोलीं "गिरजा से मेरा नम्र निवेदन करके कहना कि युग युग तक शची तुम्हारी दासी है।

१०४—अर्थ त्रिभुवन की प्रत्येक पुत्रवती पवित्र नारी, आज उमा से गौरव की अधिकारी है अर्थात् आज तुम जैसे पुत्र को जन्म देकर उमा ने आज नारी जाति को गौरवान्वित बनाया है। इन्द्र बोले, "हे वीर! तुम्हारी जय हो! तुम नवीन संस्कृति के उज्ज्वल सूर्योदय हो;

[१०५]

आलोक विश्व का विक्रम बनें तुम्हारे,
सेनानी हों कुमार त्रिभुवन के सारे।
कर देवराज की प्रणति निवेदित शिव से,
कहना असुरों का त्रास मिट गया दिव से।"

[१०६]

चढ़ ऐरावत पर ले सुर सेना सारी,
चल दिये वीर कैलास ओर ध्वज-धारी,
हो उठे चमत्कृत वैभव से जीवन के,
जनपद औ सूने पथ गिरि, वन, कानन के।

१०५—अर्थ तुम्हारे विक्रम विश्व का आलोक बनें अर्थात् विश्व का मार्ग-दर्शन करें। तीनों लोकों के सब कुमार (नवयुवक) तुम्हारे समान वीर सेनानी बनें। शिव से देवराज इन्द्र का प्रणाम निवेदित करके कहना कि स्वर्ग से असुरा का त्रास (संकट) मिट गया है।"

१०६—अर्थ ऐरावत पर चढ़कर और देवताओं की सारी सेना को लेकर ध्वजा-धारी वीर कैलाश की ओर चल दिये। कैलास प्रदेश के जनपद, पर्वतों के सूने मार्ग, वन तथा कानन सब जीवन के वैभव (ऐश्वर्य) से चमत्कृत (चकित) हो उठे।

[१०७]

सुन विजय पुत्र की पूर्व चरों के मुख से,
थी परम प्रफुल्लित उमा गर्व औ सुख से;
स्वागत के हित कैलाश सुसज्जित सारा,
कर रहा प्रकट उल्लास उत्सवों द्वारा।

[१०८]

कर विजय पुत्र को भेंट हर्ष से फूली,
हो उमा स्नेह से गद् गद् सुध बुध भूली;
शंकर प्रसन्न थे प्रणत पुत्र की जय से,
कैलाश धन्य था नव-जीवन-समुदय से।

१०७—अर्थ इनके कैलाश पहुँचने के पूर्व ही दूतों के मुख से पुत्र की विजय को सुनकर, पार्वती गर्व और सुख से बहुत प्रफुल्लित थीं। कुमार के स्वागत के लिए सारा कैलाश सजा हुआ था, (वह कैलाश) उत्सवों के द्वारा अपना उल्लास प्रकट कर रहा था।

१०८—अर्थ चरणों से विजयी पुत्र को हृदय से भेंट कर उमा हर्ष से प्रफुल्लित हो रही थी। स्नेह से गद् गद् होकर वे अपनी सुध बुध भूल गईं। माता से मिलकर सेनानी ने शंकर के चरणों में जाकर प्रणाम किया। पुत्र की विजय से शंकर प्रसन्न थे। कैलाश पर्वत पर नवीन जीवन का उदय हो रहा था, उससे कैलाश पर्वत धन्य हो रहा था।

सर्ग ५

विजय पर्व

तारक के वध के उपरान्त विश्व के विजय पर्व के अभय और उल्लास का वर्णन।

[९]

वसुन्धरा के धूलिकणों में द्योतित कुछ पथगामी,
हुये मानवों औ मुनियों के चरणों के चिर कामी;
कुछ करुणा के ओस बिन्दु बन, संसृति के दृग-दल-से
नव-जीवन के राज कमल में चमके मुक्ता फल-से।

[१०]

काया-कल्प समान विश्व के देव-विजय बन आई,
विजय-कीर्ति-सी नव-जीवन की श्री त्रिभुवन में छाई;
आत्मा के अलक्ष्य गह्वर से उमड़ उत्स जीवन के
सरसित करने लगे सुमन नव संसृति के उपवन के।

९—अर्थ तारक के कुछ बन्धु पृथिवी के धूल कणों में प्रकाशित होकर सन्मार्ग पर चलने लगे तथा मनुष्यों और मुनियों के चरणों के स्पर्श की (अर्थात् उनके अनुसरण की) कामना करने लगे। उसके कुछ बन्धु करुणा के ओस-बिन्दु बनकर सृष्टि के दृग दलों के समान नव जीवन के राजकमल में मुक्ताफल (मोती) के समान चमकने लगे।

१०—अर्थ देवताओं की विजय विश्व के कायाकल्प के समान बन गई। नव जीवन की श्री (सुषमा) तीनों लोकों में विजय-कीर्ति के समान छा गई। आत्मा के अलक्ष्य और गम्भीर गह्वर (कन्दरा) से उमड़ कर नव जीवन के उत्स (स्रोत) नई सृष्टि के उपवन के सुमनों (पुष्पों और मनों) को सरसित अर्थात् रस से सिंचित करने लगे।

[११]

विजय पर्व में ही जीवन का गौरव सबने जाना,
निर्भयता का मुक्त तेज था प्रथम बार पहचाना;
वे विलास के स्वप्न, भंग सब होते ज्ञानोदय में,
आत्मा का आलोक प्रकाशित हुआ स्वर्ग की जय में।

[१२]

आज शची के दिव्य दृगों में जगी अपरिचित आभा,
अगों में खिल उठा अचानक किन कुसुमों का गाभा !
किस गरिमा के सौम्य शील से आज अखण्ड कुमारी
दीपित हुई, वधू पर होती स्नेह सहित बलिहारी।

११—अर्थ आज इन्द्राणी के दिव्य नेत्रों में एक अविदित आभा जाग्रत हुई। उनके शोक से म्लान अंगों में अचानक किन्हीं दिव्य और नवीन पुष्पों का गाभा (फूल के अन्दर का कलेवर) खिल उठा। आज वे अखण्ड अर्थात् स्थायी कौमार्य की अभिमानिनी इन्द्राणी किस गौरव के सौम्य शील से शोभित हुई और स्नेह के अतिरेक से वधू पर न्यौछावर होने लगी।

१२—अर्थ इस विजय के पर्व में सबको जीवन का वास्तविक गौरव विदित हुआ। निर्भयता के स्वतन्त्र तेज को सबने पहली बार पहचाना, कि यह कैसा होता है। ज्ञान के अभिनव सूर्योदय में देवताओं के विलास के वे स्वप्न भंग हो रहे थे, जिनमें वे अब तक लीन रहे थे। स्वर्ग की विजय में आत्मा का अमृत आलोक प्रकाशित हुआ।

[१३]

देखा आज सहस्र दृगों से मर्म नित्य जीवन का
देवराज ने, तत्व-ज्ञान से मिटा कलुष तन–मन का,
ज्ञान, कला, श्री, शक्ति, शील के नैसर्गिक अन्वय में
हुआ स्वर्ग का धर्म प्रमाणित सहसा आज विजय में।

[१४]

आज स्वर्ग की युवरानी का मान देख अनजाना,
अप्सरियों ने मोल कला औ यौवन का पहचाना;
सेनानी के महा मान में औ जयन्त की जय में
देव–कुमारों को नवीन नय विदित हुई विस्मय में।

१३—अर्थ आज देवराज इन्द्र ने अपने हजार नेत्रों से स्वर्ग के अमर जीवन का रहस्य देखा। जीवन के तत्व ज्ञान से उनके शरीर और मन दोनों का कलुष दूर हो गया। ज्ञान, कला, श्री, शक्ति और शील के सहज समन्वय में स्वर्ग का वास्तविक धर्म आज इस विजय के पर्व में सहसा प्रमाणित हो गया।

१४—अर्थ आज जयन्त की विजय पर स्वर्ग की युवरानी का ऐसा सम्मान देखकर, जिससे स्वर्ग लोक की अप्सरायें अब तक अपरिचित थीं, अप्सराओं को कला और यौवन का वास्तविक मूल्य (सृजनात्मक दाम्पत्य में) विदित हुआ। सेनानी के महान् सम्मान में और जयन्त की विजय में देव कुमारों को (विजयशील एवं ओजस्वी यौवन में) जीवन की नवीन नीति विस्मय के साथ विदित हुई।

[१५]

जब जयन्त ने सेनानी का सत्य स्वरूप निहारा,
शक्ति, शौर्य, जय, परिणय, पद का विगत हुआ भ्रम सारा;
हो जागरित नवीन उषा में जीवन के परिणय की,
करने लगा जयन्त स्वर्ग मे प्राण प्रतिष्ठा जय की।

[१६]

रजनी के अन्तिम प्रहरों में नियम शक्ति–साधन का
बना नित्य क्रम, रति-स्वप्नो में भूले चिर यौवन का;
जिसमे खिलती थी यौवन के राग–रंग की खेला,
हुई ज्ञान–तप से आलोकित वह सूर्योदय वेला।

१५—अर्थ जब जयन्त ने सेनानी का वास्तविक स्वरूप देखा, तो उसका शक्ति, पराक्रम, विजय, विवाह और इन्द्र पद का समस्त भ्रम दूर हो गया। (ये सब उसे अपने उद्योग से नहीं वरन् सेनानी के उद्योग से प्राप्त हुए थे।) जीवन के परिणय (विवाह और परिवर्तन) की नवीन उषा मे सजग होकर जयन्त स्वर्ग मे विजय की प्राण प्रतिष्ठा करने लगा।

१६—अर्थ रात्रि के अन्तिम प्रहरों मे शक्ति-साधना का नियम रति के स्वप्नों में भूले हुए देवताओं के अनन्त यौवन का नित्य क्रम बन गया। जिस सूर्योदय की वेला में यौवन के राग रंग की खेला (क्रीडा) खिलती थी, वह सूर्योदय वेला अब ज्ञान और तप से आलोकित होती थी।

[१७]

नहीं कला यौवन–विलास का साधन है जीवन मे,
हुआ अपूर्व रहस्य सुरो के उद्घाटित नव मन मे;
श्रीशिव का आराधन बनता लक्ष्य कला की नय का,
नृत्य बना क्रम लास्य-समन्वित ताण्डव की ध्रुव-लय का,

[१८]

गूँज उठी किस नूतन ध्वनि मे अप्सरियों की वीणा,
किन्नरियो के स्वर मे फूटी गीता कौन नवीना;
जीवन के स्रोतों में उमडा निर्मल नूतन जल–सा,
खिलता देवों के मानस मे चिर कैलास कमल–सा।

१७—अर्थ कला जीवन मे यौवन के विलास का साधन नहीं है। (वरन वह जीवन के सुन्दर निर्माण की साधना है) यह अपूर्व रहस्य (जिसे देवता पहले नहीं जानते थे) देवताओं के (शक्ति-साधना और विजय से) नवीभूत मन में उद्घाटित (प्रकट) हुआ। शिव और शक्ति की आराधना उनकी कला साधना का लक्ष्य बन गई। उनका वह विलासमय नृत्य अब लास्य (प्रेम का उल्लासमय नृत्य) से समन्वित ताण्डव (विनाश का नृत्य) की लय का (सन्तुलित) क्रम बन गया।

१८—अर्थ अप्सराओं की वीणा अब एक नवीन ध्वनि में गुंजित होने लगी और किन्नरियों के स्वर मे एक नवीन गीता स्फुटित हुई। (शक्ति साधना से प्राप्त विजय के पर्व मे संगीत के स्वर विलास के स्वरों से भिन्न थे; उनमें सृजन और विकास की स्फूर्ति थी।) जीवन के स्रोतों में निर्मल और नवीन जल (का प्रवाह) उमड़ने लगा। देवताओं के निर्मल मानस (मन और मानसरोवर) में कैलास अर्थात् शिव पार्वती का उज्ज्वल आदर्श कमल के समान खिलने लगा।

[१६]

होकर सरस पल्लवित होते उजड़े-से नन्दन के
कल्प वृक्ष औ कल्पलतायें ले उपहार सुमन के;
उदित हुई नूतन श्री सुषमा विकसित कुसुम-दलों में,
फला अमृत बन चिर जीवन का रस अभिजात फलों में।

[२०]

नित्य अतृप्त दुरन्त भोग में लीन अमर यौवन के
अवगत हुये अपूर्व मर्म से सुर सौन्दर्य-सृजन के,
ध्रुव-सा पर्यवसान रहा जो भू के आकर्षण का,
वही स्वर्ग आरम्भ बन रहा श्रेय-सर्ग नूतन का।

१६—अर्थ नन्दनवन के कल्पवृक्ष और कल्पलतायें उजड़े हुए (जो उनकी मनोकामनाओं के प्रतीक थे) सुमनों के (पुष्पों के अथवा सुन्दर भावों से पूर्ण मनों के) उपहार लेकर तथा सरस होकर पल्लवित होने लगे अर्थात् फलने फूलने लगे। नन्दनवन के खिले हुए कुसुमों के दलों में नवीन कान्ति और सुन्दरता उदित हुई। जीवन की स्थायी परम्परा का (सृजनात्मक) रस अमृत बनकर अभिजात (अर्थात् वृक्षों की ऊँची चोटियों पर जन्म लेने वाले कुलीन) फलों में फलने लगा।

२०—अर्थ अमर अर्थात् अनन्त यौवन के चिर अतृप्त और अनन्त भोग में सदा लीन रहने वाले देवताओं को सौन्दर्य की सृजनात्मक परम्परा का अपूर्व (जो पहले विदित नहीं था) रहस्य विदित हुआ। जो स्वर्ग ध्रुव के समान पृथिवी के आकर्षण का अन्तिम लक्ष्य रहा, वही स्वर्ग अब नवीन कल्याणमयी सृष्टि का आरम्भ बन रहा था।

[२१]

अवनी पर आलोकमयी उस नये स्वर्ग की छाया
बनती निर्भय नये कल्प की रूप–गर्विणी जाया;
जीवन की चंचल सरिता के वे सुकुमार बबूले
उसकी रचना के प्रसून बन राग–सुरभि से फूले।

[२२]

हुये धर्म के मार्ग प्रकाशित पूत प्रशस्त गमन को,
निर्भय ऋषि–मुनि चले सत्य की ऊषा के वन्दन को;
कर्मों के कण्टक–मग में भी खिले प्रसून प्रणय के,
हुये प्रतिष्ठित जीवन–पथ में नियम चिरन्तन नय के।

२१—अर्थ पृथिवी पर उस नवीन स्वर्ग की आलोकमयी छाया नवीन और निर्भय कल्प (सृष्टि) की रूप-गर्विणी जाया (जननी) बन रही थी। जीवन की चंचल सरिता में उठने वाले विलास के वे कोमल बुद् बुद् अब उसकी सृजनात्मक परम्परा के प्रसून (पुष्प) बन कर राग (रंग और प्रेम) तथा गन्ध (सुगन्ध और शक्ति) से प्रफुल्लित हो रहे थे।

२२—अर्थ पवित्र और प्रशंसनीय संचार के लिए धर्म के मार्ग प्रकाशित हो गये। नवीन सत्य की ऊषा के वन्दन के लिए ऋषि-मुनि निर्भयता पूर्वक चल दिए। कर्मों के कण्टकपूर्ण मार्ग में भी प्रणय (प्रेम के) के पुष्प खिलने लगे। जीवन के मार्ग में सदाचार की नीति के चिरन्तन (सनातन) नियम प्रतिष्ठित हुए।

[२३]

उत्पातों से आतंकित जो रहते आश्रम वन के,
मार्ग मुक्त हो गये उन्हीं में सकल मुक्ति–साधन के,
अचल कूर्म–से जो अन्तर्मुख विमुख हो चले गति से,
पुण्य तीर्थ वे बने प्रगतिमय जीवन की परिणति से।

[२४]

होकर तम से भीत मूढ़वत् नयन बन्द कर अपने,
रहे देखते जो रजनी में अगणित भीषण सपने;
प्रात किरण ने वे विस्मित जन सहसा आज जगाये,
पलकों में अधखुली मुक्ति के ज्योतिर्लोक बसाये।

२३—अर्थ — वन के जो आश्रम असुरों के उत्पातों से आतंकित रहते थे, उन आश्रमों में मुक्ति की साधना के सम्पूर्ण मार्ग मुक्त हो गये अर्थात् खुल गये। वन के जो आश्रम तथा आश्रमवासी मुनि अन्तर्मुख बनकर गीता के अचल कच्छप के समान बन रहे थे और जीवन की प्रगति से विमुख हो चले थे, वे अब जीवन में नया परिवर्तन होने पर प्रगतिमय पवित्र तीर्थ बन गये।

२४—अर्थ — असुरों की अनीति के अन्धकार से भयभीत होकर जो साधारण जन मूढ़ के समान अपने नेत्र बन्द करके पराजय की रात्रि में असंख्य भयंकर स्वप्न देखते रहे, उनको आज विजय की प्रात-किरण ने विस्मय के साथ अचानक जगाया और उनकी अधखुली पलकों में मुक्ति के (स्वतन्त्रता के) ज्योतिर्मय लोकों को बसाया।

[२५]

तमोनिशा मे मन्द कुटी की दीपशिखा–सी छिपती,
मुनि–कन्यायें मुक्त प्रभा में, आज उषा–सी दिपती;
मणियों–सी जिनको गुदड़ी में ऋषि-मुनि रहे छिपाये,
उनके पुण्य रूप ने वन के शुचि सौभाग्य जगाये।

[२६]

जिनको धूमिल सध्या के हो किसी अनिश्चित क्षण में,
मुनि कन्यायें जल देती थी आशकित भी मन में,
रहे अल्प जल से भी जीवित जो शुचि स्नेह–सहारे,
आश्रम के वे मुरझाये तरु हरे हो उठे सारे।

२५—अर्थ असुरों के आतंक की अन्धकारमयी निशा में जो कुटी की मन्द शिखा के समान छिपी रहती थीं; वे ही मुनि-कन्यायें आज विजय की स्वतन्त्र आभा में उषा के समान दीप्त हो रहीं थीं। जिन कन्याओं को ऋषि-मुनि उसी प्रकार छिपाकर रखते थे, जिस प्रकार भिखारी अथवा साधु गुदड़ी में मणियों को छिपाकर रखते थे, उन्हीं कन्याओं के पवित्र रूप ने वन के पुनीत सौभाग्य को जगाया अर्थात् उनकी पवित्र रूप कान्ति से वन के आश्रम सुशोभित होने लगे।

२६—अर्थ जिन वृक्षों को मुनि-कन्यायें धूमिल संध्या के किसी अनिश्चित क्षण में मन में आशंकित होते हुए भी जल देतीं थीं तथा जो वृक्ष पवित्र प्रेम के सहारे अल्प जल से ही जीवित रहे थे, वे ही आश्रम के सारे मुरझाये हुए वृक्ष हरे हो उठे।

[२७]

स्नेहमयी सखियो-सी जिनको वे न विपद में भूली,
वे आश्रम की लतिकायें भी मुक्त मोद से फूली;
डरते डरते आते थे जो छिपकर भी आँगन में,
वे मुनियो के मृग-शिशु करते निर्भय क्रीड़ा वन मे।

[२८]

वधिकों के आतंक-जाल से भीत साँझ से सोये,
नीड़ों मे छिप, नीरवता में मानों मृत-से खोये,
जाग उठे खग-वृन्द मुक्ति के भव्य प्रसन्न प्रहर मे,
जीवन का संगीत गा उठे निर्भय नूतन स्वर में।

२७—अर्थ मुनि-कन्यायें विपद में भी स्नेहमयी सखियों के समान जिन लताओं को नहीं भूलीं थीं, वे आश्रम की लतिकायें भी अब मुक्त मोद से फूल उठीं। जो मृग के शिशु (ऋषि-बालक, बाधकों के डर के कारण) आँगन में भी छिपकर डरते-डरते आते थे, वे मुनियों के मृग शिशु (और बालक) वन में निर्भय क्रीड़ा करने लगे।

२८—अर्थ जो पक्षीगण (अथवा बालक जो कल्पना के आकाश में उड़ते थे) बधिकों के आतंक के जाल से डरकर सन्ध्या होते ही अपने नीड़ों (अथवा गृहों) में छिपकर सो जाते थे तथा मृत के समान नीरवता में लीन हो जाते थे, वे ही पक्षियों के समूह स्वतन्त्रता के सुन्दर प्रसन्न प्रहर में जाग उठे और निर्भय होकर नवीन स्वर में जीवन का संगीत गा उठे।

[२९]

भय-से विजाडित महाशिशिर मे प्रहत-कण्ठ-सी दीना,
तरुओं के किस निभृत कुंज मे चरम लाज-सी लीना,
नव वसन्त की मुक्त उषा में मुग्ध कोकिला बोली;
अयुत युगोंके बाद स्वर्ग की स्वर-निधि सहसा खोली ।

[३०]

धूमिल सध्या में भी उठते धूम-गन्ध आश्रम के,
जो बनते थे लक्ष्य अलक्षित असुरों के विक्रम के,
यज्ञ-शिखा के अग्रदूत वे, दृग-अंजन, मुद मन के,
करते ज्योतिर्लोक जागरित अस्तंगत जीवन के ।

२९—अर्थ जो कोकिला (अथवा कोकिल कंठी कामिनियाँ) असुरों के भय के घोर शीत में जड़ीभूत रहती थी तथा उनका कंठ आहत सा रहता था और वे दीन होकर वृक्षों के (गृहों के) छिपे हुए कुंजों (गृह कक्षों) मे लाज की सीमा के समान लीन (छिपी) रहतीं थीं। वे देवताओं की विजय के अभिनव वसन्त की मुक्त उषा मे मुग्ध स्वर से गा उठीं। उसके इस संगीत मे असंख्य युगों के बाद स्वर्ग की स्वर-विभूति सहसा प्रकट हुई।

३०—अर्थ अतीत काल में धूमिल संध्या में अलक्षित रूप से उठने वाले आश्रम के यज्ञ के धूम और गन्ध जो अलक्षित रूप मे असुरों के पराक्रम के लक्ष्य बनते थे (अर्थात् धूम शिखा को देखकर असुर उसी आश्रम के निकट पहुंच जाते थे तथा ऋषि-मुनियों पर अत्याचार करते थे।) यज्ञ की शिखा के अग्रदूत के समान थे ही यज्ञ के धूम-गन्ध नयन के अंजन (धूम) तथा मन के मोद (गन्ध) बन मुनियों के अस्त हुए जीवन के ज्योतिर्लोकों को जागरित करते थे।

[३१]

जहाँ धर्म का शंखनाद भी बन जाता रणभेरी,
मृगछाला को देख टूटते सहसा असुर-अहेरी,
प्लुत, गम्भीर, मन्द्र मन्त्रों का वहाँ गूँजता स्वर था,
सध्या और उषा-सा पूजित गैरिक का अम्बर था।

[३२]

जहाँ भाल का तिलक मृत्यु का अविदित आमन्त्रण था,
और यज्ञ-उपवीत काल का कण्ठागत बन्धन था;
मलय-तिलक से वहाँ धर्म का नित अभिनन्दन होता,
अभय अर्घ्य से वहाँ सूर्य का विधिवत् वन्दन होता।

३१—अर्थ जहाँ धर्म की शंख-ध्वनि भी रणभेरी बन जाती थी अर्थात् पूजा की शंख-ध्वनि को सुनकर असुर आक्रमण कर देते थे तथा पूजा की मृगछाला को देखकर असुर रूपी अहेरी (शिकारी) टूट पड़ते थे, वहाँ अब वेद पाठ का प्लुत, गम्भीर और मन्द्र स्वर गूँज रहा था तथा साधुओं का गैरिक वस्त्र संध्या और उषा के समान पूजित होता था।

३२—अर्थ जहाँ धर्माचारियों के मस्तक का तिलक मृत्यु का अज्ञात आमंत्रण बन जाता था तथा यज्ञोपवीत धारण करने वाले के लिए ही कंठ का कालपाश बन जाता था; वहाँ अब चन्दन के तिलक से धर्म का नित्य अभिनन्दन होता था और (यज्ञोपवीत के सहित) निर्भय अर्घ्य से विधिपूर्वक सूर्य का वन्दन होता था।

[३३]

जहाँ धर्म का नाम पाप बन शाघ्र मृत्यु में फलता,
जहाँ तोलती धर्म प्राण से जीवन की दुर्बलता,
जहाँ वीर बलि हुये धर्म पर हँसते हँसते रण में,
मृत्युंजय बन अमर हुये चिर गौरव पूर्ण मरण में,

[३४]

वहाँ धर्म की सहज सुपावन ध्वजा मुक्त फहराती;
वीरों का बलिदान बन गया अमर विश्व की थाती;
धर्म प्राण से, प्राण धर्म से आज परस्पर पलता,
हुई विजय मे आज पराजित जीवन की दुर्बलता।

३३—अर्थ जहाँ धर्म का नाम ही पाप बनकर शीघ्र ही मृत्यु में फलित होता था अर्थात् जहाँ असुरों की दृष्टि में मानों धर्म का पालन पाप था और उसके फलस्वरूप मृत्यु मिलती थी; जहाँ जीवन की दुर्बलता धर्म को प्राणों से तोलती थी अर्थात् जहाँ धर्म की रक्षा प्राण देकर ही हो सकती थी और धर्म छोड़ने पर ही प्राण बच सकते थे; जहाँ वीर पुरुष युद्ध में हँसते हँसते धर्म पर बलिदान हुए और चिरन्तन गौरव से पूर्ण इस वीर मरण में मृत्युंजय बन कर अमर हो गये।

३४—अर्थ वहाँ धर्म की सहज पवित्र पताका मुक्त भाव से फहरा रही थी; वीरों का बलिदान विश्व की अमर धरोहर बन गया; आज धर्म और प्राण परस्पर एक दूसरे का पालन एवं संवर्द्धन कर रहे थे; जीवन की यह दुर्बलता आज विजय में पराजित हो गई।

[३५]

जहाँ असुर का नाम मात्र सुन कायर नर छिप जाते,
लाज, मान, धन, कीर्ति भेंट कर केवल प्राण बचाते,
निर्भय औ स्वच्छन्द वहा पर शिशु भी आज विचरते,
ललनाओं के चरण अकम्पित धरणी पावन करते।

[३६]

वही असूर्यपश्यायें जो वन्दी राज-भवन में
रही अदृष्ट योग के फल से, सरक्षित जीवन मे,
मुक्त रूप-आभा से अपनी ज्योतित करती जग को,
करती छवि का तीर्थ अपरिचित अवनी के प्रति मग को।

३५—अर्थ जहाँ असुर का नाम मात्र सुनकर कायर पुरुष भय से छिप जाते थे तथा अपने लाज, सम्मान, धन तथा कीर्ति उसको समर्पित कर केवल अपने प्राण बचा लेते थे, वहाँ आज बालक भी निर्भय और स्वच्छन्द विचरते थे तथा स्त्रियों के अभय से अकम्पित चरण धरता को पावन करते थे।

३६—अर्थ राजसी कुलों की वे महिलायें, जो असुरों के भय के कारण अपने राजभवन में वन्दी के समान रहती थीं, न। सूर्य का भी दर्शन नहीं करती थीं और जो भाग्य के संयोग से ही जीवन में असुरा के अत्याचारा से सुरक्षित रहीं, राजसी कुलों की वे रूपवती महिलायें आज अपने सौन्दर्य की प्रभा से जगत को ज्योतित कर रहीं थीं और पृथिवी के प्रत्येक अपरिचित मार्ग को सौन्दर्य का तीर्थ बनाती थीं।

[३७]

ललनाओं ने जहाँ जला कर चिता हाथ से अपने,
समिध-हव्य-से अर्पित उसमें कर जीवन के सपने,
स्वय सती के तुल्य देह की भेट सहर्ष चढाई,
दे सतीत्व पर प्राण, धर्म की जग में कीर्त्ति बढाई;

[३८]

वहाँ आज वधुओं के कर से अंकित चौक सजीले
ऊषा के कमलों-से होते अश्रु-बिन्दु से गीले,
सतियों ने की भेट जहाँ पर कण्ठों से ज्वालायें,
उनकी बलि पर वहाँ समर्पित होती जय-मालायें।

३७—अर्थ जहाँ राजसी सुखों में लालित स्त्रियों ने स्वयं अपने हाथों से चिता जलाकर तथा समिधा और हवन सामग्री के समान (स्निग्ध एवं सुगन्धपूर्ण) अपने जीवन के मनोहर स्वप्नों को उस चिता में अर्पित कर स्वयं सती के समान हर्ष पूर्वक अपने शरीर की भेंट चढ़ा दी तथा सतीत्व पर प्राणों की बलि देकर उन्होंने जगत में धर्म की कीर्ति को बढ़ाया;

३८—अर्थ वहाँ आज सौभाग्यवती वधुयें उन सतियों की वन्दना के लिए अपने कोमल करों से रंगीन और सजीले चौक अंकित करती हैं। वे रंगीन चौक विजय की उषा के कमलों के समान वधुओं के अश्रु बिन्दु से गीले होते हैं। जहाँ सतियों ने अपने गले में चिताओं की ज्वालाओं का आलिंगन किया, वहाँ उनके बलिदान पर जय-मालायें अर्पित हो रही हैं।

[३९]

कन्या-कुल के लाज-मान पर जहाँ गाज-सी गिरती,
शशिमुख की ज्योत्स्ना से कुल में काल-घटायें घिरती,
जहाँ दुधमुही कन्याओं को काल-भेंट कर दुख से
करुणा के आँसू से धोई भावी शंका मुख से;

[४०]

वहां पार्वती सम कन्यायें अतुलित गौरव पाती,
उभय कुलों में दहली-दीपक तुल्य प्रकाश जगाती,
चन्द्रानन आकाश-दीप-सा सन्ध्या के प्रहरों में,
रचता ज्योति-पन्थ जीवन के सागर की लहरों में।

३९—अर्थ जहाँ कन्या का जन्म होने से कन्या के कुल की लाज और उसकी प्रतिष्ठा पर बिजली-सी गिरती थी अर्थात् वज्रपात होता था; तथा कन्या के चन्द्र मुख की चाँदनी से आकर्षित होकर कुल में असुरों के अत्याचारों की काल-घटायें घिरने लगतीं थीं और जहाँ दुधमुहीं कन्याओं को दुःख के सहित काल को भेंटकर (उनके माता-पिता ने) करुणा के आँसुओं से भावी आशंका को अपने मुख पर से धोया था;

४०—अर्थ वहाँ अब कन्यायें पार्वती के समान अतुलनीय गौरव पाती हैं। वे दोनों कुलों में देहली-दीपक के समान प्रकाश फैलातीं हैं; दोनों कुलों की संधि के पुण्य प्रहरों में उनका चन्द्र मुख आकाश-दीप के समान जीवन के सागर की लहरों में ज्योति-पथ की रचना करता है।

[४१]

जहाँ केसरी-से वीरों ने ले केसरिया बाना,
माना मानव-धर्म धर्म की वेदी पर बलि जाना,
वहाँ अभय स्वच्छन्द विचरते मानव के मृग-छौने,
जीवन के मुख पर दानव के बनते कृत्य दिठौने।

[४२]

जहा मृत्यु की नीरवता मे कान चौंकते भय से,
वहा निरन्तर कान गूँजते गर्जित 'जय जय जय' से,
जहां सुमन मे काल-कीट-सा रहता शोक समाया,
जय-उत्सव का हर्ष-पर्व था वहाँ चतुर्दिक छाया।

४१—अर्थ जहाँ सिंह के समान वीरों ने केसरिया वेष धारण कर धर्म की वेदी पर प्राणों के बलिदान को ही मनुष्य का (अपना)धर्म माना, वहाँ अब मनुष्य के मृग के समान शिशु स्वच्छन्दता और निर्भयतापूर्वक विचरते हैं। दानवों के काले कृत्य जीवन के उज्ज्वल मुख पर दिठौने के समान रहा और अलकार के उपकरण बन गये।

४२—अर्थ जहाँ असुरों के हाथों से होने वाले हत्याकाण्डों के कारण मृत्यु की नीरवता में भय से कान चौंकते थे, वहाँ अब देवताओं के गर्जते हुए जयजयकार से निरन्तर कान गूँजते हैं। जहाँ फूल में विनाशक कीट के समान मन में शोक समाया रहता था, वहाँ विजय के उत्सव का हर्ष-पूर्ण पर्व चारों ओर छाया हुआ था।

[४३]

हुआ ग्रन्थि-बन्धन जब दिव से सुविजित शोणितपुर का,
दूर हुआ आतंक युगों का सुर–मुनियों के उर का;
उत्पातों की शान्ति गरजती जहा प्रलय के घन–सी,
छाई निर्भय शान्ति अखण्डित वन भूमिका सृजन की।

[४४]

विजय–पर्व की निर्भयता मे सोई आत्मा जागी,
जागृति की ऊषा जीवन के वर्णों से अनुरागी;
खिले शान्ति के शुभ्र शरद में भावों के शतदल–से,
स्फुटित हुई जिनमे जीवन की श्री अज्ञात अतल से।

४३—अर्थ भली प्रकार तथा सद्भावनापूर्वक विजित शोणितपुर का जब स्वर्ग के साथ ग्रन्थि-बन्धन हुआ, तब देवताओं और मुनियों के मन का युग युग का आतंक दूर हो गया। जहाँ असुरों के उत्पातों की भ्रान्ति प्रलय के काले मेघों के समान गरजती थी, वहाँ निर्भयता पूर्ण और अखण्ड शान्ति जीवन के नवीन निर्माण की भूमिका बनकर छा रही थी।

४४—अर्थ देवताओं की विजय के दिव्य पर्व की निर्भयता में उनकी (तथा मुनियों और मनुष्यों की) सोयी हुई आत्मा जाग उठी। उनके जागरण की ऊषा जीवन के सुन्दर वर्णों (रंगों) से अनुरंजित होकर खिल उठी अथवा जीवन के रूपों से अनुरक्त हो उठी। शान्ति की शुभ्र शरद ऋतु में सुन्दर भावों के शतदल कमल खिल उठे, जिनमें न जाने किस अज्ञात अतल से उदित होकर जीवन की श्री (लक्ष्मी और शोभा) स्फुटित हुई।

[४५]

नये सर्ग की पुण्य प्रभाती बन नव उदय प्रहर में
गूँज उठे मधुकर कवियों के गीत नये नव स्वर में,
सगति से छवि के रवि-कर की वर्ण-विभव-मय तूली
सध्या और उषा में रचती नित रंजित गोधूली।

[४६]

प्राणमयी बन कर सुन्दरतम प्रतिमायें पाहन की
बनती रूप और सौष्ठव में उपमायें तन-मन की;
श्रेयमयी बन रही साधना चिर सौन्दर्य-सृजन की
बनी रूप-रस-मयी कला थी शुचि संस्कृति जीवन की।

४५—अर्थ सृष्टि के नवीन उदय की वेला में मधुकर के समान कवियों के नये गीत नई सृष्टि की पवित्र प्रभाती बन-कर नये स्वर में गूँज उठे। सौन्दर्य के सूर्य के करों (किरणों और हाथों) की वर्णों (रंगों) के वैभव से युक्त तूलिका सध्या और उषा में वर्णों (रंगों) की संगति से युक्त रंगीन गोधूली की रचना करती थी।

४६—अर्थ (संगीत और चित्रकला के समान ही मूर्तिकला की भी सुन्दर साधना होने लगी।) पत्थर की सुन्दरतम और सजीव प्रतिमायें सौन्दर्य और अंग सौष्ठव में शरीर और मन की उपमा के योग्य बनती थीं। चिरन्तन सौन्दर्य के सृजन की साधना मंगलमयी बन रही थी। रूप और रस से पूर्ण कला जीवन की पवित्र संस्कृति बन रही थी।

[४७]

युग युग के सूने खँडहर के कितने भाग अभागे
अभय शान्ति के स्निग्ध करों से सहसा सोकर जागे;
जहाँ शृगालों का विराव ही भंग शून्यता करता,
वहाँ सजग जीवन को जगमग पर्व प्राण से भरता।

[४८]

तारक का संहार बन गया नव जीवन का वर–सा,
भय से भीषण भुवन, सृजन के नव स्वप्नों से सरसा;
शोणितपुर की जय-लक्ष्मी ने बन जयन्त की रानी,
रची भूमिका नये स्वर्ग की भावमयी कल्याणी।

४७—अर्थ असुरों के उत्पातों के कारण युग-युग से सूने पड़े हुए खंडहरों के न जाने कितने अभागे भाग्य अभयपूर्ण शान्ति के स्निग्ध (कोमल तथा स्नेहपूर्ण) करों के स्पर्श से अचानक निद्रा से जाग उठे। उन खंडहरों में जहाँ शृगालों का रोदन ही शून्यता को भंग करता था, वहाँ विजय का जगमगाता हुआ पर्व सजग जीवन को नवीन प्राणों की स्फूर्ति से भरता था।

४८—अर्थ तारकासुर का संहार त्रिलोक के लिए नवीन जीवन का वरदान-सा बन गया। जो संसार असुरों के भय से भीषण बना हुआ था, वह सृजन के नवीन स्वप्नों से सरसने लगा। शोणितपुर की जयलक्ष्मी ने जयन्त की रानी बनकर नवीन स्वर्ग की भावमयी और मंगलमयी भूमिका रची।

[४६]

स्वप्नों के अम्बर मे कितने शुभ संकल्प सुमन-से
खिलते आशा की द्वाभा मे ज्योतित जीवन कण-से,
इन्द्र धनुष के वहु वर्णो मे सध्याओं में दृग-की,
जीवन के मरु मे मरीचिका बन मनहर मन-मृग की।

[५०]

नयन-निशा में कल्प-कुसुम-की खिलती वह फुलवारी,
पुण्य पूर्णिमा मे प्राणों की जगती शुचि उजियारी;
उठता जीवन-ज्वार हृदय के उद्वेलित सागर में,
जागृति का सगीत गूँजता लहरों के प्लुत स्वर में।

४६—अर्थ पराजय के युगों मे स्वप्नों के आकाश में असख्य शुभसंकल्प आकाश-कुसुमों के समान तथा आशा की द्वाभा (ऊषा और संध्या) में दीप्त होते हुए जीवन-कणों के समान खिलते थे। नयनों की संध्याओं मे (निन्द्रा के पूर्व पलकों के निमीलन में) वे कल्पना के इन्द्र धनुष के विविध रंगों में जीवन के मरुस्थल मे मन रूपी मृग की मरीचिका बनकर खिलते थे।

५०—अर्थ अब विजय पर्व में नयनों की निशा में वह संकल्प सुमनों की फुलवारी कल्पवृक्ष के कुसुमों के समान खिलती थीं। विजय की पवित्र पूर्णिमा में उस द्वाभा के स्थान पर (कला के अथवा मन के) पूर्ण चन्द्र की पवित्र उजियारी जगमगाती थी। विजय की उस पूर्णिमा में हृदय के उमड़ते हुए सागर मे जीवन का ज्वार उठता था, उस ज्वार की लहरों के प्लुत (उच्च और गम्भीर) स्वर में जाग्रति का संगीत गूँजता था।

[५१]

अम्बर के इस स्वप्न-स्वर्ग की मनोमोहिनी माया
होती अवनी पर प्रतिबिम्बित बन ज्योतिर्मय छाया;
बहु कामना-कुसुम-से ज्योतित तारे अम्बरतल के
खिलते सौरभ मय प्रसून बन धरती के अचल के।

[५२]

भय के कर्दम में कृमियों-सी कितनी दुर्बलतायें
नर-जीवन मे बढ़ी, प्राण की बन कर मृदु ममतायें,
दीप्त अभय के प्रखर तेज में भस्म हुई वे सारी;
मानवता ने पूर्ण निरामय आत्मा प्रथम निहारी।

५१—अर्थ अन्तरिक्ष के इन स्वप्नों के स्वर्ग की मन को मोहित करने वाली माया प्रकाशमयी छाया बनकर पृथिवी पर प्रतिबिम्बित होती थी। अनन्त कामना कुसुमों के समान प्रकाशित आकाश के तारे अब धरती के अंचल के सौरभमय प्रसून (पुष्प) बनकर खिलते थे।

५२—अर्थ पराजय के युगों में भय के कर्दम (कीचड़) में कृमियों (कीड़ों) के समान अनेक दुर्बलतायें मनुष्य जीवन में बढ़ीं। वे दुर्बलतायें प्राणों का सुकुमार मोह बनकर बढ़ीं। अब विजय के पर्व में वे सब दुर्बलतायें अभय के प्रकाशमान और प्रखर (तीव्र) तेज में भस्म हो गईं। अब विजय पर्व में मानवता ने (मनुष्य जाति ने) पूर्ण रूप से नीरोग और स्वस्थ आत्मा का प्रथम बार दर्शन किया।

[५३]

काव्य, कला, सगीत, धर्म का लेकर सम्बल मन में,
निर्भयता की शक्ति अमित ले निज निर्बन्ध चरण मे,
जीवन के कैलास कूट के पुण्य तीर्थ के मग मे,
उत्साही नर निकल पड़े भर नई स्फूर्ति रग रग में।

[५४]

खँडहर पूर्ण हुये जीवन से स्वस्थ धरा के व्रण-से,
दूर हुये नूतन भावो से क्षोभ नरो के मन से,
असुरो का विद्वेष मिट गया उर से शान्त नरो के,
निर्भयता मे अमल हुये मन मनुजों औ अमरों के।

५३—अर्थ विजय के उल्लास में काव्य, कला, सगीत और धर्म का सम्बल (पाथेय) मन में लेकर तथा अपने मुक्त चरणों में निर्भयता की अपार शक्ति लेकर और शरीर की रग-रग में नवीन स्फूर्ति भरकर उत्साही मनुष्य (तप और साधना के उच्च, उज्ज्वल और कठिन आदर्श रूप) कैलास कूट (शिखर) के पुण्य तीर्थ के मार्ग में निकल पड़े।

५४—अर्थ पराजय के युगों में लोगों के जीवन में जो उजड़ेपन के खँडहर रोगिणी पृथिवी के व्रणों (घावों) के समान बन गये थे, वे अब पृथिवी के स्वस्थ होने पर भर गये। स्वस्थता में उन व्रणों के मिट जाने पर नवीन भावों का उदय होने पर मनुष्यों के मन से उन व्रणों के क्षोभ (दुःख, विकार) मिट गये। विजय के कारण शान्त के हृदय से असुरों के प्रति विद्वेष का भाव मिट गया। निर्भयता में मनुष्य और देवताओं के मन निर्मल हो गये।

[५५]

दवे प्रकृति के विवश भार से, त्रास अनिर्वच सहते,
आत्मयोग-कामी मानव भी जल-से नीचे वहते;
शक्ति-विजय वन गई अर्गला प्रकृत अधोमुख गति की,
अभय भूमिका है आत्मा के साधन की परिणति की।

[५६]

भय के दीर्घ ताप से शोषित हुये स्रोत जीवन के;
हुये स्वार्थ से आविल, पंकिल, शिथिल स्नेह-स्रव मन के,
सहज प्रवाहित हुये शान्ति के स्रोत अपूर्व अभय में,
स्वच्छ नवीन प्रगति में गूँजे गीत नवीन उदय में।

५५—अर्थ पराजय के युगों में प्रकृति के विवश भार से दबे हुए और असुरों के उत्पातों के अनिर्वचनीय त्रास (दुःख) सहने वाले आत्म-योग (आध्यात्मिक-साधना) के अभिलाषी मनुष्य भी जल के समान नीचे की ओर ही वहते थे अर्थात् उनकी अधोगति होती थी। अब विजय के पर्व में शक्ति और विजय प्राकृतिक और अधोमुखी गति की अर्गला (प्रतिबन्ध) बन गये। अभय ही आध्यात्मिक साधना की सफल परिणति (पर्यवसान) की भूमिका है।

५६—अर्थ पराजय के युगों में भय के दीर्घ ताप से जीवन के स्रोत शोषित हो गये थे तथा मन के स्नेह प्रवाह स्वार्थ से आविल (गदले), पंकिल (कीचड़मय) और शिथिल हो गये थे। अब विजय के अपूर्व में (जो पहले विदित नहीं था) अभय में शान्ति के स्रोत सहज भाव से प्रवाहित होने लगे; जीवन के नवीन उदय में अब स्वच्छ और नवीन प्रगति के गीत गूँजने लगे।

[५७]

पुण्य प्रकृति के सुदृढ़पीठ पर, शुचि संस्कार प्रकृति का
बना सफल आरम्भ मनुज को नव अध्यात्म प्रगति का;
आत्म–साधना के प्रतिबन्धक असुरों को संगर में,
निर्जित कर बढ चले देव–नर निर्भय योग–डगर में।

[५८]

अनाचार की आशका से आतकित कुल–नारी,
रही कल्पनाओ से भय की कुण्ठित सदा विचारी,
पूर्ण अभय की प्रथम उषा के स्वर्गिक मुक्त पवन से
खिलते सौरभ का प्रसार कर उसके भाव सुमन–से।

५७—अर्थ विजय के पर्व में पवित्र प्रकृति के सुदृढ़ पीठ पर प्रकृति का पवित्र संस्कार हुआ, वह संस्कार मनुष्य की नवीन आध्यात्मिक प्रगति का सफल आरम्भ बना। आध्यात्मिक साधना में बाधा डालने वाले असुरों को युद्ध में पराजित करके देवता और मनुष्य योग के मार्ग में निर्भयता पूर्वक बढ़ने लगे।

५८—अर्थ असुरों के अनाचार की आशंका से भयभीत रहने वाली उत्तम कुलों की नारियाँ अब तक सदा भय की कल्पनाओं से कुण्ठित और विवश रही थीं; अब विजय के पर्व में पूर्ण अभय की प्रथम उषा के स्वर्गिक और स्वच्छन्द पवन से उनके हृदय के भाव सुमनों (पुष्पों) के समान सौरभ का प्रसार करके खिलते थे।

[५९]

जिनको माताये करतीं थी कभी न अलग हृदय से
खिल न सके जो दवे कुसुम–से आतकों के भय से,
कर स्वच्छन्द विहार, खेल वे खग–से मुक्त पवन में,
पाते पूर्ण विकास, चतुर्दिक अनियन्त्रित जीवन में।

[६०]

आडम्बर के इन्द्रधनुष से सज्जित वर्षा–घन–सा
रहा सदा, अध्यात्म स्वच्छ वह खिलता मुक्त गगन-सा;
जिसके ज्योतिर्दीप बने थे कुछ खद्योत बिचारे,
करते उसमे दिव्य आरती अगणित रवि, शशि, तारे।

५९—अर्थ जिन बालकों को असुरों के भय के कारण मातायें कभी हृदय से अलग नहीं करतीं थीं तथा असुरों के आतंकों के भय के कारण जो दवे हुए कुसुमों के समान स्वतन्त्रता पूर्वक खिल न सके; अब विजय के पर्व में वे ही बालक स्वच्छन्द विहार करके तथा खुली हवा में पक्षियों के समान स्वतन्त्रता पूर्वक खेलकर नियंत्रण से रहित जीवन में सभी दिशाओं में पूर्ण विकास प्राप्त कर रहे थे।

६०—अर्थ पराजय के युगों में जो अध्यात्म आडम्बर के रंगीन इन्द्रधनुष से सज्जित वर्षाकाल के मेघों के समान घिरा रहा था (तथा जिसने विमोहित करने के साथ-साथ जीवन की धरती को सरस भी किया था, किन्तु जो प्रायः अन्धकार और आकर्षण बन कर घिरा रहा था), वही अध्यात्म अब विजय पर्व में स्वच्छ होकर खुले आकाश की तरह खिल रहा था। पराजय काल में जिस अध्यात्म के आकाश में केवल कुछ खद्योत (क्षणिक आध्यात्मिक अनुभव) चमकते थे और वे ही उसके

[६१]

छाई थी सर्वत्र शान्ति औ निर्भयता त्रिभुवन में,
नई चेतना में निलीन थे सभी नवीन सृजन में,
पुरातीन का भी विधान सब करते अभिनव छवि से,
स्वर्ग और भूतल के वासी विदित हुये सब कवि–से।

[६२]

अभय और आनन्द पर्व में खेद भूत का खोया,
नई कल्पनाओं ने मन में भव्य भविष्य सँजोया;
वर्तमान मे सभी निरत थे निर्माणों मे अपने,
जीवन मे चरितार्थ कर रहे मन के सुन्दर सपने।

ज्योतिर्दीप बने हुए थे, उस अध्यात्म के आकाश में अब विजय पर्व में सूर्य, चन्द्रमा और तारे (अध्यात्म के सम्पन्न और स्थायी अनुभव) जीवन की दिव्य आरती कर रहे थे।

६१—अर्थ विजय पर्व में तीनों लोकों में सर्वत्र शान्ति और निर्भयता छा रही थी, नई चेतना जागरित हो रही थी और उस नई चेतना की प्रेरणा में सभी (देवता और मनुष्य) नवीन सृजन में लीन थे। पुरातन तत्वों को भी वे सब नवीन सौन्दर्य का रूप दे रहे थे, इस सृजन में लीन स्वर्ग और पृथिवी के निवासी सब देवता और मनुष्य कवियों से विदित हो रहे थे।

६२—अर्थ अभय और आनन्द के पर्व में अतीत की पराजयों का खेद (दुःख) मिट (भूल) गया। नई कल्पनायें मन में सुन्दर भविष्य को संजोने लगीं। नवीन निर्माणों में लगे हुए सभी देवता और मनुष्य वर्तमान काल में संलग्न थे। वे अपने मन के सुन्दर सपनों को जीवन में चरितार्थ कर रहे थे।

[६३]

खिले कल्पना के प्रसून नव फिर उजड़े नंदन...,
मर्म भावना का मधु सौरभ बनता प्राण पवन में,
शक्ति-ज्ञान-सौन्दर्य-योग से अवनी के अधिवासी,
बना रहे थे देवों को भी भूतल का अभिलाषी।

६३—अर्थ उजड़े हुए नन्दनवन में फिर कल्पना के नवीन कुसुम खिलने लगे; उन कुसुमों में हृदय की मार्मिक भावना का मधुर सौरभ भरा हुआ था, वह पवन मे चारों ओर फैल जीवन मे नवीन प्राण (स्फूर्ति) का सचार कर रहा था। श त, ज्ञान और सौन्दर्य के समन्वय के द्वारा पृथिवी के निवासी देवताओं के मन में भी पुन पृथिवीतल पर जन्म लेने की अभिलाषा जागरित कर रहे थे